बानपुर और बुन्देलखण्ड

प्रधान संपादक

पं० बाबूलाल द्विवेदी

संपादक

डॉ राकेश नारायण द्विवेदी

प्रकाशक

जानकी प्रकाशन

बानपुर और बुंदेलखंड

प्रधान संपादक

पं0 बाबूलाल द्विवेदी

संपादक

राकेश नारायण द्विवेदी

प्रकाशक

जानकी प्रकाशन

रचना स्वत्वाधिकार- संबंधित रचनाकारों और स्रोतों द्वारा सुरक्षित

प्रकाशक- जानकी प्रकाशन

द्वारा जानकी प्रसाद स्मृति सेवा समिति, नीराजनम्, रावतयाना कैलगवां बाइपास चौराहा के पास ललितपुर
मोबाइल 9236114604

प्रिंट पुस्तक- आईएसबीएन 9788190891202

मुद्रक विमल प्रिंटर्स एंड स्टेशनर्स, उरई (जालौन)

ई पुस्तक- आईएसबीएन 9788190891264

मूल्य दो सौ रुपए मात्र

अभिनंदन !

मातृभूमि हे ! कर्मभूमि हे ! शत-सहस्र तेरा वन्दन ।

शाश्वत बंधन सदा रहे, तू मां अरु मैं तेरा नंदन ।।

भू भावित भारत का वक्षस्थल, मर्दन का अंतर्मन ।

जयति जयति बुन्देलखण्ड की बान बानपुर अभिनन्दन ।।

बानपुर और बुंदेलखंड

अनुक्रमणिका

1. दो शब्द..... पं0 बाबूलाल द्विवेदी 7
2. 'संलग्न वृंत पर चिंत्य प्राण'- डॉ राकेश नारायण द्विवेदी 9
3. संशोधित संस्करण- राकेश नारायण द्विवेदी 9
4. 1857 की क्रान्ति में बानपुर का योगदान- पं0 बाबूलाल द्विवेदी 10
5. इतिहास और पुराणों का नगर- बानपुर - पं0 बाबूलाल द्विवेदी 36
6. बानपुर की बोली और उसका साहित्य- डॉ राकेश नारायण द्विवेदी 39
7. रेडियो रूपक_प्रथम समर : रणक्षेत्र बानपुर- गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी' 43
8. बानपुर : बीता वैभव- हरिविष्णु अवस्थी 49
9. स्वातंत्र्य समर के अमर योद्धा बानपुर नरेश मर्दन सिंह- पं0 बाबूलाल द्विवेदी 52
10. राजा मर्दन सिंह बानपुर और चन्देरी का मुद्दा- डॉ0 काशीप्रसाद त्रिपाठी 55
11. बुंदेले मर्दन सिंह की जय- कैलाश मडवैया 56
12. द्वाविंश बाहु विनायक सिद्ध क्षेत्र बानपुर- पं0 बाबूलाल द्विवेदी 57
13. बानपुर नरेश मर्दनसिंह के नाम महारानी लक्ष्मीबाई का ऐतिहासिक पत्र 59
14. स्वातंत्र्ययवीर बानपुर नरेश मर्दन सिंह जो लौट न घर को आए -प्रो0 भगवत नारायण शर्मा 60
15. मर्दन मृगेन्द्र शत्रु गर्दन मरोरी है - सेवकेन्द्र त्रिपाठी, झांसी 62
16. बानपुर के प्रमुख मेले - नीरज द्विवेदी 63
17. बानपुर के लोकदेवता- पं0 बाबूलाल द्विवेदी 66
18. स्वतंत्रता के अग्रगण्य सेनानी महाराज मर्दन सिंह- रामनारायण श्रीवास्तव 'श्याम' 68
19. बानपुर के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी- पं0 बाबूलाल द्विवेदी तथा मनोहरलाल पुष्पकार 69
20. और कितउं नहिं पाइ - भगवान दास माहौर 71
21. बानपुर की गढ़ी (किला)- अरविन्द नायक एड तथा मुरारी लाल जैन एड0 72
22. बानपुर की शानः देशी पान- डॉ ओमप्रकाश शास्त्री 74
23. बन्न-बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं- पं0 बाबूलाल द्विवेदी 76
24. श्री दिगंबर जैन अतिशय क्षेत्र बानपुर- चौधरी विकास जैन 'शास्त्री' 78
25. लोक आस्था के प्रतीक - बानपुर के आराधनालय- पं0 बाबूलाल द्विवेदी तथा कु0रामकिशोरी गुप्ता 79
26. भगवान कुण्डेश्वर का जलाभिषेक करती जमडार - पं0 हरिविष्णु अवस्थी 81
27. बानपुर के बाइस भुजाधारी नृत्य गणपति - आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल 84

28.कैलगवां की लुप्त होती गौरा पत्थर की हस्तकला-डा0 जवाहर लाल द्विवेदी 88
29.तालबेहट में अकती पर्व का वर्जन तथा मोद प्रहलाद का मान मर्दन- श्रवण कुमार त्रिपाठी 90
30.तात्या टोपे का युद्ध-पराक्रम- भगवानदास श्रीवास्तव 92
31.ललितपुर : एक नजर - डॉ रमेश चन्द्र श्रीवास्तव 94
32.इतिहास और जनश्रुतियों के आलोक में नगर - ललितपुर- पं. बाबूलाल द्विवेदी 95
33.प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बुंदेलखण्ड का योगदान- कैलाश मड़बैया 98
34.बुन्देली लोक कथाएं : रूढ़ियां और उद्देश्य- डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी 101
35.बुन्देली कहावतों में स्वास्थ्य विज्ञान- मदन मोहन वैद्य 105
36.बुन्देलखण्ड कौ सांस्कृतिक सरूप- डॉ दुर्गेश दीक्षित 107
37.भैया अपने गांव में- पं0 बाबूलाल द्विवेदी 111
38.बीच किले में मूक हूक श्री मर्दनसिंह महाराज की- अजय शंकर भार्गव 112
39.बुन्देलखण्ड के इतिहास, साहित्य तथा लोक संस्कृति पर पठनीय प्रमुख ग्रन्थ- अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' 113
40.बुन्देलखण्ड में सूर्योपासना और 'सूर्य नमस्कार' - जुगुल किशोर तिवारी 116
41.बुन्देली लोकरंजन के साधन- पं0 नवल किशोर तिवारी 119
42.संस्कृति की अभिव्यक्ति : बुन्देली लोक कलाएँ- डॉ0 कुमारेन्द्र सिंह सेंगर 120
43.1857 ई0 के संग्राम में बुन्देली नारियों का योगदान-प्रो बिहारीलाल बबेले 123
44.वराह अवतार पूजा और बुंदेलखण्ड- डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी 125
45.संघर्ष करो आज़ादी हित-कन्हैयालाल शास्त्री 'मुकुल' 129
46.मातृभूमि का कर्ज - जवाहर लाल 'जलज' 130
47.जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय-जय बोलो - पं0 बाबूलाल द्विवेदी 131
48.दिव्य भूमि ऐसी दुनी और कहीं देखी है ?- राष्ट्रकवि घासीराम व्यास 131
49.ललितपुर जनपद के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी 132

दो शब्द.....

बुन्देलखण्ड भारत का हृदयस्थल है। इस अंचल में अनेक साहित्यकार, शूरवीर तथा कलाकार हुए हैं जिस प्रकार भारत का हृदय प्रदेश बुन्देलखण्ड है, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड का हृदय क्षेत्र महाराजा मर्दनसिंह के बानपुर को माना जा सकता है। यह नगर पौराणिक काल में अत्यंत समृद्ध तथा शक्तिशाली था। उस समय यह संपूर्ण भारतवर्ष का एक प्रमुख केन्द्र बना हुआ था। यहां बाणासुर ने विश्व-विलक्षण बाईस भुजी भगवान गणेश की कल्पना की। इस नगर पर द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की कोपदृष्टि पड़ी थी। समय का चक्र घूमता गया चंदेलयुग में जैन धर्मानुयायी देवपाल ने यहां सांस्कृतिक वैभव के प्रतीकस्वरूप अनेक जैन मंदिरों का निर्माण कराया, जो आज भी अपनी गरिमा-गाथा का बखान कर रहे हैं। भारत की परतंत्रता के समय एक बार पुनः इस नगर का नाम प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गौरवान्वित हुआ, जब महाराजा मर्दनसिंह ने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का अंतर्मन से साथ दिया और हारकर भी अनेक वर्षों तक अंग्रेजों से लड़ते रहे। वे चाहते तो अच्छी पेंशन राशि के साथ गुजारा कर लेते लेकिन वे; जब तक उनमें तनिक भी हिम्मत रही; अंग्रेजों से लड़ते रहे। किन्तु भारत के स्वतंत्रता संग्राम का जब इतिहास लिखा गया तो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के पराक्रम की चर्चा के आगे मर्दनसिंह का देश-प्रेम और रणकौशल हवा बनकर उड़ गया। उसे इतिहास में जो स्थान मिलना चाहिए था, वह इतिहासकारों की उपेक्षा के कारण नहीं मिल सका। स्वातंत्र्य काल में पुराणयुगीन वैभवशाली बानपुर एक गया गुजरा परगना और थाना मात्र बनकर रह गया।

इधर, प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर देश भर में अनेक आयोजन होने के समाचार आए। इसी कड़ी में सोचा गया कि क्यों न बानपुर के गौरवशाली अतीत को लेकर बानपुर तथा इस क्षेत्र से जुड़े अन्य बुन्देली संस्कृति तथा साहित्य-रचनाधर्मी मनीषियों, जिनकी इस क्षेत्र में अखिल भारतीय पहचान है, से प्रामाणिक दस्तावेज प्राप्त कर एक स्मारिका के रूप में प्रकाशित कर अपनी भावी पीढ़ी के मार्गदर्शनार्थ प्रस्तुत किया जा सके। यहां के निस्तेज बन चुके जीवन में एक ऐसी संग्रहणीय कृति पाठकों के सामने आ सके, जो यहां के होनहारों के लिए एक प्रेरणास्रोत बने। इस कार्य में हम लोग कितने सफल हुए हैं, यह तो सुधी पाठक एवं विद्वत् समाज ही निर्णय करेगा, किन्तु मातृभूमि के ऋण से उऋण होने के उद्यम में सफलता-असफलता कदाचित् महत्वपूर्ण नहीं रह जाती; क्योंकि यह कृति किसी लालच अथवा विवशता में तैयार नहीं हुई है।

इसमें अधिकांश सामग्री बानपुर से संबंधित देने का प्रयास किया गया है। बानपुर से संबंधित जो रचनाएं इतस्ततः ग्रंथों में प्रकाशित-प्रसारित थीं, अपने पाठकों के लिए उन्हें वहां से साभार प्रकाशित किया जा रहा है बानपुर से इतर कुछ बुन्देलखण्ड संबंधी आलेख उनकी मौलिकता तथा नवीनता के कारण प्रासंगिक लगे हैं। पुस्तक में आए रचनाकारों का सामान्य परिचय संपादक द्वारा दिया गया है। इस 'विविधा' में बानपुर से संबंधित अनेक तथ्य नहीं आ पाए हैं। पुस्तक को किसी सरकारी आंकड़ेबाजी में उलझाना ठीक भी नहीं। यों किसी कृति को उसकी संपूर्णता और सर्वांगता में पूरा नहीं किया जा सकता है। फिर, यह काम आगे भी तो जाना चाहिए। 'विविधा' को तैयार करवाने में बुन्देलखण्ड के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों से आलेखों तथा उनके बहुमूल्य सुझाव-संकेतों से जो मुझे सहायता प्राप्त हुई है; तत्प्रति मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूं। मैं इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ दिए गए आर्थिक सहयोग प्रदाता बंधुओं, विज्ञापन दाताओं एवं सुधीजनों का आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके अन्य सहयोग से पुस्तक का प्रकाशन संभव हो सका। चि0 राकेश ने 'विविधा'' के संपादन का ही गुरुतर कार्य नहीं किया है, अपितु अत्यल्प समय में इसे लैपटॉप पर स्वयं मुद्रित करके टंकण की त्रुटियां कम कर दी है, एतदर्थ उसे शुभाशीर्वाद। यहां के नौनिहालों द्वारा बानपुर के गौरव की अभिवृद्धि हो; ईश्वर से यही कामना है।

बानपुर, शरद पूर्णिमा संवत् 2064
(महाराजा मर्दनसिंह जयंती)
तदनुसार दि0 26.10.2007

पं0 बाबूलाल द्विवेदी
प्रधान संपादक

मो 9838303690

'संलग्न वृंत पर चिंत्य प्राण'

मनुष्य स्वभाव से ही चिन्तनशील है। जीवन और चिन्तन दोनों साथ साथ चलते हैं चिन्तन तथा भावना के अनुसार ही मनुष्य के व्यक्तित्व का गठन होता है। मनुष्य अपने चिन्तन को विविध कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति से परिचित होने के लिए उसके ऐतिहासिक स्वरूप को जानना आवश्यक है।

अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बुन्देलखण्ड भारत का हृदय-स्थल है। यह विंध्य पर्वत श्रृंखला से घिरा हुआ बुद्ध कालीन षोडश महाजनपदों में से एक 'चेदि' महाजनपद था। इससे पहले पुराणों में इस भू-भाग का नाम मध्य देश पाया गया है। इसी आधार पर इसे ब्रिटिश शासन काल में 'सेण्ट्रल इंडिया' नाम से पुकारा गया। गोंड़ जाति की प्रधानता के कारण यह प्रदेश 'गोंड़वाना' नाम से संबोधित हुआ। वनों की प्रधानता के कारण यह क्षेत्र 'आरण्यक' या 'वन्य देश' के नाम से जाना गया। दस नदियों के जल प्रवाह के कारण यह क्षेत्र 'दशार्ण' के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

छठीं शती ईसवी में यह यमुना और नर्मदा नदी के बीच का यह भू-भाग 'जुझौति' 'जैजाकभुक्ति', 'जाजहोति' आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ। जैजाकभुक्ति में चंदेलों का राज्य था। इसके संस्थापक 'नन्नुक' ने अपनी राजधानी खजुराहो रखी। नन्नुक के पौत्र जयशक्ति (जैजा) और विजयशक्ति महान विजेता थे। इनकी युद्धप्रिय प्रवृत्ति के कारण इस अंचल का नाम 'युद्ध देश' या 'जैजाकभुक्ति' कहलाया। कुछ लोग इस नाम को जुझार सिंह के नाम से जोड़ कर देखते हैं और जुझौतिया ब्राह्मणों को जुझार सिंह द्वारा हरदौल को मरवा दिए जाने पर किए गए अघमर्षण यज्ञ में भोज करने के कारण ऐसे ब्राह्मणों का आस्पद जुझौतिया मानते हैं किंतु यह कोरी मनगढ़ंत बातें हैं। जुझार सिंह सोलहवीं शताब्दी में हुए थे और इस क्षेत्र का 'जैजाकभुक्ति' चंदेल काल से ही चला आ रहा नाम है।

इस प्रदेश का बुन्देलखण्ड नामकरण अपेक्षाकृत आधुनिक है। निश्चित रूप से यह नाम बुन्देलों की सत्ता स्थापित होने के बाद पड़ा। यह नाम सन् 1531 से सन् 1554 ई0 तक चरखारी के शासक रहे भारती चंद्र ने दिया था। बुन्देलखण्ड नाम 'विंध्येलखण्ड' का बिगड़ा हुआ रूप है। विंध्य और इला पर्वत श्रेणियों के बीच अवस्थित होने के कारण यह अंचल विंध्येलखण्ड कहलाया। बुन्देलों के आदि पुरुष गहरवार क्षत्रिय पंचम ने विंध्य श्रेणियों से घिरे हुए इस प्रदेश में राजसत्ता स्थापित करते हुए 'विंध्येला' उपाधि धारण की। विंध्येला शब्द से ही बुन्देला नाम प्रचलित हुआ और वह क्षेत्र जहां बुन्देलों का शासन रहा, बुन्देलखण्ड कहलाया। पंचम गहरवार विंध्यवासिनी देवी का परम भक्त था लोगों में उत्साह में किसी बात को अतिशयोक्तिपूर्ण कहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अतः कुछ लोग पंचम गहरवार द्वारा अपनी रक्त-बूंदों को विंध्यवासिनी देवी को अर्पित करने के कारण उसे 'बुंदेला' कहते हैं, पर यह व्युत्पत्ति भाषावैज्ञानिक आधार पर तर्कसंगत नहीं जान पड़ती।

भौगोलिक दृष्टि से यमुना, नर्मदा, चंबल, बेतवा, धसान, केन और टौंस नदियों से घिरे विस्तृत भू-भाग को 'बुन्देलखण्ड' के नाम से जाना जाता है। जन-साधारण में मोटे तौर पर बुन्देलखण्ड की सीमाओं के बारे में बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल के गुरु महामति प्राणनाथ का यह दोहा प्रचलित है -

इत जमुना उत नर्मदा इत चंबल उत टोंस।
छत्रसाल सौं लरन की रही न काहू होंस।।

इस क्षेत्र की भाषा बुन्देली है। वर्तमान में यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश के झांसी, ललितपुर, जालौन, बाँदा, चित्रकूट, हमीरपुर एवं महोबा जनपद तथा मध्य प्रदेश के टीकमगढ़, पन्ना, छतरपुर, सागर, दमोह, होशंगाबाद, नरसिंहपुर, जबलपुर, बैतूल, छिंदवाड़ा, सिवनी, बालाघाट, मण्डला, विदिशा, रायसेन, गुना, शिवपुरी, दतिया, ग्वालियर, मुरैना एवं भिण्ड जिलों में अवस्थित है।

उत्तर प्रदेश राज्य के ललितपुर जनपद का एक अतिप्राचीन कस्बा बानपुर बुन्देलखण्ड का एक गौरवशाली किन्तु अचर्चित स्थान है। मराठी भाषा में पं0 विष्णु भट्ट गोंडसे द्वारा 1857 के गदर का आंखों देखा हाल उनकी पुस्तक 'माझा प्रवास' में दिया गया है, जिसका अनुवाद सुप्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर ने 'आंखों देखा गदर' नाम से किया है। इस पुस्तक में बानपुर नरेश ने अंग्रेज गवर्नर के प्रस्तावों का पुरजोर विरोध किया था। गौरतलब है कि लक्ष्मीबाई के दरबार में पं0 गोंडसे जी कुछ दिनों के लिए उपस्थित रहे थे। इसी यात्रा वृतांत में दिया गया है कि बानपुर के राजा को लक्ष्मीबाई ने अपना बड़ा भाई माना था। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने देश में सर्वप्रथम अंग्रेजों के विरुद्ध 'स्वराज्य' शब्द का उल्लेख करते हुए देश से अंग्रेजी शासन के विरुद्ध युद्ध करने का संकल्प बानपुर नरेश मर्दनसिंह को लिखे अपने पत्र में व्यक्त किया था। इस पत्र का उल्लेख प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ वृन्दावन लाल वर्मा ने अपने 'झांसी की रानी' उपन्यास में किया है। बाद में पं0 वासुदेव गोस्वामी ने स्वतंत्रता संग्राम में बानपुर के योगदान पर सर्वप्रथम लिखी अपनी पुस्तक 'विद्रोही बानपुर' में यह स्वीकार किया कि उसी पत्र से उन्हें एक नई प्रेरणा मिली। महारानी लक्ष्मीबाई

और बानपुर नरेश मर्दनसिंह ने मेरठ विद्रोह की चिनगारी उठने के पूर्व ही अंग्रेजों के विरुद्ध बिगुल फूंकने की योजनाएं बना ली थीं, जो उनके परस्पर हुए पत्र-व्यवहार को देखकर समझीं जा सकतीं हैं। बानपुर नरेश मर्दनसिंह ने लक्ष्मीबाई को अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध में अनेकविध सहायता की। बाद में मर्दनसिंह ने स्वयं अंग्रेजों से लोहा लिया और अंततः गोरों द्वारा गिरफ्तार होकर क़ैद में ही स्वर्गवासी हुए। बानपुर और यहां के राजा के योगदान को रेखांकित करना इतिहास की पुनर्लेखनीय आवश्यकता है।

वर्तमान में बानपुर ही क्या संपूर्ण बुन्देलखण्ड की स्थिति सूखे और किसानों की बदहाली के कारण अत्यधिक चिन्ताजनक हो चुकी है। यहां की पारंपरिक वैभवशाली संस्कृति की अक्षुण्णता की आशा आज के पतनोन्मुख समाज एवं दो जून की रोटी तलाशते आम आदमी से कैसे की जा सकती है ? महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने बुन्देलखण्ड की इस सोचनीय दशा को बहुत पहले लक्षित कर लिया था-

निश्चल अब वही बुन्देलखण्ड, आभा गत
निःशेष सुरभि कुरबक समान
संलग्न वृंत पर चिन्त्य प्राण
बीता उत्सव ज्यों, चिन्ह म्लान, छाया श्लथ।

तथापि, कठिन चुनौतियों और विपरीत स्थितियों के बीच ही जिजीविषा और मरजीवड़े की पहचान हुआ करती है। 'चिन्त्य प्राण' ही कभी जीवन्त और सक्रिय होंगे; इसी आशा के साथ बानपुर तथा बुन्देलखण्ड के जनजीवन और उसके चिन्तन को प्रस्तुत करता हुआ यह लघुप्रयास सुबुद्ध पाठकों के समक्ष सादर संप्रस्तुत है।

उरई
गणतंत्र दिवस 2008

डॉ राकेश नारायण द्विवेदी
संपादक

संशोधित संस्करण

प्रस्तुत पुस्तक 'बानपुर विविधा' का संशोधित संस्करण है, पुस्तक में सम्मिलित लेखों के प्रतिपाद्य के कारण इसे अब 'बानपुर और बुंदेलखंड' नाम से ई रूप में प्रकाशित किया जा रहा है । मुझे विश्वास है, तकनीकी प्रसार और उपयोगिता के फलस्वरूप ई रूप में पुस्तक की सामग्री अध्येताओं की संबल बनेगी ।

शब्दार्णव, उरई
देवोत्थानी एकादशी 2014

राकेश नारायण द्विवेदी
मो 9236114604
email rakeshndwivedi@gmail.com

1857 की क्रान्ति में बानपुर का योगदान

-पं0 बाबूलाल द्विवेदी

ओरछा के राजा मधुकरशाह के पुत्र रामशाह अपने पिता के बाद ओरछा के महाराज हुए । उस समय भारत पर मुगलों का राज्य था । रामशाह के अनुज भ्राता वीर सिंह ने जहांगीर के कहने पर उसके पिता अकबर के नवरत्नों में से एक अबुल फजल की हत्या कर दी । इसके एवज में जहांगीर ने रामशाह को हटाकर वीर सिंह को ओरछा की राजगद्दी पर आसीन कराया ।

रामशाह की वंश परंपरा में प्रजापाल का छोटा भाई मोदप्रहलाद सन् 1808 में चंदेरी राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ । मोदप्रहलाद अत्यंत विलासी राजा था । उसे प्रजा की कोई चिन्ता नहीं थी । चन्देरी राज्य के नगर तालबेहट में एक बार मोदप्रहलाद ने ब्राह्मण परिवारों की नौ कन्याओं के साथ काला मुंह करने का प्रयत्न किया । मोदप्रहलाद तथा उनके आदमियों ने उनसे दुर्व्यवहार किया फलतः किले के पूर्वी दरवाजे पर पहुँचकर सभी नौ लड़कियों ने अपने सिर पत्थर पर मार-मारकर आत्म हत्या कर ली ।

तालबेहट पूर्णतः ब्राह्मणों की बस्ती थी । ब्राह्मणों में अनेक ख्यातिलब्ध विद्वान थे जिनका बुन्देलखण्ड एवं उसके आसपास के राजदरबारों में सम्मान था ।

लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार का समाचार सुनकर नगर के लगभग सभी ब्राह्मण किले पर पहुँच गए । उन्होंने बहुत प्रयत्न किया पर किले के दरवाजे नहीं खोले गए । यहाँ तक कि मृत कन्याओं के शव भी अन्त्येष्टि करने के लिए उनके घर वालों को नहीं दिये गये । स्वभावतः सारा ब्राह्मण समाज उत्तेजित हो उठा । ब्राह्मण शास्त्र प्रवीण अवश्य थे पर शस्त्र प्रवीण नहीं । वे एक साथ चिल्ला उठे, 'इस अत्याचारी और पापी राजा का सत्यानाश हो' । ब्राह्मणों का यह शाप केवल मौखिक नहीं था वरन् उसकी पूर्ति हेतु उन्होंने उपाय भी आरम्भ कर दिया । तालबेहट छोड़कर कुछ ब्राह्मण ग्वालियर पहुँचे और उन्होंने ग्वालियर के सिंधिया राजा जियाजी राव के दरबार में मोर प्रहलाद के कुकृत्य की पूर्ण गाथा सुना डाली । यही नहीं जियाजी राव को यह भी विश्वास दिलाया कि यदि चन्देरी के बुन्देला राज्य पर ग्वालियर की सेनाएं आक्रमण करती हैं तो न केवल तालबेहट के ब्राह्मण वरन् चन्देरी के भी प्रभावशाली ब्राह्मण तथा अन्य सरदार आक्रामकों को पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे ।

प्रजापाल की मृत्यु के पश्चात खिलचीपुर वाले फौजदार तथा रजवाड़े वाले राव साहब राजा मोदप्रहलाद के घोर विरोधी हो गए थे । उन दोनों को सन्देह था कि प्रजापाल को वनगारों ने नहीं वरन् मोर प्रहलाद के अंतरंग साथियों ने ही मरवा डाला है । चूंकि मोर प्रहलाद स्वयं राजा बनना चाहता था यह तब तक सम्भव नहीं था जब तक कि प्रजापाल जीवित था । अतः यह हत्या मोद प्रहलाद के इशारे से की गई थी । तालबेहट की घटना ने उन दोनों के सन्देह को निश्चितता में परिणत कर दिया । उन्होंने सोचा कि जो विलासी पुरुष इतना जघन्य तथा नीच कृत्य कर सकता है । वह राज्य के लोभ में अपने बड़े सहोदर भाई की भी हत्या करवाने में आगा पीछा नहीं सोच सकता ।

तालबेहट के ब्राह्मणों ने जब मोदप्रहलाद के कुकृत्य की सूचना फौजदार और रजवाड़े वाले रावसाहब को दी तथा उन्होंने अपने राजद्रोह करने का मन्तव्य अभिव्यक्त किया तो उन दोनों ने पूरा सहयोग देकर अत्याचार का प्रतिकार करने का पूर्ण आश्वासन दिया ।

तालबेहट के वातावरण को देखते हुए मोदप्रहलाद के पुरोहित ने उन्हें तुरन्त तालबेहट छोड़कर चन्देरी चले जाने की सलाह दी । तदनुसार मोदप्रहलाद जेठ के महीने में तालबेहट से चन्देरी चले गए ।

मोदप्रहलाद के तालबेहट से चन्देरी चले जाने से तालबेहट के विरोधियों की चन्दरी शासन के विरुद्ध :डयंत्र करने का खुला रास्ता मिल गया । ब्राह्मणत्व की गरिमा ने उन ब्राह्मणों को भी; जो हृदय से पूर्ण राज्य भक्त और राजकर्मचारी थे ; राजा का विरोध करने के लिए विवश कर दिया ।

दो

स्वतंत्र व्यक्तियों में बबेले परिवार के सदस्यों का प्रमुख हाथ था । यह परिवार उस समय तालबेहट में अत्यन्त समृद्ध एवं प्रभावशाली समझा जाता था तालबेहट के ब्राह्मणों को राजपरिवार से कोई द्वेष न था किन्तु वे किसी भी दशा में राजसिंहासन पर मोदप्रहलाद को सहन नहीं कर सकते थे । पूरे राज्य में लगभग सभी प्रमुख स्थानों में ब्राह्मणों की प्रधानता थी तथा वे तालबेहट के

ब्राह्मणों से संबंध सूत्रों में बँधे हुए थे । बबेले परिवार के संबंध भी ललितपुर, चन्देरी, बानपुर, जखौरा तथा बाँसी के ब्राह्मण परिवारों से थे ।

इन सबकी अभिलाषा थी कि मोदप्रहलाद को राज्याधिकार च्युत करके चन्देरी की मदन सभा को नष्ट कर दिया जाए तथा सिंहासन पर कुँवर छत्रसाल सिंह को, जो स्वर्गीय राजा रामचन्द्र के कनिष्ठ पुत्र थे, आसीन कर दिया जाए फौजदार अचल सिंह तथा रजवाड़े वाले रावसाहब भी यही चाहते थे ।

सिंधिया से मिलकर तालबेहट वालों ने यही तय किया था कि उस बातचीत में केवल इतना अधिक जोड़ा गया था कि छत्रसाल सिंह के सिंहासनारूढ़ होने पर कुछ मुद्दों पर चन्देरी राज्य ग्वालियर के अधीन रहेगा ।

कम्पनी सरकार द्वारा पराजित होने तथा कोलकाता के गवर्नर जनरल से सन्धि हो जाने के उपरान्त जियाजी राव सिंधिया अपने को अपमानित समझने लगे थे । अपने पड़ोसी शासकों पर वह मराठा शक्ति का प्रभाव कम हुआ अनुभव करते थे । तालबेहट के ब्राह्मणों के निमंत्रण ने अपना उखड़ा हुआ सिक्का जमाने का उन्हें सुन्दर अवसर प्रदान किया । इसका लाभ उठाने के लिए उन्होंने ग्वालियर में रखी अँग्रेजी सेना तथा अपनी देशी सेना लेकर चन्देरी पर तुरन्त आक्रमण कर दिया ।

पूष का महीना था । कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी । विंध्य उपत्यिका पर बसा चन्देरी अत्यंत ठंडा हो रहा था । दोपहर में मोदप्रहलाद को सूचना मिली कि ग्वालियर की सेना ने उत्तर दिशा की ओर से उनके राज्य में प्रवेश कर दिया है ।

मोदप्रहलाद विलासी अवश्य थे किन्तु अकारण सिंधिया की सेनाओं का उनकी राजधानी की ओर बढ़ना वे सहन न कर सके । वह क्रोध से आग बबूला हो गए । उन्होंने सूचनावाहक से ही चौधरी अचल सिंह फौजदार को तुरन्त भेजने के लिए कहा और स्वयं सभा कक्ष में आ गए । मोदप्रहलाद ने लगभग एक घंटा प्रतीक्षा की किन्तु कोई नहीं आया । कुछ देर में उन्होंने अपने एक दरवान को फौजदार को बुलाने के लिए भेजा । दरवान ने लौटकर सूचना दी कि फौजदार खिलचीपुर गए हैं ।

मोदप्रहलाद झुँझला उठे । उन्होंने तुरन्त रजवाड़े वाले रावसाहब को भेजने के लिए आदेश दिया । किन्तु उत्तरस्वरूप ज्ञात हुआ कि राव भी चन्देरी में नहीं हैं , रजवाड़ा गए हुए हैं ।

मोदप्रहलाद ने तुरन्त घुड़सवार खिलचीपुर और रजवाड़ा फौजदार तथा रावसाहब के बुलवाने को रवाना किए और स्वयं किले की रक्षित सेना को युद्ध के लिए तैयार करने में जुट गया ।

पाँच दिन में सिंधिया की सेना बिना किसी प्रतिरोध के बड़ी बामौर तक बढ़ी चली आई ।

परिस्थिति यह थी कि यदि सिंधिया की सेना का जबरदस्त प्रतिरोध नहीं किया गया होता तो वह दो दिन में सफलतापूर्वक चन्देरी पर अधिकार कर सकती थी क्योंकि राजा की अदूरदर्शिता के कारण चन्देरी के चारों ओर बनाए गए सभी रक्षा दुर्ग सैन्य विहीन एवं रिक्त पड़े थे । जिन लोगों पर उनकी रक्षा का भार था वे न तो मोदप्रहलाद पर कोई आस्था रखते थे और न ही वे अपने-अपने सैनिकों के साथ उनके हित में आत्माहुति देने के लिए कटिबद्ध थे ।

तीन

खिलचीपुर से फौजदार अचल सिंह ने राज्य के आह्वान के उत्तर में स्पष्टतः लिखकर भेज दिया कि वे मोदप्रहलाद को न्याय एवं नियम संगत चन्देरी राज्य का शासक नहीं मानते । यदि मोदप्रहलाद राजगद्दी छोड़कर चन्देरी का राज्य कु0 छत्रसाल सिंह को देने को तैयार हों तो वे सेना का संचालन करने आ सकते हैं । यदि मोदप्रहलाद कहें कि बड़े होने के नाते गद्दी पर उनका अधिकार है तो गलत है । नियमानुसार राज्य के अधिकारी प्रजापाल थे । राज्य के लोभ में अंधे होकर मोदप्रहलाद ने ही अपने बड़े भाई प्रजापाल की हत्या करवाई है । यही नहीं विलासिता एवं कामुकता के वशीभूत होकर मोदप्रहलाद क्वांरी ब्राह्मण कन्याओं के साथ बलात्कार करने का प्रयत्न किया जिसके कारण उन्हें आत्महत्या करने के लिए विवश होना पड़ा । अतः मोदप्रहलाद न केवल भाई का हत्यारा है वरन् उसके सिर पर कन्या हत्या, बाल हत्या तथा ब्रह्म हत्या का भी पाप है । ऐसे पापी व्यक्ति को मैं न तो चन्देरी का राजा मानता हूँ और न ही हेमकर्ण, रुद्रप्रताप, मधुकरशाह एवं रामशाह का वंशज मानता हूँ ।

राव साहब रजवाड़ा वालों का उत्तर भी इसी से मिलता जुलता था । उसमें उन्होंने यह अधिक जोड़ दिया कि मोदप्रहलाद ने अपने कुकृत्यों से बुन्देलों के पवित्र कुल को कलंकित किया है ।[1]

मोदप्रहलाद चन्देरी राज्य के सुदृढ़ स्तम्भ समझे जाने वाले इन दो सरदारों के व्यवहार से अवाक रह गए, उन्हें इन दोनों सरदारों पर मन ही मन क्रोध आ रहा था । किन्तु वे स्वयं इस समय इनमें से किसी को भी दण्ड देने में असमर्थ थे । अन्ततः उन्होंने अन्त तक अपनी सुरक्षा सेना लेकर युद्ध करने का निश्चय किया । यथासंभव सेना की व्यवस्था की और चन्देरी से छः मील दूर चौथाई सेना लेकर पहाड़ों से उतरकर छापा मारने की योजना बनाई । इस प्रकार शत्रु सेना को यथासंभव क्षति पहुँचाकर पुनः किले में लौट आने का विचार किया ।

अपने पुरोहित की सम्मति के अनुसार इन्होंने सभी रनवास को चन्देरी से 6-7 मील दूर स्थित पंचम महल में ,जो सघन वन से घिरा हुआ था, रखने का विचार किया । मोद प्रहलाद के रनवास में तीन विवाहिता तथा बीस रखैल स्त्रियां और उनकी परिचारिकाएं कुल लगभग सवा सौ से ऊपर स्त्रियां थीं ।

मोदप्रहलाद इस सुविचारित योजना को क्रियान्वित करने के विचार से रनवास में गए और रनवास की महिलाओं से पंचम महल जाने के लिए कहा तो वे मोदप्रहलाद के साथ रहने की शर्त पर वे पंचम महल आने को तैयार हुईं ।

विवश होकर मोदप्रहलाद ने चन्देरी की रक्षा का भार अपने द्वितीय पुत्र गजराज सिंह को सौंपा तथा स्वयं अपनी तेईस स्त्रियों, उनकी परिचारिकाओं एवं दासियों के साथ पंचम महल आ गए ।

गजराज सिंह अनुभवहीन थे । वह अभी 18-19 वर्ष के किशोर ही थे मोदप्रहलाद के बड़े पुत्र मर्दन सिंह को अपने पिता के क्रियाकलापों से आन्तरिक घृणा थी जिससे मोदप्रहलाद ने अपने वयस्क पुत्र को अपने स्वच्छन्द जीवन यापन में व्याघातक समझकर उन्हें अपने से दूर बार नामक स्थान में रख दिया था । यही नहीं सिंधिया के आक्रमण की सूचना मर्दन सिंह को नहीं दी गई । यदि यह सूचना समय पर मर्दन सिंह को मिल जाती तो मोदप्रहलाद की इतनी दयनीय स्थिति न हो पाती ।

मर्दन सिंह उत्साही, वीर एवं दूरदर्शी युवक थे तथा जो लोग उनके सम्पर्क में रहते थे वे उनकी सच्चरित्रता के प्रशंसक थे ।

ग्वालियर की सेनाएं अबाध गति से बढ़ती हुई चन्देरी के उस पहाड़ी दुर्ग तक चली आईं जो समस्त बुन्देलखण्ड में कालिंजर के बाद सबसे दुर्गम दुर्ग समझा जाता था तथा जिसे जीतने में बाबर सरीखे अद्वितीय योद्धा को दाँतों पसीना आ गया था । जिसकी यशपताका और पवित्रता की रक्षा 14 सहस्त्र आर्य ललनाओं ने जौहर में आत्मदाह करके की थी ।

दौलतराव सिंधिया ने प्रानपुरा में अपनी सेना का पड़ाव डाला तथा एक पत्र किले में भिजवाया जिसमें चन्देरी का किला खाली करने के लिए कहा गया था । किले में पत्र पहुंचने के बाद चौधरी अचलसिंह फौजदार और रजवाड़े वाले रावसाहब जियाजी राव सिधिया से मिले । उन्हें भेंट अर्पित की । सिंधिया की सहमति से उन दोनों ने किले में जाकर गजराज सिंह को समझा बुझा कर चन्देरी का विशाल पहाड़ी दुर्ग बिना एक बूंद रक्त गिरे ग्वालियर के सिंधिया राजा के अधिकार में करवा दिया।

सिंधिया ने चन्देरी पर आक्रमण करने के पूर्व अपनी सेना को दो भागों में बांटकर प्रयाण किया था । सेना का एक भाग बामौर होता हुआ सीधा चन्देरी पर चढ़ दौड़ा जिसका नेतृत्व स्वयं जियाजीराव सिंधिया के हाथ में था । सेना के दूसरे भाग में वह अंग्रेजी सेना थी जो सहायक संधि के अनुसार ग्वालियर में अंग्रेजों की ओर से रखी गई थी । वह सेना बसई से आगे बढ़कर बेतवा नदी पार करके आगे बढ़ी । उसने बिना किसी विरोध के तालबेहट पर अधिकार कर लिया तथा तेजी से बिजरौठा पर अधिकार करती हुई ललितपुर आकर रुकी । बाँसी एवं मुहारे के ठाकुरों ने जमालपुर के पास इसका प्रतिरोध किया किन्तु वे इसे रोकने में असफल रहे । यह सेना जॉन वैप्टिस के नेतृत्व में बढ़ रही थी ।[2]

चार

राजा के निकम्मेपन के कारण सभी सरदार निराश एवं हतोत्साहित थे । ऐसी परिस्थिति में सफलतापूर्वक प्रतिरोध किए जाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

जॉन वैप्टिस ने ललितपुर के पास कारा पत्थर नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला जाखलौन के जमीदार जवाहर सिंह को अब सहज में ही चन्देरी सिंधिया के हाथ में समाचार मिला तो वह विह्वल हो उठा । उसने जो कुछ सेना उसके पास थी उसे शीघ्रातिशीघ्र तैयार किया । रातों रात ककरुवा वाले गन्धर्व सिंह तथा पाली के राव साहब को बुलवाया गया । दिन भर तीनों विचार विमर्श करते रहे । अन्त में तीनों ने कुल 500-600 सैनिकों को इकट्ठा किया । कुछ सैनिक मसौरा वालों के भी आकर मिल गए । इस प्रकार सात सौ से ऊपर घुड़सवारों को लेकर जवाहर सिंह ने सूर्यास्त के बाद बन्दरगुढ़ा के पास कनावटा घाट से बेतवा नदी पार की । वह अपनी सेना सहित सूर्य निकलने के पूर्व पंचम महल पहुंच गया ।

इस सेना ने पहुंचकर अविलम्ब अपने आगमन की सूचना महल के भीतर पहुंचाई । किन्तु एक पहर दिन चढ़े तक महल से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हो सका। महल के भीतर भी यह सूचना मोदप्रहलाद को बड़ी मुश्किल से मिल पाई ।

मोदप्रहलाद के क्षत्रिय हृदय में एक बार पुनः युद्ध के लिए उत्साह जागृत हो उठा। उन्होंने जवाहर सिंह से मंत्रणागृह में मिलने के लिए समय निर्धारित कर दिया जवाहर सिंह तथा गंधर्व सिंह दोनों मंत्रणागृह में पहुंच गए किन्तु बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी मोदप्रहलाद इन लोगों से मिलने नहीं आए । आखिर ऊबकर ये दोनों उठकर चले आए । मिलने का समय निर्धारित किए जाने पर भी मोदप्रहलाद का मिलने के लिए न आना इन दोनों को बहुत खला । जवाहर सिंह तथा गंधर्व सिंह ने इसे अपना अपमान समझा । ये दोनों खीझकर जब बाहर आने लगे तब ड्योढ़ीवान ने इन्हें बतलाया कि राजा मोदप्रहलाद तो वास्तव में अपनी पत्नियों द्वारा एक कैदी की स्थिति में हैं । उनकी 23 रानियों का समुदाय उन्हें बाहर न निकलने के लिए विवश किए है । वे बाहर निकलना चाहते हैं किन्तु उनकी रानियाँ चारों ओर से घेरकर उन्हें न निकलने के लिए बाध्य कर देती हैं ।

राजा की उपहासास्पद स्थिति का ज्ञान होने पर उन दोनों को हंसी आ गई। साथ ही ऐसे पुरुष पर उन दोनों को क्रोध भी आया । उन्होंने अपने सैनिक शिविर में आकर विचार विमर्श किया । तत्पश्चात उन्होंने एक पत्र राजा के नाम से महल में भेजा । उस पत्र में उनके पूर्वजों की वीरता का वर्णन तथा बुन्देला वंश की श्रेष्ठ परंपरा का विवरण दिया हुआ था ।

मोदप्रहलाद को पत्र मिला किन्तु उनकी रानियों ने उन्हें समझा दिया कि इस समय कोई सरदार उनके पक्ष में नहीं है । जवाहर सिंह उनके साथ छल करना चाहता है और उन्हें पकड़कर सिंधिया के सामने प्रस्तुत करके अपना हित साधन करना चाहता है ।

फलतः महल से बाहर न तो मोदप्रहलाद आए और न ही पत्र का कोई उत्तर प्राप्त हुआ । अन्त में इन लोगों को बलपूर्वक मोदप्रहलाद को महल से बाहर निकालने का निश्चय करना पड़ा । उन्होंने अपनी सेना से चारों ओर महल को घिरवा दिया और महल में धमकी भरी खबर भेजी कि महाराज अपने रनवास सहित महल से बाहर निकलकर; जहां हम लोग चाहते हैं; चलें । अन्यथा महल में चारों ओर से आग लगा दी जाएगी । यह धमकी काम कर गई । मोदप्रहलाद बाहर आए किन्तु बहुत समझाने पर भी वे सिंधिया से युद्ध करने के लिए तैयार न किए जा सके । अन्त में यह निश्चय किया गया कि पहले मोदप्रहलाद के निवास करने के लिए ऐसे सुरक्षित स्थान की व्यवस्था की जाए जहां से वे सिंधिया या उनके सहायक फिरंगी सरलतापूर्वक उन्हें अपने चंगुल में न फँसा सकें । उसके बाद राज्य के उद्धार के लिए प्रयत्न किए जाएं निर्णय के अनुसार रातों-रात मोदप्रहलाद को बेतवा पार करके जाखलौन लाया गया। यहां एक दिन विश्राम करके पाली, बंगरिया, विरधा, सिंगैपुर, सिलावन होकर बानपुर भेज दिया गया ।[3]

पाँच

बानपुर मोदप्रहलाद के प्रपितामह दुर्जन सिंह ने अपने द्वितीय पुत्र रणधीर सिंह ;धीरज सिंह [4] को जागीर के रूप आजीविका निर्वाह हेतु दिया था । उनके वंशज इस समय वहां रहते थे । मोदप्रहलाद के बानपुर आ जाने से एक समस्या यह उत्पन्न हो गई कि रणधीर सिंह के वंशजों की अब भरण-पोषण की क्या व्यवस्था की जाए ? मोदप्रहलाद का बानपुर आ जाने का समाचार सुनकर सेमरा मथुरा से चित्तर सिंह तथा भैलोनी सूबा से जामन पाल ;दोनों मोदप्रहलाद के वंशज भाईद्ध बानपुर आ गए । बार में मर्दन सिंह को भी अपने पिता के चन्देरी से पलायन करके पंचम महल में छिपने , वहां से जाखलौन वालों द्वारा अपने साथ लाने तथा सिंधिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उत्साहित करने एवं मोदप्रहलाद के तैयार न होने पर येन-केन-प्रकारेण महल से उनके निकालने तथा अपने साथ बानपुर लाने का सारा वृतान्त मिल गया था किन्तु मर्दन सिंह बानपुर नहीं आए । जिन फ्रांसीसियों को उनके पितामह ने सेना को प्रशिक्षण देने के लिए नौकर रखा था और उनके निवास के लिए जरया ग्राम दिया था इनको अपने पास बार बुलवाकर पुनः सेना को पश्चिमी ढंग से युद्ध करने की शिक्षा देना आरंभ कर दिया ।[5]

आखिर गंधर्व सिंह ककरुवा वालों का पुत्र कुंवर हिम्मत सिंह मर्दन सिंह को लिवाने के लिए बार गया । मर्दन सिंह ने हिम्मत सिंह को इन शब्दों में उत्तर दिया 'महाराज ने तो पुरखन की सबै डुबै दई । सब फुकतें अपनै देखत भईं । अबका महाराज के दर्शन करने और उने का अपनो मौं दिखाउने । हम तो जा चाउतते कै जबै तालबेट को किलो लै पायं तबै बानपुर महाराज नौ जैयं'

हिम्मत सिंह के बहुत समझाने पर मर्दन सिंह बानपुर जाने को तैयार हुए बानपुर जाने से पूर्व मर्दन सिंह ने सहजाद नदी के किनारे के पूर्वी भू-भाग की सुरक्षा की यथाशक्ति व्यवस्था की । उन्होंने इमलिया, कारीटोरन, बसतगुवां, बस्त्रावन में यथासंभव अधिकतम सैनिक योग्य एवं विश्वस्त अधिकारियों की संरक्षा में नियुक्त किए उसके बाद बार से बानपुर आए । मर्दन सिंह के बानपुर आ जाने पर विचार विमर्श आरंभ हुआ । सर्वप्रथम विचारणीय प्रश्न यह था कि राजा मोदप्रहलाद कहां रहें । जाखलौन वाले जवाहर सिंह पाली वाले राव साहब और ककरुवा वाले गंधर्व सिंह राजा मोदप्रहलाद को बानपुर में ही रखना उचित समझते थे किन्तु बानपुर वाले दीवान किसी भी दशा में बानपुर, जो उन्हें भरण पोषण को मिला था, छोड़ने को तैयार न थे ।

मर्दन सिंह का विचार था कि इस संकट काल में पारिवारिक कलह किसी भी दशा में नहीं बढ़ने देना चाहिए । अतः उन्होंने मत व्यक्त किया कि किसी नि-पक्ष व्यक्ति को पंच बनाया जाना चाहिए जो यह तय करे कि यदि राजा मोदप्रहलाद बानपुर में रहते हैं तो उसके बदले में बानपुर वालों को उसी हैसियत के कौन से गांव दिए जाने चाहिए । जिस प्रकार राजा को उनकी पैतृक संपत्ति के रूप में राज्य प्राप्त हुआ है उसी प्रकार बानपुर वालों को जागीर बंटवारे में दी गई है । हमारे पूर्वज महाराज दुर्जन सिंह द्वारा अपने एक पुत्र को दी गई संपत्ति अथवा उसके किसी भाग को हमें तब तक लेने का अधिकार नहीं है जब तक हम उसके बदले में उतने ही मूल्य की अन्य संपत्ति उन्हें नहीं दे देते हैं । अन्त में बहुत विचार विमर्श के उपरान्त यह निश्चय किया गया ि कइस संबंध में निर्णय करने के लिए ओरछा दरबार को आमंत्रित किया जाए । जब तक यह निर्णय नहीं होता है तब तक मोदप्रहलाद अपने रनवास सहित ग्राम कैलगुवां में रहें । अतः राजा मोदप्रहलाद उनकी रानियां, पुरोहित तथा सेवकगण कैलगुवां भेज दिए गए ।[6]

मर्दन सिंह अपने दोनों कनिष्ठ भ्राताओं गजराज सिंह तथा बखत सिंह को अपने साथ बार ले गए । लगभग एक माह बाद मर्दन सिंह स्वयं टीकमगढ़ गए तथा ओरछा दरबार को सम्यक जानकारी और परिस्थितियों से अवगत कराया । साथ ही अनुरोध किया कि राजा मोदप्रहलाद के रहने के लिए स्थान निश्चित किए जाने के संबंध में उत्पन्न हुई समस्या का निराकरण करने में आप मध्यस्थता करें ।[7] कैलगुवां में पंचायत हुई । परिस्थिति पर विचार करके निर्णय दिया गया कि पारिवारिक बंटवारे में भरण पोषण के निमित्त दी गई जागीर लौटाई नहीं जा सकती।

मर्दन सिंह सैनिक हीन फौज से बानपुर की स्थिति का मूल्यांकन कर रहे थे । अतः उन्होंने बानपुर जागीर के बदले में गदयाना, खजुरिया, करमई और बजर्रा गांव देने का प्रस्ताव किया । गदयाना, खजुरिया और बजर्रा खेती के विचार से बानपुर से कहीं अच्छे थे अतः बानपुर वाले इस पारस्परिक परिवर्तन से सहमत हो गए । सन् 1844 में यह परिवर्तन कर दिया गया । मोदप्रहलाद के बानपुर निवास के उपरान्त मर्दन सिंह का बार से बानपुर आना जाना बढ़ गया था । इसका उद्देश्य बानपुर के निकटवर्ती ग्रामों वीर, सुनवाहा, गुगरवारा एवं खोंखरा में रहने वाले खंगारों से घनि-ठता बढ़ाना था । खंगार एक साहसिक जाति रही है । उनकी जीविका दुस्साहसिक कार्यों द्वारा अर्थोपार्जन द्वारा चलती रही है । उनके साहस, छल - बल एवं कौशल से लाभान्वित होना चाहते थे ।

संयोग से मोदप्रहलाद बीमार पड़ गए । उनके उपचार एवं परिचर्या के उद्देश्य से मर्दन सिंह ने बानपुर अपना आवास बना लिया और अपने दोनों छोटे भाइयों गजराज सिंह तथा पर्वत सिंह को बार के किले की रक्षा एवं देखभाल के लिए रख दिया ।

बानपुर रहते समय मर्दन सिंह ने नटों से भी संपर्क किया । इन नटों का काम गांव-गांव जाकर अपने शारीरिक करतब दिखाकर अपनी जीविका उपार्जन था। इन नटों के माध्यम से मर्दन सिंह ने जनमानस की सहानुभूति अर्जित करना तथा अपने पिता द्वारा पूर्व शासित भू-भाग में लोकप्रियता अर्जित करना उद्देश्य बनाया।

दूसरी बात यह हुई कि सिंधिया की सहायतार्थ जो अंग्रेजी सेना ललितपुर में रुकी थी उसके लिए गोबध किया जाने लगा । निरीह जनता का हृदय इससे दुखी होता था किन्तु वह कुछ कर नहीं पाती थी । ललितपुर निवासी झुनारे रावत जो बानपुर मुक्ति युद्ध में मर्दन सिंह के एक प्रमुख सहायक हुए । बहुत अंशों में इसी कारण अंग्रेजों से घृणा करने लगे थे ।

बानपुर आने के उपरान्त मोदप्रहलाद निरंतर रोगी रहने लगे । बहुत उपचार के बाद सन् 1847 में उन्होंने अपनी इह लीला समाप्त कर दी ।

इससे पहले सन् 1844 में मर्दन सिंह का राजतिलक कर दिया गया । मोदप्रहलाद की मृत्यु पर फेरा देने के लिए ओरछा की रानी, पन्ना नरेश, दतिया नरेश एवं बिजावर के राजा के अतिरिक्त जाखलौन, ककरुवा, पाली, महरौनी, गदयाना तथा भैलोनी सूबा के जागीरदार आए थे । तेरहवीं के बाद चन्देरी परिवार के सभी जागीरदार एक दिन के लिए रुके रहे किन्त चौधरी साहब (खेत सिंह फौजदार) एवं राव साहब रजवाड़ा न फेरे को आए और न ही राजतिलक में सम्मिलित हुए ।

इन सब जागीरदारों ने पुरा - ककड़ारी नामक स्थान पर एक बैठक का आयोजन किया । इस बैठक में राज्य के खोए हुए भाग को प्राप्त करने के संबंध में विचार विमर्श होता रहा ।

सबसे विषम समस्या अर्थ की थी जिसकी पूर्ति का दायित्व संसुवा - बगौरा के ठाकुरों और बीर, गुगरवारा के खंगारों ने किया । गुप्तचरों का कार्य संपादित करने के लिए मर्दन सिंह ने नटों का सहयोग प्राप्त कर लिया । मर्दन सिंह के सामने स्वतंत्र रूप से कार्य करने के मार्ग में अब केवल एक समस्या यह रह गई थी कि मोदप्रहलाद की विधवा स्त्रियों के भरण पोषण एवं आवास की व्यवस्था कैसे हो ?

मोदप्रहलाद की तीन परिणीता पत्नियां तथा तीस रखैलें थीं । इन रखैल स्त्रियों से मर्दन सिंह बहुत घृणा करते थे । फिर भी कुल मर्यादा का विचार करके इन सबको कैलगुवां में रख दिया । कैलगुवां सुरक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छा स्थान था । उसके पूर्व में जामनी नदी के उस पार ओरछा राज्य था । मर्दन सिंह यह भली प्रकार जानते थे कि यदि कभी ओरछा राज्य से विरोध भी होगा तो राजपरिवार की स्त्रियों पर कोई संकट नहीं आ सकेगा ।

सन् 1847 में जॉन वैप्टिस ने ललितपुर से अंग्रेजी सेनाएं हटाकर ग्वालियर पहुंचा दी ऐसा अनुमान है कि अंग्रेज अपने मित्र जियाजी राव सिंधिया पर पूर्ण विश्वास नहीं करते थे उन्होंने ललितपुर की तुलना में ग्वालियर में अंग्रेजी सेना रखना अधिक उपयुक्त समझा होगा इस सेना को अनुशासित रखने की अपेक्षा ग्वालियर पर देख रेख करना अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ होगा ।

छः

अंग्रेजी सेना का स्थान ग्वालियर की मराठा सेना ने लिया । जनता यदि फिरंगी सेना से गोहत्या के कारण घृणा करती थी तो मराठा सेना को अपनी लूट खसोट के कारण जनता की घृणा का पात्र बनना पड़ा । जनता के असंतोष का पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया । मर्दन सिंह द्वारा शासित प्रदेश की कुल वार्-िक आय 7.50 लाख रुपये थी । उनके पिता जब चन्देरी के सिंहासन पर आसीन थे तब राज्य की आय लगभग 20 लाख रु0 थी । जिसमें से लगभग 2 लाख रुपये राजपरिवार के व्यय के लिए निर्धारित था

। पारिवारिक व्यय में सहसा कमी किया जाना अत्यंत कठिन था । ऐसी स्थिति आय का यह भारी अंतर एक विभीषिका उत्पन्न कर रहा था ।

इसके अतिरिक्त अपने भावी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु भी मर्दन सिंह को अर्थ की आवश्यकता थी ।

उनके सहयोगी खंगारों ने उन्हें इस संबंध में बहुत सहयोग किया । वे सिंधिया शासित प्रदेशों में दूर-दूर तक आकर अपनी हाथ की सफाई से देखते-देखते बहुमूल्य वस्तुएं उठा लाते थे तथा उन वस्तुओं को नजराने के तौर पर मर्दन सिंह को भेंट कर देते थे । बदले में वे पुरस्कार प्राप्त करते थे ।

इस प्रयोग का एक उद्देश्य विपक्षी सिंधिया द्वारा शासित प्रदेश में अव्यवस्था को बढ़ाना तथा उसके प्रतिकूल जन भावना को उभारना था ।

मर्दन सिंह ने राज्यासन पर आसीन होने के उपरांत दो वर्ष का समय अपने शासनाधीन क्षेत्र की व्यवस्था सुधारने में व्यतीत किया । साथ ही साथ अपने पिता द्वारा खोए गये प्रदेश में निवास करने वाले प्रभावशाली व्यक्तियों से संपर्क बढ़ाने का कार्य भी किया जाता रहा । इसी समय संसुवा, बघौरा, कंगीरपुरा आदि के ठाकुरों से छापामार आक्रमण कराकर सिंधिया शासित प्रदेशों के सिंधिया भक्त धनवान नागरिकों को लुटवाकर आतंक फैलाना आरंभ कर दिया ।

फ्रांसीसियों द्वारा पाश्चात्य ढंग से युद्ध करने का जो प्रशिक्षण सैनिकों को बार में देना आरंभ किया गया था । इसका विस्तार किया गया

नटों का काम शत्रुओं के छोटे से छोटे समाचार लाकर देना और उनके गुप्तचरों पर कड़ी दृष्टि रखना था ।

पुरा - ककड़ारी में मर्दन सिंह का युद्ध कोष इकट्ठा किया जा रहा था इस कोष के बारे में कतिपय विशेष व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी को पता नहीं था।[8]

सन् 1845 में मर्दन सिंह ने अपने कतिपय साथियों के साथ अपने राज्य के सीमावर्ती गांवों का दौरा किया । इसके दौरान प्रत्येक स्थान का सामरिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया तथा जहां उचित समझा अपने पूर्ण विश्वस्त व्यक्तियों को प्रशासकीय एवं सैनिक विचार से नियुक्त किया ।

इस प्रकार एक ओर मर्दन सिंह बानपुर को केन्द्र बनाकर अपनी सुरक्षात्मक स्थिति को मजबूत कर रहे थे; दूसरी ओर गंधर्व सिंह ककरुवा वालों की मृत्यु हो जाने के बाद उनके पुत्र हिम्मत सिंह तथा जाखलौन वाले जवाहर सिंह भी शान्त नहीं थे । जाखलौन की प्राकृतिक स्थिति के कारण जवाहर सिंह को सिंधिया विरोधी गतिविधियों को सक्रिय रखने की अधिक गुंजाइश थी । जाखलौन ग्राम पहाड़ियों तथा जंगलों से घिरा हुआ था । गांव से ही पहाड़ियों का सिलसिला आरंभ हो जाता है । यह पहाड़ियां दक्षिण की ओर अधिक ऊँची हो जाती है । घाटियां घने जंगलों से भरी हुई है । पूरे क्षेत्र की तिल-तिल भूमि का ज्ञान जवाहर सिंह तथा उनके अनुचरों को था ।

जवाहर सिंह ने खून और दूध के नाते मानगढ़ करौंदा के जागीरदार, मर्दन सिंह के पूर्वज महाराजा देवी सिंह के वंशज थे, से सहयोग एवं सहायता की याचना की किन्तु वहां का दीवान टालमटोल करता था । अतः जवाहर सिंह ने नाराहट वालों से मिलकर मानगढ़ के एक नगर खिमलासा, इस समय तहसील खुरई जिला सागर में है, को लूट लिया । खिमलासा चारों ओर से मजबूत दीवार से घिरा हुआ था । उसके दरवाजे रात को बन्द कर दिए जाते थे । नगर में प्रवेश करना अत्यंत कठिन था । नगर आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यंत समृद्ध था । दिन दोपहर जाखलौन और नाराहट वाले ठाकुर बारात सजाकर खिमलासा में प्रवेश कर गए और सहसा आक्रमण करके नगर को बुरी तरह लूट लिया ।[9]

हिम्मत सिंह और जवाहर सिंह बेतवा पार करके सिंधिया शासित क्षेत्र में छापे मारकर उनके कोषागारों को लूटना आरंभ कर दिया ।

ककरुवा और जाखलौन वाले मराठों को तंग करने लगे थे । इनकी गतिविधियों के परिणामस्वरूप सिंधिया की सेनाएं जो भू-भाग मर्दन सिंह के अधिकार में शेष बच गया था, उस पर आक्रमण करने का अवसर नहीं पा सकीं ।

सन् 1850 के अन्तिम महीनों में मर्दन सिंह अपने राज्य के दक्षिणी भाग में कुछ सेना लेकर स्थिति का अध्ययन करने तथा यहां के निवासियों से नूतन संपर्क स्थापित करने के उद्देश्य से गए किन्तु इस यात्रा का जो कारण सार्वजनिक रूप से बताया गया वहा अपने राज्य के सीमा क्षेत्र से डाकुओं को खदेड़ना तथा पड़ौस के सभी राज्यों के शान्तिप्रिय नागरिकों सहित अपने राज्य के नागरिकों की सुरक्षा प्रदान करना था ।

धसान नदी के किनारे-किनारे विंध्य श्रृंखलाओं के बीच का यह भाग आज भी डाकुओं का क्रीड़ा स्थल है । उस राजनैतिक उथल-पुथल के समय में अहीरों, सोंरों एवं गौड़ों ने समूहबद्ध होकर इच्छानुसार किसी भी गांव को घेरकर लूट लेना अपना व्यवसाय बना लिया था । जिसके कारण शाहगढ़ एवं बानपुर की जनता बहुत परेशान थी ।

अस्तु मर्दन सिंह महरौनी, पठा, सिंदवाहा, बैरवारा आदि गांवों में घूमने लगे। एक ओर वे गांव की व्यवस्था करते थे तो दूसरी ओर अपनी सेना में भर्ती के लिए बलि-ठ, साहसी एवं युद्धप्रिय व्यक्तियों का चयन भी करते थे । सिंगैपुर, विरधा के बीच में मर्दन सिंह ने अपनी सेना से डाकुओं के एक दल को घेर लिया । दस्यु दल ने मर्दन सिंह के सैनिकों से जमकर दो-दो हाथ किये ।

उन लोगों के साहस से मर्दन सिंह बहुत प्रभावित हुए उन्होंने डाकुओं के मुखिया के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि यदि उसका दल आत्मसमर्पण कर दे तो उसे उसके साथियों सहित क्षमा कर दिया जाएगा । यही नहीं यदि उसके दल के सदस्य चाहेंगे तो उन्हें बानपुर की सेना में भी उपयुक्त स्थान दिया जा सकता है ।

दस्यु दल के मुखिया रणछोर घोषी को मर्दन सिंह के आश्वासन पर विश्वास नहीं हुआ उसने शस्त्र संचालन रोककर मर्दन सिंह के कथन का स्पष्टीकरण चाहा । इतने में मर्दन सिंह के सैनिकों ने उसे बन्दी बना लिया । मर्दन सिंह ने उसे स्वतंत्र करवा दिया और दो तलवारें लेकर एक रणछोर सिंह को देते हुए बोले 'अगर तुम्हें लड़ना ही अच्छा लगता है तो तलवार लो । हम और तुम आमने सामने लड़ लें ।'

रणछोर सिंह भीमकाय एवं अत्यंत शक्तिशाली पुरुष था । मर्दन सिंह के साथी इस दानवाकार पुरुष से उनकी प्रतिद्वन्द्विता की बाजी लगाने से चिन्तित हो उठे ।

रणछोर स्वयं मर्दन सिंह के इस साहस को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। कुछ क्षणों के बाद वह मर्दन सिंह के पैरों पर गिर पड़ा और बोला 'मैं आपसे तलवार लेकर सामने नहीं लड़ सकता । अब मेरा जीवन आपके हाथ में है । आप जो सजा देंगे , झेल लूँगा और जो डाके डालने की सजा में मार डालेंगे तो मर जाउंगा या फिर अगर प्राण बख्शे तो जनम भर आपकी गुलामी करूंगा ।'

मर्दन सिंह ने उसे उठा लिया और बोले 'मैं एक डाकू से लड़ाने के लिए तुम्हें जीवित रखूंगा वह ऐसा डाकू है जो गृहस्थों पर नहीं बल्कि राज्यों पर डाके डालता है मैं तुम्हें ग्वालियर के सिंधिया और फिरंगियों से लड़ाने के लिए अपने पास रखूंगा ।' बाद में मर्दन सिंह ने रणछोर घोषी को महरौनी में बसा लिया ।[10]

साथियों सहित रणछोर को अपने साथ लिए हुए मर्दन सिंह विरधा पहुंचे। वहां उन्होंने दो दिन विश्राम किया । वहीं ललितपुर से झुनारे रावत अपने कुछ साथियों सहित आ गए ।

झुनारे रावत के घर में खाडू टॉड़े [11] का काम होता था । खाडू जो बैलों पर लादे जाते थे की रक्षा के लिए उनके यहां कुछ प्रशिक्षित सैनिकों का निवास स्थान था उन्हीं सैनिकों को साथ लिए हुए झुनारे रावत बटमारों की खोज में निकले थे ।

सात

ललितपुर के झुनारे रावत के पिता चन्देरी राज्य के एक सम्मानित नागरिक थे तथा उनका मोदप्रहलाद से अच्छा परिचय था । झुनारे रावत का भी मर्दन सिंह से पूर्ण परिचय था ।

भेंट के उपरांत दोनों में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति पर विचार विमर्श होता रहा । ललितपुर में; जब अंग्रेजी सेना थी तब क्या स्थिति थी और अब जब कि उसका स्थान सिंधिया की देसी सेना ने ले लिया है; क्या स्थिति है? इसका पूर्ण विवरण झुनारे रावत ने प्रस्तुत किया ।

विरधा के पड़ाव पर ये दोनों एक रात साथ-साथ रहे । उसी रात में नटों से यह सूचना मिली कि डाकुओं का एक दल अटा की डांग में डेरा डाले हुए है । यह दल पांच लोगों का है जो बटोही पठार से उतरते हैं , उन्हें लूट लेता है । अतः ये दोनों मुंह अंधेरे अटा की ओर चल दिए ।

दिन चढ़ने के एक पहर पर ये लोग गौना गांव के पास पहुंच गये जहां स्नान-ध्यान के लिए दोनों के दल रुके ।

मर्दन सिंह और झुनारे रावत पूजा करके निवृत हुए तभी गौना से एक व्यक्ति ने आकर पूछा कि आप लोग कौन हैं ? ये सैनिक लिए हुए कहां जा रहे हैं तथा गौना किस उद्देश्य से रुके हैं ?

उसे किसी से उत्तर प्राप्त होने से पहले ही झुनारे रावत ने अपने पास बुला लिया तथा उससे यह ज्ञात किया कि वह यह क्यों जानना चाहता है ।

उस व्यक्ति ने यह बतलाया कि गौना शाहगढ़ राज्य में है और शाहगढ़ के महाराजा बखतबली [12] इस समय गौना में ही हैं । वे आप लोगों के संबंध में जानना चाहते हैं ।

बखतबली उस समय नवयुवक ही थे तथा अपने पिता की मृत्यु के बाद दो वर्ष पूर्व ही राज्यासन पर आसीन हुए थे ।

उनके राज्य से सीमावर्ती सागर का राज्य उस समय तक अंग्रेजों के अधिकार में आ चुका था । दूसरी ओर गढ़ा कोटा का राज्य था । शाहगढ़ राज्य अधिकांशतः विंध्य पर्वत श्रेणियों से परिवृत था । इस राज्य के मध्य में धसान (पौराणिक नाम दशार्णी) नदी बहती थी जिसके दोनों ओर सघन पर्वतीय वन थे । पर्वतों के बीच-बीच में उपत्यिकाएं काली मिट्टी से आवृत थी । जिसमें गेहूं, चना, ज्वार की बहुत अच्छी फसलें होती थी । राज्य के पहाड़ी अंचलों में गौड़, अहीर तथा गौर क्षत्रियों की संख्या अधिकतर थी । राज्य समृद्ध था । इतिहास प्रसिद्ध धामौनी का दुर्ग जो बखतबली के समय तक वीरान हो गया था, इसी राज्य में स्थित था। शाहगढ़ ही वह राज्य था जिसमें होकर उत्तर से दक्षिण जाने के लिए विंध्य की दुर्गम घाटियों को पार करना पड़ता था।

यातायात अधिकांशतः गौना, अटा (अमझरा) की घाटी से होता था । गौना शाहगढ़ राज्य का अंतिम गांव था ।मर्दन सिंह और बखतबली का साक्षात्कार गौना से पूर्व कभी नहीं हुआ था । झुनारे रावत शाहगढ़ तथा वहां के शासक बखतबली से पूर्व से ही पूर्ण परिचित थे । झुनारे रावत के ससुराल वाले शाहगढ़ के सम्मानित कुल के सदस्य थे । अतः झुनारे रावत जब भी शाहगढ़ जाते थे वहां के राजदरबार में आते जाते रहते थे । झुनारे रावत से एक व्यक्ति के पूछने पर कि आप कौन हैं ? झुनारे रावत ने पूछने वाले व्यक्ति से कहा कि महाराज को सूचित कर देना कि बानपुर वाले आए हुए हैं । उनके आने का कारण उनके राज्य में उत्पात करने वाले डाकुओं को पकड़ना है । उनसे यह भी कह देना कि बानपुर वालों के साथ ललितपुर के झुनारे रावत भी हैं ।

दो घड़ी के बाद वही व्यक्ति पुनः आया । उसके साथ बखतबली के एक किलेदार भी थे । दोनों ने मर्दन सिंह और झुनारे रावत के पास आकर कहा कि हमारे महाराज ने आप दोनों से ठाकुर जी का प्रसाद महाराज के साथ पाने के लिये निवेदन किया है । मर्दन सिंह को निमंत्रण स्वीकार करने में संकोच हो रहा था क्योंकि उनके जीवन की गतिविधियों ने उन्हें हर विषय में सतर्क एवं शंकालु बना दिया था । वे भोजन के संबंध में ध्यान रखते थे कि वह उन्हीं के नियुक्त व्यक्तियों द्वारा बनाया हुआ हो । दूसरे, बखतबली से उनका यह प्रथम परिचय होने जा रहा था । बखतबली के संबंध में उन्हें केवल इतना ज्ञात था कि वे हाल ही में अपने पिता के देहावसान के बाद शाहगढ़ के राज्यासन पर आसीन हुए थे । उनके स्वभाव आदि का व्यक्तिगत ज्ञान मर्दन सिंह को नहीं था ।

मर्दन सिंह ने उत्तर में किलेदार से कहा कि मेरी ओर से अपने महाराज से निवेदन कर देना कि यहां ठाकुर जी का जो प्रसाद निवेदित किया जाएगा वह भी तो उन्हीं का है । यह ठीक है कि वे अपने राज्य में हैं पर गौना शाहगढ़ तो है नहीं क्योंकि मैं जिस प्रकार अपनी राजधानी से दूर हूं उसी प्रकार शाहगढ़ वाले भी । अतः वे ब्यर्थ के उपक्रम में न पड़ें । हां इतना अवश्य है कि सौभाग्य से हम दोनों आज एक ही स्थान पर हैं अतः उनसे भेंट अवश्य करेंगे ।

किलेदार का साहस उनसे पुनः अनुरोध करने का न हो सका किन्तु उसने झुनारे रावत की ओर देखा ।

झुनारे रावत ने किलेदार को रुकने का संकेत किया और मर्दन सिंह को एकान्त में बखतबली का निमंत्रण स्वीकार करने के लिए समझाया । उन्होंने बताया कि बखतबली से घनि-ठता बढ़ा लेना मर्दन सिंह के खोए हुए राज्य की प्राप्ति हेतु सहायक होगी । उन्होंने यह भी कहा कि यदि घनि-ठता न भी हो तो भी एक पड़ौसी राज्य से विशेषतः जिसका शासक उन्हीं के कुल का हो संबंध नहीं बिगाड़ना चाहिए । जहां तक भोजन का प्रश्न है मैं विश्वास दिलाता हूं कि किसी प्रकार के धोखा होने की कोई आशंका नहीं है ।

झुनारे रावत की सलाह पर मर्दन सिंह ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया ।

दोपहर में भोजन की व्यवस्था की गई । मर्दन सिंह के अन्य साथियों को भोजन करवाया गया ।

मर्दन सिंह, झुनारे रावत एवं गजराज सिंह बखतबली के साथ भीतर भोजन करने गए बखतबली के साथ नाराहट वाले भी साथ में थे ।

भोजनोपरान्त सब लोग एकान्त एक कमरे में बैठे तथा तत्कालीन राजनैतिक स्थिति पर विचार विमर्श होने लगा ।

बखतबली ने बताया कि उनके राज्य की सीमा पर फिरंगियों का दबाव निरंतर बढ़ता जा रहा है तथा ये लोग हमेशा किसी न किसी राज्य को हड़पने की घात लगाए रहते हैं । अच्छा हो कि हम लोग समय रहते चेत जाएं ।

मर्दन सिंह के विचार भी यही थे । उन्होंने कहा कि दुख तो यह है कि धीरे-धीरे सभी राजा-महाराजा फिरंगियों के चंगुल में फंसते चले जा रहे हैं फिर भी ये लोग नहीं चेतते । देखो ग्वालियर के सिंधिया ने फिरंगियों के सामने घुटने टेक दिए । दूसरी ओर हमारे पिता की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर आधे से अधिक हमारा राज्य हड़प गए । हम बुन्देलों की हालत तो और भी बुरी हो रही है फिर भी हम लोग नहीं चेतते ।

दोनों में परस्पर सुरक्षात्मक एकता पर बातचीत होती रही । अंत में बखतबली ने कहा कि आप अवस्था में बड़े हैं तथा महाराज मधुकरशाह के सबसे बड़े पुत्र महाराज रामशाह के वंशज हैं । अतः आज से आप हमारे सगे जेठे भाई ही हैं । आप मुझे सगे छोटे भाई की भांति आज्ञा दीजिए । मैं सदैव आपकी आज्ञा का पालन अपना धर्म समझकर करूंगा ।

मर्दन सिंह ने कहा कि हम अपने कुलप्रवर्तक भगवान सूर्य की सौगंध खाकर कहते हैं कि मैं तुम्हें गजराज सिंह और पर्वत सिंह की ही भांति अपना छोटा भाई समझूंगा और मौका आने पर तुम्हारे लिए अपने प्राण भी होमने में आगे पीछे नहीं सोचूंगा।

मर्दन सिंह और बखतबली ने वह दिन साथ-साथ व्यतीत किया । रात को भी उन्होंने एक ही भवन में शयन किया।

सन् 1857 में इन दोनों वीरों ने जिस वीरता एवं ओज के साथ अंग्रेजों की सबसे सशक्त एवं युद्ध विद्या निष्णात सेना का सामना किया उसके मूल में यह इसी दिन का मिलन था ।

वस्तुतः इस सम्मेलन का सर्वाधिक श्रेय झुनारे रावत को ही था तथा इस सम्मेलन में दो राजाओं में सहयोग स्थापित करवाने का श्रेय प्राप्त होने से झुनारे रावत का नाम बानपुर शाहगढ़ के 1857 के युद्ध के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकनीय हो गया ।[13]

नित्य कर्म से निवृत होकर दोनों बुन्देले वीर गौना से पश्चिम की ओर डोंगरा, महोली आदि ग्रामों की ओर चल दिए । जहां भी किसी डाकुओं के गिरोह का पता चलता, ये लोग चल देते थे ।

आठ

इस प्रकार मर्दन सिंह तथा बखतबली अपने-अपने राज्यों की सीमा क्षेत्रों में भ्रमण करते रहते थे तथा डाकुओं के दलन के साथ-साथ सीमा सुरक्षा की व्यवस्था करते रहते थे । सन् 1850 के बाद बखतबली तथा मर्दन सिंह अक्सर परस्पर मिलते रहते और दोनों राज्यों की सुरक्षा के संबंध में विचार विमर्श एवं उसकी व्यवस्था के क्रियान्वयन की विधा का निर्णय करते रहते ।

सन् 1853 में मर्दन सिंह ने एक पत्र निम्न आशय का सिंधिया को भेजा सिरनामे के पश्चात 'आपने मेरे स्वर्गीय पिता की चारित्रिक कमजोरियों का लाभ उठाकर तथा उनके अनुचरों से सांठ-गांठ करके उनके परंपरागत राज्य का बहुत बड़ा भाग अनियमित रूप से अपने अधिकार क्षेत्र में कर लिया । आपका यह कार्य न तो आपके पूर्वजों की परंपराओं के अनुरूप है और न ही इस उद्देश्य से यह मेल खाता है जिसको साक्ष्य करके छत्रपति महाराज शिवाजी ने तत्कालीन मुगल शासक के विरुद्ध भगवाध्वज ऊँचा उठाया था । हमारे पूर्वज परंपरागत ब्राह्मणों के भक्त और सेवक रहे हैं। यदि मेरे पिता के किसी शेष के कारण उनकी प्रतारणा आवश्यक भी थी तथा उसके लिए उनकी प्रजा के मतानुसार उनको पदच्युत किया जाना भी आवश्यक था तो भी उनका राज्य उनके उत्तराधिकारी को दिया जाना चाहिए था। खैर, जो हुआ सो हुआ । अब आपसे मेरा विनम्र निवेदन है कि आपके द्वारा मेरे पिता का बलपूर्वक अधिग्रहीत राज्य मुझे लौटाया जाना चाहिए ।[14]

ऐसा प्रतीत होता है कि ग्वालियर के सिंधिया राजा पर इस पत्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

यह भी बताया जाता है कि चन्देरी में इस संबंध में एक पंचायत सन् 1853 अथव 1854 में हुई जिसमें ओरछा नरेश, खनियाधाना नरेश, दतिया नरेश एवं जियाजीराव सिंधिया में इस संबंध में बातचीत हुई । इस पंचायत में बखतबली सहित स्वयं मर्दन सिंह ने स्वयं उपस्थित होकर अपने अध्किार की मां की। किन्तु यह किंवदन्ती ही प्रतीत होती है इसके निराधार होने का कारण यह है कि सुजान सिंह का शासन काल 1841 सं 1854 तक बताया जाता है। सुजान सिंह टीकमगढ़ नहीं वरन् झांसी में रहते थे । वास्तविक शासन लड़ई रानी के हाथ में था तथा सुजान सिंह की हत्या उनके चचेरे भाई ने विष दिलवाकर करवाई थी।

यह भी संभव है कि कोई पंचायत चन्देरी में हुई हो जिसमें ओरछा राज्य के प्रतिनिधि के रूप में दीवान नत्थे खां शामिल हुआ हो या ओरछा का कोई प्रतिनिधि सम्मिलित ही न हुआ हो।

कुछ भी हो, मर्दन सिंह के शान्तिपूर्वक अपना राज्य लौटाने के सभी प्रयत्न निरर्थक ही रहे ।

नौ

सन् 1854 के मार्च के महीने में ललितपुर में रानी की बावड़ी के नटों का एक दल आया । उस दल ने नगर के एक मुहल्ले - मुहल्ले में अपने खेल दिखाए । नटों में स्त्री पुरुष और बच्चे सभी थे । उनके शरीर बहुत सधे थे । वे दोनों छोरों पर दो बांस गाड़कर उनके दोनों सिरों पर बहुत ऊँचाई पर रस्सा बांधकर रस्से के ऊपर नाचते थे तथा विविध प्रकार के अन्य आश्चर्य जनक खेल भी वे नट दिखलाते थे।[15]

नटों के कौशल की नगर में सब ओर प्रशंसा की जा रही थी । नटों की प्रशंसा सुनकर सिंधिया की सेना के अधिकारियों ने नटों को खेल दिखाने के लिए निमंत्रण दे डाला।

नटों ने पहले तो अपनी जीविका का बहाना लेकर सैनिकों को खेल दिखाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की क्योंकि उन्हें मराठा सेना से किसी पुरस्कार की आशा न थी । जब उन्हें बहुत डराया धमकाया गया तो उन्होंने रात को खेल दिखाने की अधिकारियों से प्रार्थना की, जो स्वीकार कर ली गई ।

ललितपुर के कारा पत्थर नामक स्थान पर सेना के देखने के लिए खेल का आयोजन किया गया । पदों के विचार से सैनिकों के बैठने की व्यवस्था की गई ।

प्रकाश की समुचित व्यवस्था करने के लिए अनेक मशालें जलवा दी गई और खेल आरंभ हो गया । खेल इतना आकर्षक हुआ कि सभी सैनिक दत्त-चित्त होकर खेल देखने में व्यस्त हो गए ।

रात करीब डेढ़ पहर गई होगी । सहसा ऊपर-ऊपर से रस्सी पर नाचते हुए एक नट का पैर फिसल गया और वह अपने शरीर के भार को साध नहीं सका और नीचे पृथ्वी पर आ गिरा । उसकी देख-रेख के लिए सभी नट मशालची और सैनिक दौड़ पड़े । नटों की स्त्रियों ने 'हाय मर गओ हाय मर गओ' चिल्लाना और रोना-चीखना आरंभ कर दिया । बहुत से सैनिक उन्हें समझाने लगे । गिरा हुआ नट पृथ्वी पर बेहोश पड़ा था । भीड़ में से कुछ व्यक्तियों में चोट खाए नट को देखने तथा उपचार की व्यवस्था

करने के लिए मशालचियों से मशालें लेती धीरे-धीरे कुछ ही समय में जहां पचासेक मशालें थी वहां दो चार मशालें ही दिखाई पड़ने लगी । कुछ आदमी ललितपुर नगर से वैद्य हकीमों को लाने के लिए दौड़ पड़े ।

एकाएक चारों ओर से बन्दूकों के चलने की आवाज आने लगी और छावनी चारों ओर से घेर ली गई । मराठा सैनिकों के शस्त्र संभालने से पूर्व ही उन पर भालों तथा बल्लियों से आक्रमण होने लगे । सैकड़ों घोड़ों की टापों से कारा पत्थर की पथरीली धरती गूंज उठी ।

आश्चर्य की बात यह थी कि वहां सिवा दो चार गड़े हुए बांसों और उनसे बंधी हुई रस्सी के न तो नटों का कोई सामान था और न ही कोई नट । यहां तक कि जो नट अपने शरीर का संतुलन खो देने के कारण रस्सी से 20 फीट नीचे धरती पर गिरकर बेहोश हो गया था । वह भी गायब था । सिंधिया की सेना के सैनिकों को हथियार उठाने का अवसर ही हाथ नहीं आया । जिसने जहां से रास्ता पाया, भाग खड़ा हुआ ।[16]

बात यह थी कि मर्दन सिंह के पूर्वज महाराज दुर्जन सिंह ने अपने एक पुत्र कुं0 बहादुर सिंह को जागीर में ककरुवा, महेशपुरा और बहराबर गांव दिए थे । बहादुर सिंह ने अपना आवास ककरुवा गांव बनाया था । ककरुवा ललितपुर से केवल तीन मील दक्षिण में स्थित है । जब समझौते से राज्य का कोई भी अंश मिलने की संभावना न रही तो मर्दन सिंह ने एक ही रात में बेतवा के दक्षिण किनारे पर फैली मराठा सेना को छिन्न-भिन्न करने की योजना बना ली । तदनुसार ककरुवा के तत्कालीन जागीरदार कुं0 हिम्मत सिंह बुन्देला के पास नागरिकों के वेष में नाराहट, गुढ़ा आदि स्थानों ट्ठे हो गए । उनके उपयोग के लिए गुप्त रूप से शस्त्रों की व्यवस्था ककरुवा वालों ने कर दी थी ।

नटों के खेल के आयोजन के समय जब सभी सैनिक खेल देखने में पूर्ण व्यस्त थे, इन लोगों ने सेना पर चारों ओर से घेरा डालकर आक्रमण करवा दिया ।[17]

ललितपुर के नागरिक जब प्रातःकाल सोकर उठे तो सहसा उन्हें राज्य परिवर्तन का समाचार मिला । उसी रात में जाखलौन वालों ने दावनी, बरौदा, मलावनी, गौना, बरी, सेरवास डांग होते हुए बेतवा के दाहिने किनारे पर राजघाट पर अधिकार कर लिया । आंचलिक क्षेत्र में जहां भी सिंधिया की सैनिक चौकियां थीं, उन्हें शीघ्र ही उखाड़ दिया गया । मर्दन सिंह बाद में ललितपुर आए वहां अपना सूबा स्थापित किया और बानपुर चले गए ।

ललितपुर की इस घटना के एक सप्ताह बाद ही मर्दन सिंह, गजराज सिंह और रणछोर घोषी को साथ लेकर तालबेहट गए और तालबेहट के किले पर अधिकार कर लिया बार से बसतगुवां आकर सहजाद नदी के बाएं किनारे पर भी आक्रमण किए जाने लगे । इस प्रकार धीरे-धीरे मर्दन सिंह ने बेतवा नदी के दाहिनी ओर का सारा भू-भाग अपने अधिकार में कर लिया ।

इस प्रकार उस समय बानपुर राज्य बेतवा के पूर्व और दक्षिण भाग में जामनी नदी के पश्चिम में तथा बानपुर से ऊपर जामने जमड़ार के संगम से दक्षिण में जमड़ार के किनारे-किनारे विंध्याचल की मुख्य श्रृंखला तक था । तत्कालीन भारत के मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर नाम मात्र के शासक थे और पेशवा बिठूर में बैठे अपनी दुर्गति पर आंसू बहा रहे थे । भारत सम्राट के दायित्व का निर्वाह विदेशी अंग्रेज कंपनी सरकार कर रही थी अतः अपने राज्य की स्वनिर्मित सीमा की मान्यता प्राप्त करने के लिए मर्दन सिंह को विवश होकर कोलकाता के गवर्नर जनरल का द्वार खटखटाया पड़ा किन्तु सफलता नहीं मिल सकी । सन् 1855 में बखतबली और मर्दन सिंह को समाचार मिला कि कंपनी सरकार ने गढ़ाकोटा को राज्यच्युत कर दिया तथा उसके लड़के को फॉसी पर लटका दिया गया । इस समाचार से दोनों अत्यंत क्षुभित हुए । उन दोनों के हृदय में विदेशियों के प्रति पहले से ही जो घृणा अंकुरित हो चुकी थी इस घटना से वह बहुत अधिक परिपुष्ट हुई । विवशता यह थी कि उनके साधन इतने सीमित थे कि वे न तो गढ़ाकोटा के अधिपति की न तो सहायता कर सकते थे और न ही विदेशी कंपनी सरकार के विरुद्ध शस्त्र उठा सकते थे ।

इसके पूर्व भी सन् 1854 में झांसी के राजा गंगाधर राव की मृत्यु के उपरांत उनके दत्तक पुत्र को कंपनी सरकार में उसका उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया था तथा झांसी राज्य अन्यायपूर्वक अपने शासन में आत्मसात कर लिया था। उस समय भी ये दोनों मन मसोस कर रह गए थे।

दस

बेतवा के पूर्व एवं दक्षिण में स्थित भू-भाग को मर्दन सिंह द्वारा शक्ति पूर्वक लेने पर ग्वालियर शासन कभी भी आक्रमण कर सकता था तथा ग्वालियर शासन को कंपनी सरकार का भी समर्थन मिलेगा । इस सत्य से मर्दन सिंह पूर्णतः परिचित थे किन्तु उनके न्यायसंगत अधिकार के प्रति बरती गई प्रवंचना उन्हें असह्य थी । अतः शक्ति के द्वारा इस क्षेत्र को अधिग्रहीत कर लिया था ।

मर्दन सिंह ने तालबेहट के किले को साफ करवाकर उसके भीतर के महल को रहने योग्य बनवाया । सैनिक आवास की व्यवस्था करके समुचित सेना रखी । किले में स्थित मंदिर के पूजन के लिए गोस्वामी बंधुओं को पुनः नियुक्त किया ।

तालबेहट पर मर्दन सिंह का अधिकार होते ही राजा जू बबेले, जिसने ग्वालियर नरेश को तालबेहट पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था रातों-रात अपने परिवार एवं समस्त चल संपत्ति सहित उर्दना जो ओरछा राज्य में था, चला गया ।[18]

तालबेहट के सिवाय गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु ललितपुर का उस समय विशेष महत्व था । ललितपुर की स्थिति एक चौराहे की भांति थी । वहां से एक मार्ग उत्तर की ओर बांसी, तालबेहट, बबीना होता हुआ झांसी को जाता था । यह मार्ग वर्तमान में राजमार्ग है । दक्षिण की ओर यही मार्ग विरधा, बंगरिया, पाली, गौना, अमझरा घाटी, मालथौन, बरौदिया होकर सागर चला जाता था । एक मार्ग पश्चिम की ओर बुढ़वार, सूड़र, कैलवारा, राजघाट होकर चन्देरी चला जाता था । चन्देरी और सागर मार्गों के बीच में एक मार्ग ककरुवा, सिमिरिया, जीरोन, जाखलौन से होकर धौर्रा के पहाड़ों को चला गया था । चन्देरी और झांसी मार्गों के बीच से एक मार्ग दैलवारा, सिरसी, जखौरा से होता हुआ ननौरा तक चला गया था । ननौरा के इसी मार्ग से बेतवा पार करके बामौर जा सकते थे । पूर्व की ओर ललितपुर से महरौनी होकर टीकमगढ़ को जाता था । झांसी एवं महरौनी मार्गों के बीच में एक मार्ग रजवारा, बिरारी, खोंखरा, गुगरवारा, बिल्ला, छिल्ला होते हुए बानपुर और बाणाघाट पर जामनी नदी पार करके टीकमगढ़ चला गया था । इसी मार्ग में गुगरवारा से बंगलन होते हुए कैलगुवां के लिए एक मार्ग है ।

उक्त मार्गों के अतिरिक्त अनेकों उपमार्ग पाली, दावनी, बरौदा, पाचौनी, बार आदि स्थानों को जाते थे । इस प्रकार ललितपुर न केवल बानपुर राज्य अपितु टीकमगढ़, खनियाधाना, मानगढ़, शाहगढ़ सहित चारों ओर के राज्यों का व्यापारिक केन्द्र था । प्रकृति ने भी ललितपुर को सजाने एवं संवारने में विशेष योगदान प्रदान किया था । नगर के पूर्व में सहजाद नदी बहती थी । दक्षिण में एक नाला, जो बारह मास पानी से भरा रहता था, बयाना नाला पश्चिम और उत्तर से बहकर आता हुआ नगर के उत्तर में बहता हुआ नदी में मिल जाता था ललितपुर का सुमेरा तालाब अपनी सुन्दरता के लिए आज भी विख्यात है ।

ऐसे स्थान का निकल जाना सिंधिया को सह्य नहीं था । अपनी विशेष परिस्थितियों से विवश होकर सिंधिया ने तो ललितपुर पर पुनः अधिकार करने का प्रयास नहीं किया किन्तु सिंधिया की मित्र अंग्रेजी कंपनी को यह कैसे सहन हो सकता था ? फलतः ललितपुर नगर पर मर्दन सिंह का अधिकार तीन-चार महीने ही रह पाया कैप्टन गॉर्डन ने चन्देरी में गोरी सेना जमाकर ललितपुर पर जोरदार हमला करके उसे अंग्रेजी शासन के अधिकार में कर दिया । हिम्मत सिंह ने कुछ सोच समझकर अंग्रेजों से सीधी टक्कर लेना उचित नहीं समझा और अपनी सेनाओं को ककरुवा हटा ले गए ।

अंग्रेजों ने ललितपुर में जिला कार्यालय स्थापित किया । यहां पर कलक्टर, सुपरिण्टेण्डेंट आफ पुलिस तथा पर्याप्त मात्रा में पुलिस रखी गई ।

दूसरा प्रमुख नगर तालबेहट सन् 1858 तक निरंतर मर्दन सिंह के अधिकार में रहा ।

अंग्रेजों ने सुरक्षा के विचार से ललितपुर में सेना संख्या 6 इंफेण्ट्री ग्वालियर कण्टेंजेण्ट रखी । पूरी सेना में कुछ अंग्रेजों के अतिरिक्त देसी सैनिकों में भदौरिया ठाकुर और अहीर थे । सेना का नेतृत्व मेजर फावस के हाथ में था । सेना के अतिरिक्त 15-20 ब्रिटिश परिवार भी रहते थे ।

विद्रोह की वायु का प्रथम विकंपन जो मेरठ में आरंभ हो गया था उससे प्रभावित होने से ललितपुर भी अछूता नहीं रहा था । सेना में कुछ फुसफुसाहट 8 जून से ही थी किन्तु 12 जून सन् 1857 तक पूर्ण शान्ति रही यद्यपि बाहर से विद्रोह संबंधी अफवाहें बराबर आती रहती थी तथा सैनिकों में भी भीतर ही भीतर उत्तेजना थी ।

ग्यारह

सैनिकों में एक विशेष बात घर कर गई थी वे अनुभव करने लगे थे कि सात समन्दर पार करके ये फिरंगी हम लोगों की शक्ति का उपयोग करके देसी राज्यों को समाप्त करते जा रहे हैं । प्रत्येक सैनिक भीतर ही भीतर घुटन अनुभव कर रहा था । बाहर से विद्रोह की जो खबरें मिलती थी उनसे सैनिक प्रकाश प्राप्त करते थे। वे सोचने लगे थे कि वे केवल पैसों के लिए बिके हुए दास नहीं हैं बल्कि उनके हाथों में जो राइफलें हैं उनका प्रयोग राइफल देने वालों के विरुद्ध भी किया जा सकता है जो उनके साथ गुलामों जैसा बर्ताव करते हैं।

यदि अंग्रेज शासक होने के कारण अपने को भारतीयों से श्रेष्ठ समझते थे तो भारतीय भी अंग्रेजों के आचार-विचार एवं खान-पान के कारण उन्हें घृणास्पद तथा हेय समझते थे ।

ललितपुर में जो घटना विद्रोह करने के लिए कारण बनी वह अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई जघन्यता का प्रमाण है ।

11 जून सन् 1857 की शाम को अंग्रेजी सेना का एक गोरा सैनिक दैलवारा, जखौरा मार्ग पर चला गया । वह नशे में चूर था । वह अपनी भाषा में अभद्र शब्दों का प्रयोग करता जा रहा था । ललितपुर के उपनगर पिसनारी की कुछ स्त्रियां शौच आदि से निवृत होने के लिए बस्ती के बाहर आईं हुई थीं । शराब के नशे में चूर वह व्यक्ति (सैनिक) स्त्रियों की ओर झपटा । स्त्रियां बेतहाशा भागीं । दुर्भाग्यवश एक स्त्री न भाग सकी और गोरे सैनिक की पकड़ में आ गई । स्त्री बड़ी जोर से चीखी। संयोगवश सेवक नाम का भारतीय सैनिक वहां से निकल रहा था । वह स्त्री के चीखने से आकृष्ट हुआ तो उस गोरे सैनिक को बलात्कार के उद्देश्य से उस स्त्री को पकड़े हुए देखा । स्त्री संपूर्ण शक्ति से अपनी लज्जा बचाने का प्रयास कर रही थी । एक भारतीय सैनिक को देखकर उसने अत्यंत कातरता से उसकी ओर देखा। सेवक इस दृश्य को देखकर उत्तेजित हो उठा । उसने दूर से ही पहले गोरे

सैनिक को डांटा और स्त्री को छोड़ देने को कहा । उत्तर में उसे गोरे सैनिक से गालियां मिलीं । जिस पर सेवक ने लपककर उसे एक मुक्का मारा और बलपूर्वक उस स्त्री को छुड़ा लिया । वह स्त्री तो वहां से भाग गई, पर गोरा सैनिक सेवक से लड़ने को उद्यत हो गया । सेवक ताकतवर, कसरती, नौजवान था उसने गोरे की अच्छी खासी मरम्मत कर डाली । अतः उसका सारा नशा हिरन हो गया ।

दोनों अपनी-अपनी छावनी में लौट आए । गोरे सैनिक ने मेजर से लिखित शिकायत की और सेवक ने अपने सूबेदार को सारी घटना सुना डाली।

सुबह परेड में मेजर ने सेवक को सैनिक पंक्ति से अलग खड़ा करके उसके ऊपर जो जुर्म था, सुना दिया । सेवक ने सारी घटना सुनाई और स्वीकार किया कि उसने गोरे को पीटा है ।

मेजर के निर्णय देने के पहले ही सूबेदार चिल्ला उठा 'मेजर साहब मैं जानता हूं कि आप सेवक को सजा देने जा रहे हैं जबकि उसने वही किया जो एक भले आदमी को करना चाहिए था । अतः में स्थिति को आगाह कर देना चाहता हूं कि यदि आपका निर्णय पक्षपात से हुआ तो उसके परिणाम संकटकारक हो सकते हैं ।'

मेजर फावस ने इसे अपना अपमान समझा और सूबेदार पर अनुशासनहीनता का आरोप लगाया ।

सूबेदार कुछ कहे उसके पहले ही सेवक की राइफल उठी और गोली मेजर की छाती को छेदती हुई आर-पार चली गई । एक राइफल के चलते ही सभी जवानों ने अपनी-अपनी राइफलें उठा लीं । सेना में भगदड़ मच गई । अंग्रेज सैनिक और अधिकारियों को जहां से मार्ग मिला, भागे ।

कैप्टन गॉर्डन [19] , नगर के जिस अंचल में अंग्रेज रहते थे, वहां तुरंत पहुंचा तथा जितने भी अंग्रेज स्त्री-पुरुष मिले उन सबको लेकर कोतवाली के सामने आ गया कोतवाली के सामने शिवराम दास माहेश्वरी नामक मारवाड़ी बनिया रहता था जिससे उसने प्राणरक्षा की प्रार्थना की । शिवरामदास का मकान काफी बड़ा था उसने सभी अंग्रेजों को अपने मकान में छिपाकर सुरक्षा प्रदान की । पलटनियों को जहां भी अंग्रेज मिला उसे मौत के घाट उतार दिया।

विद्रोहियों ने किसी भी नागरिक की हत्या तो दूर नाम मात्र के अपमान जनक शब्दों का प्रयोग भी नहीं किया फिर भी सारे नगर में भय और आतंक व्याप्त था । तीन दिन तक विद्रोही नगर में तथा नगर के आस-पास अंग्रेजों की खोज करते रहे ।

तीन दिन बाद यह अनुमान लगाकर कि शायद जो अंग्रेज बच गए हैं वे चन्देरी चले गए । विद्रोहयों ने चन्देरी का मार्ग पकड़ा । कुछ विद्रोही तालबेहट की ओर गए ।

यह विश्वास होने पर कि अब विद्रोही ललितपुर नगर अथवा आस-पास नहीं हैं । शिवरामदास ने कैप्टन गॉर्डन से पूछा कि अंग्रेज अपनी रक्षा के विचार से कहां जाना चाहते हैं ?

गार्डन ने बहुत सोचने समझने के बाद बताया कि यदि वे लोग टीकमगढ़ पहुंच जाते हैं तो उन्हें विश्वास है कि वे मरने से बच जाएंगे । टीकमगढ़ भेजने में शिवरामदास को अड़चन थी । ललितपुर से टीकमगढ़ जाने के लिए दो मार्ग थे । पहला ललितपुर से रजवाड़ा, खोंकरा, कचनोंदा, गुगरवारा, बिल्ला, छिल्ला होते हुए बानपुर से आगे बाणाघाट पर जामने नदी पार करके टीकमगढ़ इस मार्ग से 26-27 मील की दूरी पर स्थित है । दूसरा मार्ग मसौरा, मिर्चवारा, खितवांस, सिलावन, समोंगर, छपरट, महरौनी, निवारी, खिरिया, कुण्डेश्वर, गणेशगंज होकर टीकमगढ़ पहले वाले मार्ग से थोड़ा अधिक दूर है । इस मार्ग से जामने नदी छपरट के पास पार करनी पड़ती थी । दोनों मार्गों से जाने पर बानपुर द्वारा शासित प्रदेश में से जाना पड़ता था । बानपुर मर्दन सिंह की राजधानी थी तो महरौनी में सुप्रसिद्ध वीर रणछोर घोसी रहता था । उसके सिवा धोकलसिंह सिकदार, जुझार सिंह बैस तथा गानवली यार आदि मर्दन सिंह के प्रमुख सरदारों का निवास स्थान भी महरौनी ही था । ऐसा प्रतीत होता है कि इस अड़चन को दूर करने के लिए गॉर्डन ने 14 जून वाला वह पत्र जिसका विवरण पिनके ने दिया है, शिवरामदास के घर से लिखकर मर्दन सिंह को भेजा होगा । बाद में अंग्रेज लेखक यह मानने लगे कि उक्त पत्र मर्दन सिंह ने बलपूर्वक लिखवा लिया था ।

शिवरामदास के घर में गॉर्डन अपने अंग्रेज साथियों सहित स्वयं को सुरक्षित नहीं समझ रहा था । वह यह जानता था कि इस स्थान का पता विद्रोही बड़ी ही सरलता से लगा सकते हैं । दूसरी ओर शिवरामदास भी डर रहा था कि इन शरणागतों के कारण कहीं परिवार सहित उसकी ही कुगत न हो जाए । सहसा उसकी दृष्टि एक दाढ़ी वाले मुसलमान पर पड़ी । उससे शिवरामदास का पूर्ण परिचय था । शिवरामदास ने उसे चुपके से एकान्त में ले जाकर कहा 'मुल्लाजी आप खुदाबराए नमाजी व मजहबी होने के साथ एक बहादुर आदमी हैं । आप वह काम करेंगे जो एक इंसान का अहम फर्ज है ।

मुल्ला की समझ में कुछ नहीं आया । वह बोला 'भई! अगर आदमियत न हो तो वह आदमी किस काम का? हां! मैं वह काम करना खुद का फर्ज समझूंगा जो इंसानियत की हद के अंदर आता होगा ।' शिवरामदास के जोर देने पर मुल्ला ने काम को गुपचुप करने की दी गई सलाह सुनी ।

शिवरामदास ने कहा कि इन बेकसूर परदेशियों को कंपनी के सिपाही मारे डालते डालते हैं । इन्हें बचाओ , तुम सामर्थ्यवान हो । राजा मर्दन सिंह तुम्हारी बात मानते हैं । इन्हें उनके घर ले जाओ । वहां से टीकमगढ़ पहुंचा देना ।

यह व्यक्ति मुल्ला मुहम्मद अली था । मुल्ला एक सरल प्रकृति का धार्मिक एवं ईमानदार आदमी था । मुल्ला मुहम्मद अली के दिमाग में भी एक बार यह सच्चाई घूम गई कि इन फिरंगियों ने न केवल चन्देरी राज्य तहस-नहस करने में सिंधिया की मदद की बल्कि सन् 1854 में जब हिम्मत सिंह ने सिंधिया सेना से ललितपुर छीन लिया था तो इन्हीं लोगों ने आक्रमण करके ललितपुर पर अधिकार कर लिया और ललितपुर न मर्दन सिंह के और न ही सिंधिया के अधिकार में रहने दिया ।यही नहीं फिरंगियों ने ललितपुर पर जो अधिकार किया वह अन्याय पूर्ण और अवैधानिक है तथा अंग्रेजों ने अपने अत्याचार की चक्की में पीसने से किसी भी भारतीय को कभी भी नहीं छोड़ा ।

बारह

यह सोचकर उसने अंग्रेजों को किसी भी प्रकार की सहायता करने से इंकार कर दिया । शिवरामदास ने फिर समझाया कि अपने पुरखों ने कभी भी शरण में आए हुए को ठुकराया नहीं है और मुझे विश्वास है कि यह अंग्रेज भी जब शरण में पहुंच जाएंगे तो उन्हें महाराज ठुकराएंगे नहीं । महाराज मर्दन सिंह तुम्हारी बात मानते हैं। इन्हें बानपुर पहुंचा दो वहां से टीकमगढ़ भेज देना । महाराज रुद्रप्रताप के कुल में उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने एक गाय की रक्षा के लिए अपने प्राण दे दिए थे ।

मुहम्मद अली को शिवरामदास की बात जंच गई । उसने अंग्रेजों को किसी न किसी प्रकार बानपुर तक भेजने का वादा कर दिया तथा नगर के भले आदिमियों की सात-आठ शिकरमें [20] मांग लीं और उन्हें चारों ओर से कपड़ों ढंक लिया । शिवरामदास के मकान के पिछवाड़े के द्वार से एक-एक कर सभी अंग्रेजों को उनके स्त्री-बच्चों सहित पर्दों की आड़ में शिकरमों में बिठा कर 15-20 घुड़सवार सैनिक साथ में लेकर ललितपुर से बानपुर की यात्रा आरंभ कर दी । अंग्रेज शरणार्थियों को आगाह कर दिया गया कि जब तक शिकरम के साथ रक्षा में नियुक्त अश्वारोही न कहे तब तक कोई भी व्यक्ति बाहर अपने शरीर का कोई भी अंग न निकाले ।

सुबह होते-होते ये लोग बानपुर पहुंच गए । मर्दन सिंह को एकांत में ले जाकर मुहम्मद अली ने सारी परिस्थिति बताई । मर्दन सिंह को अंग्रेजो से बहुत घृणा थी । उनका विश्वास था कि कोई अंग्रेज न तो सही अर्थों में दूसरे अंग्रेजों से भिन्न हो सकता है और न ही कृतज्ञ । यहां तक कि कैप्टन गॉर्डन के 14 जून वाले पत्र के प्राप्त होने पर मर्दन सिंह ने उसका कोई महत्व नहीं समझा । फिर भी मुहम्मद अली के समझाने और शरण में आए हुए शत्रु की भी प्राणरक्षा अपना धर्म समझकर मर्दन सिंह ने ससम्मान अंग्रेजों के भोजन, आवास एवं रक्षा की पूर्ण व्यवस्था की ।[21]

बानपुर में जब गॉर्डन मर्दन सिंह से मिला तो मर्दन सिंह ने उससे पूछा कि जब सारे अंग्रेज या तो विद्रोहियों द्वारा मार डाले गए अथवा भाग गए हैं तो ललितपुर में शासन की क्या दशा है ? ऐसे समय में अराजक तत्व चारों ओर लूटमार और हत्याएं कर रहे होंगे । ऐसे में क्या इसकी जिम्मेदारी कंपनी सरकार और उसके कर्मचारियों की नहीं है ?

गॉर्डन ने स्थिति की भयावहता को स्वीकार किया और अंग्रेजों को शासन संभालने में पूर्ण असमर्थ बताया । मर्दन सिंह का ध्यान अपने पत्र की ओर आकर्षित करते हुए स्थिति को संभालने के लिए गॉर्डन ने मर्दन सिंह से अनुरोध किया ।

गॉर्डन को बानपुर ने आश्रय अवश्य दिया किन्तु यह यह अथवा इसका कोई भी साथी अपने जातिगत दोष के कारण मर्दन सिंह पर विश्वास न कर सका। [22]

तदपि मर्दन सिंह ने उसे उसके साथियों सहित टीकमगढ़ भेज दिया । जहां पं0 प्रेमनारायण ने, जो अवयस्क राजा हम्मीर सिंह का शिक्षक था, अंग्रेजों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की ।[23]

गॉर्डन टीकमगढ़ में अपने साथियों सहित पूर्ण संरक्षित था किन्तु वह सतर्क एवं सशंकित अवश्य था ।

अंग्रेजों के टीकमगढ़ भेजने के बाद मर्दन सिंह ने ललितपुर एवं चन्देरी क्षेत्रों में अराजकता समाप्त करने का आयोजन किया । उन्होंने तालबेहट अपने छोटे भाई पर्वत सिंह को निर्देश भेजा कि वह ननौरा पर बेतवा पार करके चन्देरी पहुंचे और दुर्ग पर, जो उस समय विद्रोहियों के अधिकार में चला गया था, अधिकार कर लें। जवाहर सिंह ; जाखलौन और हिम्मत सिंह ; ककरुवा को ललितपुर पहुंचकर शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने के लिए आदेश दिया । वह स्वयं अपनी सेना पाह के ठाकुर; ककड़ारी के पवांर; बछरावनी के धंधेरे; बीर, गुगरवारा के खंगार एवं महरौनी के सिकरवार तथा बैसों को लेकर ललितपुर की ओर चल दिए ।

हिम्मत सिंह ने ललितपुर आने से पूर्व ही ललितपुर के चारों ओर घेरा डाल दिया ललितपुर में विद्रोही सैनिक तो नहीं थे पर किसी शासक के अभाव में समाज विरोधी तत्व हिंसा, उपद्रव एवं लूटपाट मचाए हुए थे । हिम्मत सिंह के सैनिकों ने उनके दमन करने का प्रयास आरंभ कर दिया ।

तेरह

ललितपुर आते हुए जाखलौन वाले जवाहर सिंह को हिम्मत सिंह को सीधे चन्देरी पहुंचने के लिए लिखा । दूसरे दिन मर्दन सिंह स्वयं ललितपुर आ गए । उन्होंने झुनारे रावत, गनेश हवलदार एवं सामले मिसर को साथ में लेकर पुरा एवं मुहल्ले-मुहल्ले घूमना तथा प्रजाजनों को सुरक्षा का आश्वासन देना आरंभ किया । साथ ही जो भी अराजक तत्व कहीं मिले, उन्हें जो भी अराजक तत्व कहीं मिले, उन्हें पकड़ा अथवा नष्ट किया जाए । [24]

मर्दन सिंह को ललितपुर में समाचार मिला कि चन्देरी के किले के अतिरिक्त विद्रोहियों का चन्देरी के सभी रक्षा दुर्गों पर अधिका है । ऐसी स्थिति में चन्देरी दुर्ग पर अधिकार कर लेना आसान नहीं था । अतः उन्होंने जवाहर सिंह और पर्वत सिंह को पुनः निर्देश भेजा कि उनके चन्देरी पहुंचने के पूर्व वे लोग आक्रमण न करें ।

जवाहर सिंह कनावटा घाट से बेतवा पार करके चन्देरी के निकट तक पहुंच गए थे जबकि पर्वत सिंह अपने दल के साथ बड़ेरा तक पहुंचे थे ।

ललितपुर से मर्दन सिंह राजघाट होते हुए प्रानपुरा पहुंच गए । रात ही में उन्होंने जवाहर सिंह तथा पर्वत सिंह को बुलवाकर परामर्श किया तथा चन्देरी के दुर्ग को उसके आठों रक्षा दुर्गों सहित विद्रोहियों से जीतने की योजना बनाई तथा दूसरे दिन सूर्य निकलने से पूर्व ही चन्देरी का ऐतिहासिक पहाड़ी दुर्ग घेर लिया ।

सूर्योदय के बाद विद्रोहियों को किला खाली कर देने के लिए संदेश भेजा गया उत्तर में विद्रोहियों ने स्पष्ट सूचना भेजी कि उनका उद्देश्य राज्य करना नहीं वरन् इन विश्वासघाती, मक्कार, धोखेबाज फिरंगियों को देश से बाहर निकालना है। यह किला बानपुर राजा के पुरखों का है । इसे लौटाने में हम लोगों का कोई विरोध नहीं है किन्तु किला इसी शर्त पर उन्हें दिया जा सकता है कि इसका उपयोग विद्रोहियों का दमन करने के लिए नहीं किया जाएगा ।

मर्दन सिंह ने विद्रोहियों के एक प्रतिनिधि को मिलने के लिए बुलाया । आए हुए प्रतिनिधि ने निम्नलिखित विचार अभिव्यक्त किए :

ये फिरंगी सात समन्दर पार से आकर आज सारे देश में दा गए । इन्होंने अपनी कोठियों की रक्षा के लिए हम सरीखे सैनिकों को भर्ती किया और फिर हम लोगों को लड़ाकर हमारे ही देश के नए पुराने सभी राज्य हड़प लिए । हम हैं कि सिर्फ पेट भरने के लिए इनकी ओर से लड़ते हैं । अपने ही देशवासी के खून से अपनी तलवारें लाल करते हैं और गांव पर गांव, शहर पर शहर, अपने ही राजाओं से छीनकर इनके हवाले करते जाते हैं बदले में हम लोगों के साथ कुत्तों जैसा बर्ताव किया जाता है । राजा महाराजाओं का भी बुरा हाल है । ये अपना थोड़ा सा फायदा सोचकर इन फिरंगियों से मदद ले बैठते हैं । फिर इनके जाल में फंसकर कोरे नाम के राजा बने रह जाते हैं और इनके इशारों पर नाचते रहते हैं ।

अब हम सिपाही चेत गए हैं । अब या तो मर जाएंगे या इन्हें देश के बाहर निकाल देंगे । यह हम जानते हैं कि हम लोग तभी मरेंगे जब हमारे ही भाई इनकी मदद करेंगे ।

हमें मालूम है कि ललितपुर से फिरंगी बानपुर गए थे । आप भूल गए कि ग्वालियर वालों की मदद इन्हीं फिरंगियों ने की थी और आपके पिता का राज्य शिन्दे को दिलवा दिया था । सन् 1854 में जब ललितपुर आपके सरदारों ने छीन लिया था तब यही फिरंगी हम लोगों की फौजें लेकर आए और ललितपुर अपने कब्जे में कर लिया । उसे न आपके पास रहने दिया और न ही सिंधिया को लौटाया ।

आपने यह भी सोचा होता कि अगर कोई अपने यहां का व्यक्ति जिस हालत में ये लोग आपके पास उस हालत में इनके पास पहुंचता तो उसके साथ ये कैसा बर्ताव करते ? वह या तो मार डाला जाता या उसके पास जो कुछा होता उसे छीनकर जन्म भर के लिए कैदखाने में डरख दिया जाता । क्या आपको नहीं मालूम कि नागपुर के भोंसले के राजभवन का सामान कोलकाता के बाजार में नीलाम किया गया था । गढ़ा कोटा के राजा शंकरशाह को गद्दी से उतारकर उनके लड़के को फांसी पर लटका दिया गया । आप मालिक है और यहां के पुश्तैनी राजा हैं । जैसा जाने करें, अगर आप फिरंगियों को मदद देने के लिए किला खाली करवाना चाहते हैं तो हम लोग मरते-मरते तक किला खाली नहीं करेंगे और अपनी बपौती समझकर किला लेना चाहते हैं और आपकी चाकरी करने को तैयार हैं ।

मर्दन सिंह ने सुना और सोचकर बोले 'जब हम किले पर अधिकार कर रहे हैं तो उसे अपना ही समझकर ले रहे हैं ।'

इस पर सैनिक किले में चला गया । कुछ समय बाद सारी विद्रोही सेना किले से बाहर आ गई और उसने सैनिक ढंग से मर्दन सिंह का स्वागत किया । महाराज मर्दन सिंह के जयघोषों से चन्देरी गूंज उठी ।

चौदह

किले पर अधिकार करने के बाद मर्दन सिंह ने चौधरी कीरत सिंह को तलाश किया मालूम हुआ कि वह चन्देरी में नहीं है । अविलम्ब अचलगढ़ सैनिक भेजे गए किन्तु वह वहां भी नहीं मिला । चन्देरी की व्यवस्था मर्दन सिंह ने एक प्रमुख विद्रोही सैनिक को सौंप दी तााि आदेश दिया कि जनता को किसी भी प्रकार का कष्ट न होना चाहिए वे स्वयं शहराई, रमपुरा, शहपुरा होते हुए धौर्रा, बालाबेहट, दूधई, डोंगरा, पाली की व्यवस्था संभालते हुए बरौदिया पहुंचे । बरौदिया शाहगढ़ राज्य में था । बरौदिया में नागरिकों तथा शाहगढ़ राज्य की ओर से बखतबली के छोटे भाई उदयराज सिंह ने भव्य स्वागत किया । उदयराज के साथ मर्दन सिंह शाहगढ़ चले गए ।

शाहगढ़ में मर्दन सिंह एवं बखतबली में तत्कालीन बुन्देलखण्ड तथा भारत की राजनैतिक स्थिति पर विचार विमर्श होता रहा ।

बखतबली यह जानकर, कि ललितपुर और चन्देरी फिर मर्दन सिंह के अधिकार में आ गए, बहुत प्रसन्न हुए ।

मर्दन सिंह का विचार था कि फिलहाल अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध घो-ाणा न करके जबलपुर के कमिश्नर को सूचना दी जाए कि हम लोगों ने ललितपुर के विद्रोह का दमन कर दिया तथा अराजकता की स्थिति समाप्त कर दी किन्तु बखतबली इससे सहमत नहीं हुए । अंत में यह निश्चित किया गया कि अभी चुप रहा जाए तथा यथासंभव सैन्य शक्ति बढ़ाई जाए एवं जो भी नाके हैं जहां से किसी प्रकार के आक्रमण की आशंका हो वहां पर्याप्त सैनिक रख कर नाका बंद कर दिया जाए । इस विचार विमर्श में पटना के बाजूरा दुबे, दीवान मदनपुर और जालंधर के दीवान[25] मलखान सिंह , नाराहट वाले राव साहब तथा झुनारे रावत सम्मिलित थे। शाहगढ़ से विदा होकर मर्दन सिंह झुनारे रावत को साथ लिए जालंधर, सैदपुर होते हुए महरौनी आ गए । झुनारे रावत महरौनी से ललितपुर चले गए । मर्दन सिंह मदनपुर चौकी की सुरक्षा की व्यवस्था करने के उपरान्त बानपुर चले आए ।

कुछ ही दिनों के बाद मर्दन सिंह को सूचना मिली कि सागर की 47वीं पैदल सेना ने भी विद्रोह कर दिया तथा सागर का किला अंग्रेजों से खाली कराकर विद्रोही राहतगढ़ की ओर चल दिये हैं ।

सागर की इस विद्रोही सेना में आस-पास के वे सैनिक भी सम्मिलित हो गए थे जिनकी आस्था गढ़ाकोटा के पूर्व राजा शंकरशाह[26] के प्रति थी । शंकरशाह को अंग्रेजों ने बिना किसी कारण गद्दी से उतार दिया था तथा उसके लड़के को फांसी पर लटका दिया था ।

चारों ओर के विद्रोह के समाचार प्राप्त होने पर सागर की 47वीं पैदल सेना ने विद्रोह कर दिया और शंकरशाह को कारागार से मुक्त करके अपना नेता घोषित कर दिया तथा उसके नेतृत्व में सर्वप्रथम गढ़ाकोटा पर तदुपरान्त राहतगढ़[27] पर अधिकार कर लिया। राहतगढ़ के साथ-साथ नरयावली भी हथिया लिया गया। राहतगढ़ विद्रोहियों ने संभवतः अपनी रक्षा के दृष्टिकोण से नरयावली को अपने अधिकार में ले लिया होगा । दूसरा कारण यह हो सकता है कि अंग्रेजों के विद्रोह के दमन के लिए विद्रोही इसे उपयोग न करने देना चाहते हों ।

मर्दन सिंह अभी तक निश्चय नहीं कर पाए थे कि उनका योगदान इस विप्लवाग्नि को और अधिक प्रज्वलित करने में होना चाहिए अथवा उसके शमन हेतु सलिल सिंचन होना चाहिए । वह यह भली प्रकार जानते थे कि विद्रोहियों में उत्साह तो बहुत अधिक है किन्तु उनमें अनुशासन तथा सूत्रबद्धता का नितान्त अभाव है । जबकि अंग्रेजी सेना में पूर्ण अनुशासन एवं ऐक्य है । चन्देरी में विद्रोहियों के प्रतिनिधि ने उनसे जो बातें कही थीं उनके एक-एक शब्द उन्हें रह-रहकर स्मरण हो आते थे जो उन्हें विद्रोहियों का सहयोग करने के लिए विवश सा करते थे । अंत में किसी निष्कर्ष पर न पहुंचने के कारण उन्होंने इस संबंध में टीकमगढ़ जाकर वहां की रानी से विचार विमर्श करने का निश्चय किया । टीकमगढ़ की लाड़ली ;लड़ईद्ध रानी वंश पीढ़ी के अनुसार उरनकी भाभी होती थीं । ओरछा के दीवान नत्थे खां पर तो उन्हें विश्वास नहीं था क्योंकि वह अंग्रेजों का अंध भक्त था किन्तु रानी से उचित सम्मति प्राप्ति की उन्हें आशा थी ।

वे टीकमगढ़ गए और रनवास में रानी से तत्कालीन परिस्थितियों में जो उनका कर्तव्य हो वह बतलाने के लिए कहा ।

रानी ने बताया कि उनकी स्वयं की परिस्थिति भी प्रारंभ में ठीक नहीं थी । सारे राज्य का कार्य दीवान नत्थे खां के हाथ में था । हम्मीर सिंह अवयस्क था । मैं स्वयं बाहर निकलकर कामकाज नहीं कर सकती थी । फिर भी रानी के विचार से विद्रोह के सफल होने के कोई लक्षण नहीं हैं । रानी ने जो कारण बताए वे यह हैं :

- सभी विद्रोही एक विचार के नहीं हैं ।
- विद्रोहियों की विभिन्न टुकड़ियों के अलग-अलग मुखिया हैं जो अपने आपको ही सर्वाधिक प्रमुख व्यक्ति बताने का प्रयत्न करते हैं ।
- विद्रोहियों में योद्धा तो सभी हैं पर उनमें राजनीतिज्ञ एक भी नहीं है ।

रानी ने मर्दन सिंह से यहां तक कहा कि बादशाह बहादुरशाह जफर, नाना साहब एवं राव साहब पेशवा भी राजनीति से पूर्णतः शून्य हैं । यदि ये राजनीति के ज्ञाता होते तो इनका पतन न होता । हां! तात्या अवश्य है जो कुशल राजनीतिज्ञ एवं योग्य

सेनापति है पर जफर और नाना साहब बिना योग्यता के भी अपनी प्रमुखता के इच्छुक हैं । उनकी इसी इच्छा में विद्रोह की असफलता के बीज छिपे हैं ।

मर्दन सिंह ने यह स्वीकार किया कि रानी की सम्मति तर्क सिद्ध है किन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि जीवन का मार्ग कठिनाइयों के झाड़झंखाड़ों में खोकर ही है, जिसको पार करना ही है । अब प्रश्न अपना लक्ष्य बनाने का है । चाहे आत्महित को कोई अपना साध्य बना ले अथवा लोककल्याण का लोककल्याण की ओर चलने में आत्महित को किसी न किसी रूप में छोड़ना ही पड़ता है । एक ओर अपने आपको अंग्रेजों की कृपा के ऊपर निर्भर रहकर उनकी दासता स्वीकार कर सुख साधन जुटाना है दूसरी ओर जनता को अंग्रेजों की अत्याचार की चक्की में पिसने से बचाना और भारतीयता की रक्षा के लिए प्रयत्न करना है । यह ठीक है कि जो शक्ति आज अंग्रेजों के विरुद्ध उठी है । उसमें संगठन और सही दिशा-दर्शन की कमी है और संभव है कि इसी कमी के कारण वह न-ट हो जाए लेकिन मिटकर भी वह भवि-य में अंग्रेजों का नाश करने वाली शक्तियों की बीज बन जाएगी । अगर इन अंग्रेजों का इस समय विरोध नहीं किया जाता है तो वह समय आ रहा है जब इस देश से अपना धर्म और अपने पुरखों के नाम मिट जाएंगे ।

टीकमगढ़ की रानी से मिलने के बाद मर्दन सिंह कुछ निश्चय न कर सके तथा अस्थिर बुद्धि की स्थिति में बानपुर चले आए ।

घटनाक्रम बहुत तेजी से बदल रहा था । फलतः मर्दन सिंह को जल्दी-जल्दी अनेक निर्णय लेने पड़े ।

पन्द्रह

वर्षा काल बीतते ही कंपनी सरकार ने विद्रोह दमन करने के लिए प्रयत्न आरंभ कर दिए । दूसरी ओर विद्रोहियों में अनेक मतभेद होते हुए भी वे इस बात पर एकमत थे कि अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए हमें अपना पूरा प्रयत्न करना है और असफल होने पर आत्माहुति देने में भी कोई संकोच नहीं करना है । उन सबमें एक राष्ट्र भावना एवं राष्ट्र चेतना थी । सभी हिन्दू सैनिक कामाक्षा से द्वारका तथा मानसरोवर से रामेश्वर तक विस्तृत क्षेत्र को अपना देश समझते थे और मुसलमान इस मुज़-ए-ज़मी को अपना मुल्क समझ रहे थे जो कभी बहमनी और मुग़लों की ज़ेरे हुकूमत रह चुका था ।

बानपुर नरेश मर्दन सिंह और शाहगढ़ नरेश बखतबली की भी देश संबंधी यही परिभाषा थी जो अंग्रेजी सेना के किसी भारतीय सैनिक की थी किन्तु उनकी स्थिति में अन्यों से अन्तर यह था कि वे कभी भी अंग्रेज सरकार के कर्मचारी नहीं रहे थे तथा नाना साहब या राव साहब पेशवा, बादशाह बहादुरशाह जफर या महारानी लक्ष्मीबाई की भांति वे अंग्रेजों की पेंशन पर जीविका नहीं चला रहे थे । मर्दन सिंह के पिता के राज्य का अधिकांश भाग अंग्रेजों ने सिंधिया जनकोजीराव को आगे करके छीन अवश्य लिया था फिर भी उनके पास स्वशासित भू-खण्ड था मर्दन सिंह एवं बखतबली का अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने का प्रमुख कारण अपनी काली करतूतों के कारण अंग्रेजों से घृणा करना था ।

यह जानते हुए भी कि इन विद्रोहियों की पलटनियों के प्रयासों की सफलता के लिए कोई विशेष आधार नहीं है । वे दोनों अंग्रेजों की सहायता देने को स्वयं को तैयार न कर सके ।

वर्षा ऋतु के व्यतीत होते ही ललितपुर के विद्रोहियों ने चन्देरी के किले में रह अपनी गतिविधियां चलाकर एक ओर मुंगावली पर अधिकार कर लिया और दूसरी ओर पिछोर तक वे छापे मारने लगे ।

राहतगढ़ के विद्रोही भी बाहर निकले । उन्होंने खुरई का बाज़ार लूटने के बाद खिमलासा नगर को भी लूट लिया ।

अंत में मध्य भारत के विद्रोहियों का दमन करने के लिए अंग्रेजी शासन द्वारा सर ह्यूरोज को नियुक्त किया गया । ह्यूरोज एक अनुभवी एवं कुशल सैनिक के साथ-साथ सफल कूटनीतिज्ञ भी था । समझा जाता है कि वह कुसतुनतुनिया में राजदूत के पद पर काम कर चुका था । दिसम्बर सन् 1857 में वह सेंट्रल इंडिया फील्ड फोर्स का कमाण्डर नियुक्त किया गया । वह मुम्बई से इन्दौर आया । उसने राजपूताना, मालवा में विद्रोहियों का दमन करवाया । इसके बाद उसे बुन्देलखण्ड में विद्रोहियों के दमन हेतु कहा गया । इस उपक्रम में उसने सर्वप्रथम इन्दौर से जबलपुर आकर ढाना वाले तिवारी जी से संपर्क स्थापित किया । ढाना का तिवारी परिवार उस क्षेत्र में अत्यंत प्रभावशाली एवं समृद्ध था । ह्यूरोज ने तिवारी का ध्यान उस अशान्ति काल में हो रही जन-धन की हानि की ओर आकर्-ित किया तथा उन्हें शाहगढ़ और बानपुर के राजाओं को अंग्रेजों से मिलाने का कार्य सौंपा उन्होंने विश्वास दिलाया कि विद्रोह के दमन किए जाने के बाद उन्हें अंग्रेजी शासन में विशेष सम्मान तथा जागीर दी जाएगी ।[28]

ढाना वाले तिवारी सन् 1858 के माह जनवरी के अंतिम सप्ताह में पटना, मड़ावरा गांव आए । पटना में दुबे परिवार अत्यधिक प्रभावशाली एवं समृद्ध था। उस परिवार के प्रमुख व्यक्ति बाजूरा दुबे के शाहगढ़ के राजा से परंपरागत घनिष्ठ संबंध थे। दुबे परिवार और ढाना के तिवारी परिवार में रक्त संबंध थे । तिवारी ने ऊँच-नीच समझा-बुझा कर बाजूरा दुबे से अनुरोध किया कि वे बखतबली को अंग्रेजों से सहमत करने के लिए समझावें । यदि शाहगढ़ वाले मान जाएं तो ठीक है नहीं तो कम-से-कम यदि शाहगढ़ वाले अंग्रेजों के विरुद्ध जाते हैं तो दुबे परिवार को उनका साथ नहीं देना चाहिए ।

बाजूरा दुबे ने स्पष्ट कहा कि वे राजा बखतबली को समझाने का प्रयत्न अवश्य करेंगे किन्तु यदि वह तैयार नहीं हुए तो वे किसी भी दशा में बखतबली का साथ छोड़ने को तैयार नहीं हो सकते । बाजूरा ने डोगरा, गुढ़ा बुजुर्ग और नाराहट के ठाकुरों को भी बुलवाकर ढाना वालों से बातचीत करवा दी किन्तु ढाना वाले तिवारी का यह प्रयास निष्फल ही रहा ।

सोलह

2 फरवरी सन् 1858 को राहतगढ़ के विद्रोहियों का शाहगढ़ एक पत्र पहुंचा कि ह्यूरोज ने गढ़ाकोटा तथा सागर पर अधिकार कर लिया और अब उसका लक्ष्य राहतगढ़ है । अतः शाहगढ़ और बानपुर से सहायता की याचना की जाती है । इसी प्रकार का एक पत्र मर्दन सिंह को भी मिला ।

पत्र पाते ही मर्दन सिंह ने बखतबली को सेना सहित गौना पहुंचने के लिए लिखा और वे स्वयं भी अपनी सेना लेकर गौना पहुंच गए । वहीं ककरुवा वाले हिम्मत सिंह और जाखलौन वाले जवाहर सिंह भी बुलवा लिए गए । जवाहर सिंह कुछ विलंब से आए क्योंकि उसका अपने बड़े भाई धुरमंगल[29] से कुछ कीर्ति तथा परिवार संबंधी विषयों पर मनमुटाव हो गया था ।

दोनों राजाओं एवं उनके सभी प्रमुख सरदारों की अंतरंग गो-ठी में विद्रोहियों की सहायता की जाए या नहीं, गौना में इस वि-ाय पर विचार विमर्श हुआ । इस गोष्ठी में झुनारे रावत, बाजूरा दुबे, हिम्मत सिंह ककरुवा वालों ने अंग्रेजों का प्रबल एवं प्रभावशाली विरोध किया । हिम्मत सिंह तो प्रतिज्ञा कर बैठा कि वह किसी भी मूल्य पर राहतगढ़ के किले में जो सैनिक हैं उन्हें अंग्रेजी सेना के घेरे से निकाल कर ही दम लेगा ।[30]

निश्चय के अनुसार शाहगढ़ तथा बानपुर की संयुक्त सेना ने राहतगढ़ की ओर कूच कर दिया ।

राहतगढ़ में सागर की 49वीं पैदल सेना के विद्रोही सैनिक जगे हुए थे सर ह्यूरोज हैमिल्टन और पेण्डर गौस्ट के साथ अपनी सेना तथा ढाना के तिवारी की देसी सेना साथ में लिए हुए जबलपुर से गढ़ा कोटा आया । उसने नगर को घेर लिया। यहां विद्रोहियों ने विद्रोह के जो कारण घोषित किए थे उनमें वहां के राजा का राजच्युत किया जाना , उसके लड़के को फांसी दे देना और अंग्रेजों द्वारा राज्य हड़प लेना प्रमुख थे [31]

दो दिन गढ़ा कोटा में पर्याप्त विश्राम करने के बाद ह्यूरोज की सेनाएं राहतगढ़ की ओर चलीं । 1858 की फरवरी की पहली तारीख को रात में 10 बजे के बाद अंग्रेजी सेना ने राहतगढ़ दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया और प्रातःकाल से ही दुर्ग पर धुंआधार गोलों की वर्षा आरंभ कर दी राहतगढ़ की भौगोलिक स्थिति के कारण विद्रोही सैनिकों ने अपने आपको घेरे में डाल लिया था निःसंदेह वह दुर्ग छापामार युद्ध के विचार से अच्छा सैनिक केन्द्र था किन्तु उसकी सुरक्षा की उसके चारों ओर विद्रोही सैनिकों ने कोई व्यवस्था नहीं की । फलतः वे दुर्ग में घिरकर रह गए ।

इससे स्पष्ट है कि विद्रोही सेना में एक भी अधिनायक ऐसा नहीं था जो युद्ध की विधाओं से भली-भॉति परिचित हो तथा उचित ढंग से युद्ध का संचालन करने की क्षमता रखता हो । विद्रोहियों की इसी त्रुटि के फलस्वरूप न केवल उन्हें अपितु संपूर्ण देश को सब कुछ खोना पड़ा । राहतगढ़ के किले से विद्रोहियों ने अंग्रेजों की गोलाबारी का पूरा जवाब दिया ।

प्रातःकाल से तीन घंटे युद्ध चल पाया था कि राहतगढ़ पर घेरा डालने वाली सेना ने स्वयं को चारों ओर से घिरा हुआ पाया । जवाहर सिंह, हिम्मत सिंह, मलखान सिंह जालंधर वालों ने अंग्रेजों की सेना पर चारों ओर से घेरो डालकर भयानक आक्रमण प्रारंभ कर दिया । अंग्रेजों को इस घेरे का तब पता चला जब उनकी पीठ पर गोलियां चलने लगीं ।

सर ह्यूरोज कुछ क्षणों के लिए इस दोतरफी मार से घबरा उठा किन्तु उसने तुरंत अपनी आधी सेना का रुख बाहर से घेरा डालने वाली शत्रु सेना की ओर फेर दिया ।

सत्रह

मर्दन सिंह और बखतबली की सेनाएं अंग्रेजों के इस भयंकर प्रतिरोध की परवाह न करके शत्रु सेना की ओर बढ़ने लगी । हिम्मत सिंह अपने चुने हुए सधे साथियों को साथ लेकर आगे बढ़ा और किले के मुख्य द्वार की ओर शत्रु सेना को काट कर मार्ग बनाने लगा । उसकी रक्षार्थ बाजूरा दुबे अपने दल के साथ तथा जालंधर वाले दीवान मलखान सिंह अहीरों एवं लोधियों की सेना लेकर बढ़ चले । आखिर में गोलियों का स्थान सांगों एवं भालों ने ले लिया । गोरों का पूरा प्रयास हिम्मत सिंह को धूल चटा देने का था और हिम्मत सिंह का प्रयत्न अपनी मुख्य सेना को गढ़ के मुख्य द्वार तक विद्रोहियों के निकलने के लिए मार्ग प्रशस्त कर देने का था। हिम्मत सिंह की हिम्मत को इस प्रथम मुठभेड़ में सफलता मिली और वे न केवल मार्ग निर्माण में वरन् किले में घिरे एक-एक सैनिक को निकालकर अंग्रेजी सेना को चीरकर अपनी सेना से मिलाने में सफल हो गए । हिम्मत सिंह के साथ आगे बढ़ने तथा किले का दरवाजा खोलकर विद्रोही सैनिकों को बाहर निकालने में महरौनी के धोकल सिंह सिकरवार तथा जुझार सिंह बैस[32] ने अदम्य

साहस एवं वीरता का परिचय दिया । ये दोनों वीर सभी विद्रोही निकाल लाए । इसी प्रयास में वे दोनों वीर गोलियों से क्षत-विक्षत हो गए । उन्हें विश्राम तथा उपचार के लिए तुरंत सेना के पिछले भाग में और बाद में बरौदिया भेज दिया गया ।

विद्रोही सैनिक बानपुर और शाहगढ़ की सेना से आकर मिले ही थे कि पेण्डर गौस्ट अपनी गोरी सेना को घुमा कर शत्रु सेना के पृष्ठ भाग में आ गया । मर्दन सिंह ने यह सोचकर कि विद्रोही सैनिक तो किले से निकाल ही लिए गए हैं , दोहरा युद्ध करना उचित नहीं । अतः वे सेना सहित पेण्डर गौस्ट की सेना को काटते हुए निकल कर बरौदिया आ गए ।[33]

इधर ह्यूरोज की सेना ने राहतगढ़ पर अधिकार कर लिया । दुर्ग में प्रवेश करने पर सैनिकों को युद्ध सामग्री के नाम पर एक कारतूस भी नहीं मिला । जितना सामान किले में था वह सब लेकर विद्रोही अंग्रेजी सेना की नाक के नीचे से लेकर निकल गए थे । हां! इतना अवश्य हुआ कि राहतगढ़ का दुर्ग, जो कुछ समय पूर्व विद्रोहियों के अधिकार में था, अंग्रेजी सेना के अधिकार में हो गया किन्तु सैनिक दृष्टि से अंग्रेजी सेना उस दुर्ग से कोई लाभ नहीं उठा सकी ।

मर्दन सिंह एवं बखतबली ने अब मोर्चा बांधकर युद्ध करने का निश्चय किया राहतगढ़ से हटकर उन दोनों की सेनाओं ने विद्रोही सेना को साथ लेकर बरौदिया में मोर्चा जमाया । उसके पीछे अटा और गौना के बीच में अमझरा नाम की प्रसिद्ध घाटी पर दूसरा मोर्चा बांधने का भी आयोजन किया । इसके अतिरिक्त एक मोर्चा अंग्रेजों का मार्ग अवरोध करने के लिए मदनपुर की घाटी पर बांधने की भी योजना बनाई ।

सेना की पूर्ण व्यवस्था करने के लिए झुनारे रावत को ललितपुर भेजा गया। वहां उनका काम अभ्यस्त एवं कुशल व्यक्तियों को सेना मे सम्मिलित करके नई सेना को संगठित करना था जो समय पर मुख्य सेना को सहायता दे सके तथा शत्रु सेना पर समय-समय पर छापा मार सके ।

बरौदिया में विद्रोहियों का मुखिया गुलाम मोहम्मद सैन्य सूत्र अपने हाथ में लिए था । शाहगढ़ की सेना बाजूरा दुबे और मलखान सिंह जालंधर वालों के अधिनायकत्व में थी । बानपुर की सेना का संचालन मान अली शाह महरौनी निवासी कर रहा था ।

मान अली शाह एक अनुभवी सैनिक था । जाति से वह फकीर था किन्तु उसे बचपन से ही युद्ध के प्रति रुचि थी । स्वभाव से वह संयत, व्यवहार कुशल, विनम्र एवं अनुशासन प्रिय व्यक्ति था । उसने पश्चिमी ढंग से युद्ध करने की शिक्षा फ्रांसीसियों से ली थी । वह एक दीनदार व्यक्ति था ।

अट्ठारह

5 फरवरी सन् 1858 को पेण्डर गौस्ट के निर्देशन में अंग्रेजी सेना ने इस सेना का मुकाबला किया । दोनों ओर से जमकर गोलाबारी हुई दोनों ओर के सैनिक जान की बाजी लगा रहे थे । देश की स्वतंत्रता एवं शासकीय लिप्सा का भयानक युद्ध बरौदिया के रण क्षेत्र में हुआ । शायद ह्यूरोज द्वारा लड़े गए 1857-1858 के सारे युद्धों में उसे इतना कड़ा संघर्ष नहीं करना पड़ा होगा ।

विद्रोही सेना के गर्वीले पठानों ने यहां युद्ध करने की ठान ली थी राजपूतों ने अपनी युद्धप्रियता का जैसा सुंदर प्रदर्शन बरौदिया के युद्ध में किया वैसा शायद बहुत दिनों से नहीं किया गया होगा । कम से कम गत 25 वर्षों में इतना कठिन मोर्चा नहीं लड़ा गया था । बानपुर और शाहगढ़ के जवानों ने निश्चय कर लिया था कि प्राण रहते फिरंगियों को आगे नहीं बढ़ने देंगे । राइफलों और तोपों की लड़ाई चल रही थी कि गुलाम मोहम्मद खां के जोशीले जवान संगीनें तान-तान कर गोरों की ओर बढ़ने लगे । उनकी रक्षा के लिए पीछे से धुंआधार गोली वर्षा हो रही थी । जवान पूरी तेजी से जल्दी से जल्दी गोरों तक पहुंच कर दो-दो हाथ करना चाहते थे । वह बतला देना चाहते थे कि जवान लोग तलवारों की धारों और भालों की नोकों पर अपनी राह बनाते हैं । आड़ लेकर गोली चला देने का काम तो कोई बहादुरी नहीं ।

बाजूरा दुबे एवं मलखान सिंह ने बाईं ओर से शत्रु पर दबाव डालना आरंभ कर दिया । ह्यूरोज ने यह देखकर कि शत्रु प्रबल हो रहा है पेण्डर गौस्ट के अधिनायकत्व में गौड़ों तथा सौंरों ;सवरद्ध की नवनिर्मित सेना युद्ध के लिए आगे कर दी और गोरी सेना का पीछे लौटकर शत्रु के बगल से आक्रमण करने की योजना बनाई ।

मर्दन सिंह पीछे रहकर सेना का संचालन कर रहे थे । वे शत्रु की इस चाल को ताड़ गए । उन्होंने इसका संकेत मान अली शाह को दिया । मान अलीशाह ने अपने साथ भैरा, कुरौरा, पाली, महरौनी, पड़वा के ठाकुरों और घोसियों की सेना लेकर गोरी सेना का रास्ता रोक लिया और कंपनी की सेना को सामने की लड़ाई लड़ने के लिए विवश कर दिया।

ह्यूरोज यह अनुभव करने लगा कि यदि पैंतरा नहीं बदला तो निश्चय ही भारत के विद्रोह दमन के कार्यक्रम की समाप्ति बरौदिया युद्ध में ही हो जाएगी ।

बानपुर, शाहगढ़ एवं विद्रोहियों की सेनाएं जमकर लड़ रही थी मलखान सिंह जालंधर वाले और बाजूरा दुबे के सैनिक, जिनमें अधिक संख्या अहीरों और लोधियों की थी, क्षण-प्रतिक्षण मैदान में बढ़ रहे थे । मर्दन सिंह व बखतबली ने समझ लिया कि मैदान अपने हाथ रहेगा । मान अली शाह का दल एक ओर और शाहगढ़ की सेना दूसरी ओर से अंग्रेजी सेना को दो भागों में बांट

देने के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील थी । गुलाम मोहम्मद पूरे जोश से यह तय करके लड़ रहा था या तो वह तह-ए-कब्र होगा या पेण्डर गौस्ट को राह-ए-अदम पर चहलक़दमी करने के लिए मजबूर कर देगा

तभी ढाना वाले तिवारी एक हजार सैनिकों की सेना लेकर मान अलीशाह की सेना पर टूट पड़े । मान अलीशाह के सैनिक ढाना की ताजी सेना आ जाने से पूरी तरह घिर गए । यह देखकर रणछोर घोषी अपनी सुरक्षित सेना को लेकर ढाना के तिवारी की सेना पर टूट पड़ा । युद्ध इतना जमकर हो रहा था कि यह नहीं कहा जा सकता था कि कौन सा पलड़ा भारी रहेगा ।

गुलाम मोहम्मद जब अपनी सेना को जोश और निर्देश दे रहा था; एक गोली उसकी छाती में लगी और वह जमीन चूमने लगा । यह देखकर सलीम हवलदार ने चिल्लाकर कहा 'बहादुरो! परवाह मत करो । हमें आज इन फिरंगियों का हमेशा के लिए किस्सा समाप्त कर देना है । गुलाम मोहम्मद की शहादत हममें से हर शख्स को गुलाम मोहम्मद बना रही है । दूसरी ओर मान अलीशाह, जो बल्लम से लड़ रहा था, एक सैनिक की संगीन से घाव खाकर धरती पर गिर गया उसे गिरता देख मोहम्मद अली ने तेजी से बढ़कर उसकी कमी को पूरा किया और अपने सैनिकों को हतोत्साहित नहीं होने दिया । ढाना के तिवारी की सेना, जो मान अलीशाह पर पीछे से आक्रमण कर रही थी, को अपनी ओर मुड़ने के लिए रणछोर घोसी ने विवश कर दिया । बरौदिया की लड़ाई एक पहर दिन चढ़ आरंभ हुई थी जो सारे दिन चलती रही । किन्तु हार-जीत का निर्णय न हो सका सायंकाल समरांगण में मर्दन सिंह का परम विश्वस्त अनुचर एवं कारिन्दा मोहम्मद अली मादरे वतन को अपना सर देकर शहीदों में अपनी गिनती कराने के लिए गुलाम मोहम्मद और मान अलीशाह का हमसफर हो गया ।

सूर्यास्त के बाद जब दोस्त और दुश्मन की पहचान मुश्किल हो गई तब लड़ाई बंद कर दी गई ।

बरौदिया के इस युद्ध में दोनों पक्षों के जन-धन की हानि हुई ।[34] इस युद्ध के बाद एक ओर ह्यूरोज अपनी सेना को पुनः तैयार करने के लिए सागर ले जाने को विवश हो गया तो दूसरी ओर मर्दन सिंह और बखतबली यह समझ रहे थे कि वर्तमान स्थिति में उनकी सेनाएं शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ नहीं हैं ।

बरौदिया युद्ध के उपरान्त मर्दन सिंह और बखतबली इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब तक पर्याप्त रूप से अपना सैन्य संगठन न कर लिया जाए तब तक शत्रुओं पर आक्रमण करना उचित नहीं । साथ-साथ बरौदिया सरीखे स्थान पर सेनाएं लिए पड़े रहना अनुपयुक्त था क्योंकि बरौदिया में सेना पर किसी भी ओर से आक्रमण करके उसे क्षतिग्रस्त किया जा सकता था । अतः सब लोगों ने युद्ध नीति पर विचार करके यही निश्चय किया कि सेना को दो भागों में बांट कर मदनपुर और अमझरा घाटियों पर, जहां दूसरा मोर्चा लगाने की पहले से व्यवस्था की गई थी, भेज दिया जाए।

इन लोगों का विचार था कि गोरों की सेनाओं के आगे बढ़ते ही ददोनों ओर से आक्रमण कर दिया जाए । अतः जो सैनिक अधिकारी वहां की भौगोलिक स्थिति से अधिक परिचित था उसे अमझरा और मदनपुर में से वहीं युद्ध करने के लिए भेजा।

इन लोगों का विचार यह भी था कि जैसे ही गोरों की सेनाएं आगे बढ़ीं जैसे ही यदि उनका रुख मदनपुर की ओर हो तो अमझरा वाली सेना और यदि अमझरा की ओर रुख हो तो मदनपुर की सेनाएं पीछे से आक्रमण कर दें ।

मोटे तौर से शाहगढ़ की सेना मदनपुर घाटी पर रखी गई तथा बानपुर की सेना अमझरा घाटी पर रखी गई । बखतबली मदनपुर पर मर्दन सिंह अमझरा पर सेना को अनुशासित करने के लिए रहे ।[35]

उन्नीस

जो ग़लती भारत के इतिहास में प्रत्येक विदेशी आक्रमण के समय भारत के तत्कालीन शासकों ने की । दुर्भाग्यवश, वही ग़लती मर्दन सिंह और बखतबली द्वारा हुई भारत पर किए गए प्रत्येक आक्रमण के समय तत्कालीन शासकों ने प्रतिरोधात्मक युद्ध किया तथा अपने ही राज्य की भूमि को युद्ध स्थल बन जाने दिया । सक्षम होते हुए भी वे आक्रामक नीति नहीं अपना सके । सिकन्दर के आक्रमण के समय किसी भारतीय शासक ने सिंधु पार करके उसकी शक्ति को आक्रमण से पूर्व ही तोड़ने का प्रयास नहीं किया ।

पृथ्वीराज चौहान ने गौरी को अनेक बार पराजित किया किन्तु कभी स्वयं आक्रामक होने की स्थिति में भी गौरी पर नहीं चढ़ दौड़े ।

मर्दन सिंह अपनी रण सज्जा पूर्ण करके सागर में विश्राम करती ;अंग्रेजीद्ध सेना पर आक्रमण कर देना चाहिए था । यदि ऐसा किया गया होता तो अंग्रेजी सेना को अपनी तैयारी का जो अवसर मिला वह नहीं मिल पाता । संभव था कि अंग्रेजी सेना अधिक संकटापन्न हो जाती और अमझरा से कालपी तक विद्रोही सैनिकों की सेना अधिक अच्छी तरह अंग्रेजों का मुकाबला कर सकती थी ।

मर्दन सिंह ने यह भी प्रयास किया कि झांसी की रानी भी उनके साथ मिलकर संयुक्त रूप से अंग्रेजों का प्रतिरोध करें किन्तु ऐसा नहीं किया गया ।

ह्यूरोज को विंध्य पर्वत श्रृंखला पार करने के लिए दो ही मार्ग थे उसे तत्कालीन परिस्थितियों में एक मार्ग चुनना था । इसके साथ उसे शत्रु को पीछे से आक्रमण करने का अवसर भी नहीं देना था । उसे यह ज्ञात हुआ कि अमझरा घाटी को मर्दन सिंह पूरी शक्ति से बंद किए हुए हैं । अतः ह्यूरोज ने मदनपुर घाटी से ही विंध्य पर्वत माला पार करने का निश्चय किया और उसने कूटनीतिक चाल से अमझरा घाटी पर मर्दन सिंह की सेना को रोकने के लिए पर्याप्त सेना भेज दी । अमझरा घाटी पर पेण्डर गौस्ट गोरों, गौड़ों और सौंरों की सेना को साथ में लेकर बढ़ा । उसके साथ जबलपुर का कमिश्नर हैमिल्टन और ढाना के तिवारी थे ।[36]

दूसरी ओर ह्यूरोज स्वयं मदनपुर घाटी की ओर प्रमुख अंग्रेजी सेना के साथ बढ़ा । उसने शाहगढ़ को घेर लिया । यह एक आश्चर्य की बात है कि बखतबली ने अंग्रेजी आक्रमण के पूर्व ही शाहगढ़ पूर्णतः खाली कर दिया था । सभी नागरिक स्त्री, बच्चों सहित सुरक्षित स्थानों को चले गए थे । वहां केवल ऐसे युवा नागरिक रह गए थे जो अपने राजा तथा राज्य के लिए अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए कृतसंकल्प थे । इन नागरिकों ने विदेशी सेना से जमकर लोहा लिया । यहां तक कि जब अंग्रेजों ने शाहगढ़ पर अधिकार कर लिया तो मनुष्यों के नाम पर केवल शव ही मिले अनाज के भण्डारों में आग लगा दी गई थी । सारा शाहगढ़ नगर श्मशान सा प्रतीत होता था ।

ह्यूरोज ने शाहगढ़ पर अधिकार करने के बाद अत्यंत सावधानी से अपनी सेनाएं बढ़ाईं । साथ ही पेण्डर गौस्ट के अधिनायकत्व में सेना का एक सशक्त भाग अमझरा की ओर बढ़ा । उस भाग के साथ हैमिल्टन और ढाना वाले तिवारी गौड़ों और सहरियों की सेना के साथ थे । सेनाएं इतने सुनियोजित ढंग से बढ़ाई गई कि दोनों स्थानों के आक्रमण के समय में 2-4 घंटों का ही अंतर रहा होगा ।[37]

किसी गुप्तचर ने बखतबली को मदनपुर में यह ग़लत सूचना दी कि ह्यूरोज अमझरा घाटी से विंध्यमाला पार करना चाहता है । जिसके आधार पर बखतबली ने अपनी सेना का पर्याप्त भाग मदनपुर से अमझरा भेज दिया था । सेना का यह भाग युद्ध के समय न तो मदनपुर में रह सका और न ही अमझरा पहुंच सका ।

बीस

28 फरवरी सन् 1858 को प्रातःकाल मदनपुर और अमझरा घाटियों पर एक साथ आक्रमण किया गया । मदनपुर पर बखतबली के साथ दीवान मलखान सिंह जलंधर वाले, उनके पुत्र उमराव सिंह, मदनपुर के दीवान, गढ़ोली के अहीर और गुढ़ा तथा जमुनिया के ठाकुरों के अतिरिक्त 200 पुरबिया विद्रोही सैनिक थे ।

ह्यूरोज ने जैसे ही सेना को घाटी पर बढ़ाया । बखतबली ने आक्रमण कर दिया । दोनों ओर से धुंआधार अग्नि वृष्टि प्रारंभ हो गई । सायं 4 बजे के लगभग ह्यूरोज अपनी एक तोप पहाड़ की एक ऊँची चोटी पर चढ़ाने में सफल हो गया । फलतः बखतबली के सैनिक उसकी सीधी मार में आ गए । लगभग तीन चौथाई सेना भून दी गई । शेष सेना विवश होकर जंगलों में भाग गई । इनमें जलंधर वाले मलखान सिंह बखतबली को साथ लेकर जंगलों में छिप गए । शेष सभी प्रमुख व्यक्ति मारे गए युद्ध में बचे हुए व्यक्तियों का विचार मर्दन सिंह से मिलकर युद्ध करने का था । उन्होंने सबसे पहले अपने-अपने परिवारों को उनके निवास स्थान से हटाकर उनकी सुरक्षा की व्यवस्था की ।

इधर, अमझरा घाटी पर पेण्डर गौस्ट ने पैदल सेना से आक्रमण किया उसने गोरी सेना से आगे गौड़ों एवं नवनिर्मित सहरियों की सेना रखी । मर्दन सिंह ने अपनी सेना तीन भागों में बांटकर प्रत्याक्रमण किया । बाईं ओर नाराहट वालों के नेतृत्व में ठाकुरों की सेना थी तो दाई ओर जवाहर सिंह की संरक्षा में ठाकुरों तथा बेतवा के तटवर्ती गांवों के अहीरों की सेना थी । बीच में ककरुवा वाले हिम्मत सिंह एवं रणछोर घोसी के साथ भैरा, कुरौरा, छपरट, सिंदवाहा, महरौनी, पाली और बानपुर के ठाकुर; बानपुर, बीर, गुगरवारा और खोंकरा के खंगार तथा किसरदा और कुआगांव के घोसी थे ।

दोनों ओर से धाराप्रवाह गोली वर्षा होती रही । पेण्डर गौस्ट के पूरा प्रयत्न करने पर भी गोरी सेना घाटी में मार्ग न पा सकी । अंत में पेण्डर गौस्ट की ओर से लड़ने वाले सहरियों ने पहाड़ पर चढ़ने में सफलता पा ली तथा पहाड़ के ऊपर से वाण एवं गोली वर्षा आरंभ कर दी । सहरियों एवं गौड़ों को जंगलों में चलने और पहाड़ों पर चढ़ने का अच्छा अभ्यास था । मर्दन सिंह की सेना का कोई भी अंग इस संबंध में उनका मुकाबला नहीं कर सकता था । फिर भी उनके सैनिक हिम्मत नहीं हारे और लगातार ईंट का जवाब पत्थर से देते रहे । सेना युद्ध अपनी चरम सीमा पर था । मर्दन सिंह स्वयं घोड़े पर चढ़ अपने सैनिकों को उत्साहित कर रहे थे । जवाहर सिंह और हिम्मत सिंह भी अपने सैनिकों के साथ मोर्चे पर लगे थे । एक बार तो ठाकुरों ने अंग्रेजी सेना को बुरी तरह पीछे धकेल दिया तथा लौटकर अपना मोर्चा पुनः संभाल लिया ।

इक्कीस

मर्दन सिंह के सामने सबसे विकट समस्या सहरियों और गौड़ों को पहाड़ से उतारने की थी । उन्होंने अहीरों के एक दल को गौना की ओर से घूम कर पहाड़ियों पर चढ़ने तथा सहरियों पर पीछे से आक्रमण करने के लिए भेजा । वह दल जिसने लगभग 100 अश्वारोही थे । गौना ग्राम का चक्कर देकर सहरियों की सेना के पीछे पहुंच गया तथा उन्हें घेरने में सफल भी हो गया किन्तु इसी बीच एक गोली मर्दन सिंह को बाएं हाथ में लगी । यह देखकर हिम्मत सिंह क्रोध से पागल हो गया । उसने रणछोर घोषी से मर्दन सिंह को तुरंत सुरक्षित स्थान पर ले जाने के लिए कहा और स्वयं तलवार खींचकर अपने घुड़सवारों के साथ गोरों की सेना के बीच घुस बैठा । जवाहर सिंह और नाराहट वालों ने रोका भी किन्तु उसने नहीं सुना । उसने अपने साथियों से कहा कि जन्म लेकर मरना सभी को है आज इन फिरंगियों को लड़ाई का मजा चखाकर मरने के लिए बढ़ो । परवाह न करो । दूसरा जन्म भी तो मिलेगा । अगर इस जन्म में फिरंगियों को न निकाल पाए तो अगले जन्म में इनसे एक-एक खून का बदला लेंगे । उसने जवाहर सिंह से कहा कि तुम सुरक्षात्मक युद्ध करो । जब देख लो कि जीत संभव नहीं है तो अगले मोर्चे पर लड़ने की तैयारी करना ।

हिम्मत सिंह ने स्वयं मरने का निश्चय करके दोनों हाथों में तलवारें ले लीं और उन्मत्त होकर गोरों पर टूट पड़ा । उसके ऊपर एक साथ संगीनों के कई वार होते थे । पर वह सबकी अवहेलना करता । एक के बाद दूसरे शत्रु को काटता घूम रहा था जिस ओर वह जाता, गोरों की सेना भाग खड़ी होती । उसका शरीर लहू से तर तथा क्षत-विक्षत हो रहा था किन्तु उसका उत्साह मंद नहीं पड़ रहा था । उसके साथी कट-कट कर गिरते जाते थे किन्तु उसे कोई चिन्ता न थी उसे सिर्फ लड़ना था । उसकी तलवार तब तक नहीं रुकी, जब तक वह पूर्णतः निःशक्त होकर पृथ्वी पर नहीं गिर पड़ा ।

हिम्मत सिंह को मृत देखकर जवाहर सिंह जाखलौन वाले और नाराहट वाले जंगलों में अपने साथियों सहित भाग गए ।

पेण्डर गौस्ट ने घाटी में प्रवेश किया । वह आहत दीर्घ मृत विपक्षी सैनिकों एवं मृत सैनिकों के शवों को जूतों की ठोकर मार कर आगे बढ़ा । [38]

पेण्डर गौस्ट अपनी सेना को लिए हुए आगे बढ़ा । उसने गौना से आगे बढ़कर रात में विश्राम किया ।

प्रातःकाल होते ही पेण्डर गौस्ट की सेना ललितपुर की ओर बढ़ी। उसने दूसरा पड़ाव विरधा में डाला । तीसरे दिन अंग्रेजी सेना दोपहर से कुछ पहले घटवार और ललितपुर के बीच में सोकली नामक स्थान पर पहुंची । जहां सहसा झुनारे रावत ने 300 आदमियों सहित पेण्डर गौस्ट की सेना पर आक्रमण कर दिया । झुनारे रावत की टोली ने करीब एक घंटे तक जमकर लोहा लिया और अंग्रेजी सेना को पर्याप्त हानि पहुंचाकर शाहगढ़ नदी के किनारे के बीहड़ में, जिसमें उस समय सघन करौंदा की झाड़ियां और बबूल के पेड़ थे, लुप्त हो गए । इस मुठभेड़ में झुनारे रावत के करीब 50 आदमी खेत रहे जिसमें सामरे मिश्र तथा गुलाब सिंह परदान प्रमुख थे । अपने शेष सभी सैनिकों के निकल जाने के बाद झुनारे रावत भी नदी की ओर मुड़े । अंग्रेज सैनिकों ने उनका पीछा किया । जब उनका घोड़ा नही पार करने क` लिए उछलने वाला था, तब एक गोली लगने से वह गिर पड़ा । झुनारे रावत कं संभलने के पहले ही पेण्डर गौस्ट के सैनिकों ने उन्हें बंदी बना लिया । तत्पश्चात अंग्रेजी सेना ने ललितपुर नगर पर अधिकार कर लिया और ललितपुर को बुरी तरह लूटकर बर्बाद कर दिया । सारा नगर अंग्रेजी अत्याचार से त्राहि-त्राहि कर उठा ।

झुनारे रावत के पारिवारिक जन पहले ही ललितपुर छोड़कर अन्यत्र चले गए थे । खाली मकान की सारी संपत्ति लूट ली गई अथवा नष्ट कर दी गई और झुनारे रावत को उन्हीं के दरवाजे पर फांसी पर लटका दिया गया ।

दूसरी ओर ह्यूरोज मदनुपर से तेजी से आगे बढ़ा । उसने जलंधर पर अधिकार कर लिया । जलंधर वाले मलखान सिंह अपना परिवार लेकर पहले ही जंगलों में चले गए थे । अंग्रेजी सेना ने आगे बढ़कर मड़ावरा को लूटकर सैदपुर पर पड़ाव डाला ।

बाइस

मर्दन सिंह को महरौनी में अंग्रेजी सेना के सैदपुर आ जाने का समाचार मिला, वहीं स्टुअर्ट के आक्रमण ताकि चन्देरी में विद्रोही सेना की पराजय की भी सूचना मिली । यह भी ज्ञात हुआ कि उनका छोटा भाई चन्देरी युद्ध में बलिदान हो गया । इन खबरों से मर्दन सिंह को अत्यंत दुख हुआ किन्तु उत्साह में नाम मात्र की कमी नहीं हुई । उन्होंने अन्तिम दम तक लड़ने का निश्चय किया उनके घाव अभी भरे नहीं थे । अतः दीवान द्वारकादास तथा रणछोर घोसी ने उन्हें तुरंत तालबेहट जाकर विश्राम करने तथा वहीं अंतिम युद्ध करने की सम्मति दी । मर्दन सिंह को बानपुर की अधिक चिंता थी । रणछोर घोसी ने विश्वास दिलाया कि बानपुर में अंग्रेजी सेना को एक दाना भी अनाज का नहीं मिल सकेगा और वह लूट में कांच का टुकड़ा भी नहीं पा सकते ।

मर्दन सिंह अपने साथ खंगारों की एक सैनिक टुकड़ी तथा अपने भाई गजराज सिंह के साथ जामने पार करके सीधे पुरा-ककड़ारी, बार, सेरवास होते हुए तालबेहट पहुंच गए ।

दीवान द्वारकादास ने महरौनी तथा बानपुर में एक भी घर ऐसा नहीं रहने दिया; जिसमें एक भी मनुष्य, पशु, अन्न का दाना और पैसा बचा हो । सारे नगर निवासियों को अस्तौन तथा बानपुर से जामने पार के जंगलों में बसा दिया । यही नहीं उन्होंने महरौनी के सभी कुओं में विष घुलवा दिया । रणछोर घोसी अपने साथियों सहित पाली जखौरा होता हुआ सोजना की ओर चला गया । वहां उसने कुछ आदमी एकत्र किए ।

ह्यूरोज सैदपुर से कुम्हैड़ी होता हुआ महरौनी बेरोकटोक बढ़ता आया ह्यूरोज एक अनुभवी एवं कुशल सेनानायक था । उसने सैनिकों को कुएं का पानी न पीने की सख्त ताक़ीद कर दी । वहां से वह बानपुर की ओर बढ़ा । अंग्रेजी सेना पड़वां धवारी के पास जब पहुंची तब रणछोर घोषी ने एक भयानक छापा मारा । इस छापामार लड़ाई में ह्यूरोज की सेना का लगभग 8वां भाग क्षतिग्रस्त हो गया । रणछोर घोसी स्वयं इस युद्ध में घायल हो गया और वहां जमड़ार नदी के किनारे उसकी मृत्यु हो गई ।

ह्यूरोज जब बानपुर पहुंचा तो वहां मनुष्य और पशुओं की क्या; चिड़ियों तक की आवाज नहीं आ रही थी । सारा नगर सुनसान और वीरान नजर आ रहा था।

बानपुर एक रात रुककर ह्यूरोज तालबेहट की ओर चल पड़ा ।

ह्यूरोज ने डरा-धमका और बहला-फुसला कर बरी कलां खुर्द के ठाकुरों को अपनी ओर मिला लिया तथा आगे बढ़कर बम्हौरीसर पर डेरा डाला । वहीं ललितपुर से पेण्डर गौस्ट गोरों तथा गौड़ों-सहरियों की सेना लिए हुए ह्यूरोज की सेना से मिला।

ह्यूरोज ने सेरवास तथा रामपुर के ठाकुरों को भी संतुष्ट करके अपने पक्ष में मिला लिया।

दूसरी ओर तालबेहट के दुर्ग में मर्दन सिंह भी चुप नहीं थे । उन्होंने किलेदार पूरन सिंह सुनौरी वालों के सहयोग से पूरा कलां, सुनौरी, कड़ेसरा और चौबारे के ठाकुरों को इकट्ठा किया । सबने राजा के प्रति निष्ठावान रहने तथा प्राणपण से युद्ध करने की प्रतिज्ञा ली । मर्दन सिंह ने दलेल खां तोपची को पूर्ण सतर्क रहने का आदेश दे दिया।

ह्यूरोज ने दो दिन की तैयारी के बाद किले पर गोलाबारी आरंभ कर दी । किले से दलेल खां ने धुंआधार गोलाबारी की । 15 फरवरी को दोनों ओर से जमकर तोप युद्ध होता रहा । किले की तोपों की मार से अंग्रेजी सेना को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। ह्यूरोज ने समझ लिया कि युद्ध की यदि यही गति रही तो उसकी सेना तीन दिन भी नहीं ठहरेगी । उसने तालबेहट के नागरिकों से किले का रहस्य जानने का प्रयत्न किया । ओरछा के दीवान नत्थे खां के पत्र के माध्यम से ह्यूरोज ने एक व्यक्ति ब जलाल पटवारी से संपर्क स्थापित किया बृजलाल पटवारी मर्दन सिंह के यहां नौकर था । वह रुपये के लोभ में आ गया । उसने बल्लभ तिवारी को बातों-बातों में ही किले का रहस्य बताने के लिए तैयार कर लिया । गोस्वामी परिवार से भी तालबेहट के किले की भीतरी बातें ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया किन्तु सफलता नहीं मिली।

बल्लभ तिवारी से यह ज्ञात करके कि किले का दक्षिणी पश्चिमी भाग कमजोर है; ह्यूरोज ने अपनी सेना का अत्यधिक जोर उसी ओर लगा दिया तथा किले पर अनवरत गोलबारी आरंभ कर दी। अब दुर्ग रक्षक यह समझ गए कि शत्रु ने दुर्ग का कमजोर भाग पा लिया है और अब दुर्ग की रक्षा असंभव है । अतः उन्होंने मर्दन सिंह को सारी स्थिति बताकर सम्मति दी कि जब तक किले पर युद्ध होता है, वे डोंगियों से तालाब के पूर्वी किनारे पर खांदी के पास उतरकर झांसी की ओर चले जाएं वहां से वे सरलतापूर्वक तात्या टोपे और नाना साहब की सेना से मिल सकेंगे। वहीं उनके तितर-बितर हुए सब सैनिक पहुंच जाएंगे।

मर्दन सिंह के घाव अभी पूर्णतः भरे नहीं थे तथा वे स्वयं युद्ध करने की स्थिति में नहीं थे । अतः उन्होंने वही किया जो उन्हें सम्मति दी गई थी । उनके साथ उनके दो रक्षक गिरवर सिंह और जोरावर सिंह थे।

खांदी से निकलकर वे बंदूसेरा के बीहड़ में छिपकर निकलने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे ।

दूसरी ओर अंग्रेजी सेना की भयंकर गोलाबारी के फलस्वरूप सूर्यास्त से पूर्व किले की दक्षिणी पश्चिमी दीवार टूटकर गिर पड़ी । अंग्रेजी सेना किले में प्रवेश कर गई । किले में स्थित सेना ने एक-एक इंच भूमि के लिए घमासान युद्ध किया । ह्यूरोज को शवों के अतिरिक्त गोस्वामी बंधु ;गनपत, गोविन्द और गोपाल, जो दुर्ग में स्थित न सिंह मंदिर के पुजारी थे, ही जीवित मिले । इन लोगों को बंदी बना लिया तथा उनसे मर्दन सिंह का पता ठिकाना पूछा ।

गोस्वामी बंधुओं ने यह तो स्वीकार किया कि उन्हें मर्दन सिंह के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान है किन्तु उन्होंने किसी भी दशा में उनके संबंध में कोई भी सूचना देने से स्पष्ट इंकार कर दिया । जब सब प्रकार के प्रलोभन एवं प्रताड़नाएं भी उन लोगों से कोई सूचना प्राप्त करने में पूर्णतः असफल रही तो तीनों भाइयों को बरगद के पेड़ पर गले फांस कर लटका दिया गया उन तीनों के शरीर उस बटाक्ष पर महीनों लटके रहे। [39]

तेइस

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने मर्दन सिंह को एक पत्र युद्ध में सहायता करने के लिए लिखा जो अब भी मर्दन सिंह के वंशजों के पास सुरक्षित है । इस पत्र में रानी ने अपनी सहायता करने के लिए लिखा था कि स्वराज्य स्थापना के लिए उन जैसे वीरों की आवश्यकता प्रत्येक स्थान पर है । इस पत्र में 'स्वराज्य' का शब्द आया है।

18 मार्च 1858 को मर्दन सिंह बंदेसरा से बेतवा पार करने के विचार से झरर घाट की ओर चले । उनके साथ गजराज सिंह और जोरावर सिंह थे । तीनों व्यक्ति घोड़ों पर सवार थे । ह्यूरोज ने अपनी सेना का एक दल मेजर ओर की अध्यक्षता में अलग से लगा दिया था जिससे ये लोग बेतवा पार न हो सकें।

मर्दन सिंह और बखतबली तात्या टोपे की सहायता के लिए जंगल के रास्ते चरखारी जा पहुंचे जहां के अंग्रेज मित्र राजा रतन सिंह को ये लोग पराजित कर कालपी जा पहुंचे । 21 मार्च 1858 को जब ह्यूरोज की सेना ने झांसी के किले को घेर लिया तो रानी लक्ष्मीबाई ने तात्याटोपे को भी पेशवा की सेना लेकर झांसी पहुंचने के लिए लिखा।

1 अप्रैल को झांसी पहुंचकर विशाल सेना के साथ मर्दन सिंह ने ह्यूरोज की सेना पर आक्रमण कर दिया ।[40] किन्तु ह्यूरोज ने पहाड़ियो के सहारे ऐसी सुगठित मोर्चाबंदी कर रखी थी कि उसकी गोलियों से विद्रोही सेना को भागना पड़ा।

तात्या टोपे वाया भांडेर, कोंच कालपी पहुंचे । मर्दन सिंह और बखतबली बेतवा तट पर स्थित कोटरा ग्राम में रह गए । वहां इनका मेजर 'ओर' की सेना से युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेजी सेना परास्त हुई ।

ह्यूरोज 25 अप्रैल को झांसी से आगे बढ़कर कालपी की ओर चला । ह्यूरोज से दो-दो हाथ करने के लिए उरई पर मर्दन सिंह थे । यहां उनका अंग्रेजी सेना से भयंकर युद्ध हुआ किन्तु मर्दन सिंह का पीछा करती मेजर ओर की सेना के युद्ध कौशल के व्यूह में मर्दन सिंह फंस गए । उनकी सेना की भारी क्षति हो गई । बखतबली और उनकी सेना का भी यही हुआ । ह्यूरोज की सेना आगे बढ़ गई और ये दोनों राजा पीछ रह गए पेशवा नाना साहब और रानी लक्ष्मीबाई से संपर्क कट गया । अंग्रेजी सेना के बीच में आ जाने से मर्दन सिंह को विद्रोही सेना के प्रमुख दल से मिलने के लिए बची हुई सेना ललितपुर लौटने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया था । ललितपुर आकर ग्वालियर जाने के लिए विद्रोहियों का पुनः संगठन करने लगे ।

चौबीस

24 मई 1858 को मर्दन सिंह ह्यूरोज से परास्त हुए । रानी लक्ष्मीबाई ने उसका सामना किया किन्तु उन्होंने कालपी छोड़कर ग्वालियर के सिंधिया से सहायता लेने की योजना बनाई और अपनी सेना को लेकर मुरार की ओर प्रयाण कर दिया । तात्या टोपे भी यहां आ गए । अंग्रेजों के परम मित्र सिंधिया ने सहायता करना तो दूर विद्रोहियों के विरुद्ध ही अपना मोर्चा खोल दिया किन्तु विद्रोहियों ने सिंधिया की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया । सिंधिया ने आगरा जाकर अपने प्राण बचाए ।

विद्रोही सेना की इस विजय से मर्दन सिंह और बखतबली को सूचित करते हुए मुरार पहुंचने के लिए 2 जून 1858 को रानी लक्ष्मीबाई ने पत्र लिखे । मर्दन सिंह का मार्ग संकग्रस्त था । मुरार के रास्ते में दतिया आड़े आ रहा था । वहां का राजा मर्दन सिंह की वंश परंपरा का था किन्तु अप्रैल 1857 में रानी लक्ष्मीबाई के झांसी छोड़ने पर इस राजा ने रानी के पिता मोरोपन्त को गिरफ्तार करके अंग्रेजों से अपनी मित्रता का निर्वाह किया था । इसीलिए अंग्रेजों को अगर 'झांसी गले की फांसी' थी तो 'दतिया गले का हार' ।

मर्दन सिंह ने राजा दतिया को विद्रोहियों को किसी प्रकार की बाधा न डालने के लिए लिखा और मुरार के लिए प्रस्थान कर दिए । किन्तु इससे पहले ही ह्यूरोज ने मुरार पर अपना अधिकार कर लिया था अतः वे पुनः ललितपुर वापस आ गए ।

दतिया नरेश देसी राजाओं से अंग्रेजों से संधि करने की सलाह दे रहे थे। मोहम्मद अली द्वारा शिकरमों में जून 1857 के सिपाही विद्रोह के समय लाए गए जिन अंग्रेज परिवारों को मर्दन सिंह ने अभय दान देकर उसकी इच्छानुसार टीकमगढ़ भेजा था । उनमें से एक एफ.ए. स्काट मुख्य थे । इसी स्काट ने 19 सितंबर 1858 को मर्दन सिंह की सिफारिश में हैमिल्टन और तीन अन्य अंग्रेज अधिकारियों के पास भेजे गए पत्रों का हवाला देते हुए मर्दन सिंह को एक पत्र लिखकर अपने घोड़े और उंटनी का पता लगाने की प्रार्थना की इससे राजा को विश्वास हो गया कि अब अंग्रेजी सरकार उन्हें विद्रोही न मानेगी ।

इससे पूर्व 5 सितंबर को हैमिल्टन के स्थानापन्न शेक्सपियर ने मर्दन सिंह को लिखे संदेश पत्र में कहा कि आगरा पहुंच कर सब काम ठीक हो जाएगा मर्दन सिंह बखतबली सहित ग्वालियर को चले किन्तु मार्ग में मुरार में ये दोनों राजा 28 सितंबर 1858 को गिरफ्तार कर लिए गए इन लोगों को लाहौर में नजरबंद किया गया। जहां से वह कुछ दिनों आगरा में पुलिस निगरानी में रहे ।

बाद में वे वृन्दावन के एक उपवन में साढ़े पांच वर्ष तक राधा कृ:ण की लीलाभूमि में पुलिस अभिरक्षा में शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए 22 जुलाई 1879 को कालकवलित हो गए ।

सन्दर्भ स्रोत

1. रजवाड़ा के दिवंगत राव छत्रपति सिंह ने उनके कुल का चन्देरी राजवंश से विरोध के जो कारण बताए थे उनके आधार पर यह विवरण दिया गया है । इसके अतिरिक्त चन्देरी में यह दोहा प्रचलित है:

खिलचीपुर को बानिया रजवारे को राव
गई चन्देरी जानिए सुन बेटा दरयाव ।।

2. करनल जान वतीस

फौज फिरंगन की लएं आ गओ जान वतीस । टेटा के मौंरा मरे बुन्देले चौंतीस ।। जनश्रुति

3. पंचम महल वाली घटना ग्राम सिरसौदा, कनावटा एवं जाखलौन के ग्रामीणों द्वारा दिए गए विवरण के आधार पर है ।

4. किसी-किसी वंशावली में रणधीर सिंह तथा किसी में धीरज सिंह नाम दिया हुआ है । गदयाना जागीर के कुर्सीनामा में धीरज सिंह तथा चन्देरी में देखी गई वंशावली में रणधीर सिंह नाम मिलता है ।

5. बार से प्राप्त सूचनानुसार इस फ्रांसीसी का नाम अलेक्जेण्डर मिलता है किन्तु जरया वाले फ्रांसीसी उस फ्रांसीसी शिक्षक का नाम विलियम बताते हैं ।

6. यह विवरण मोदप्रहलाद के पुरोहित के वंशज पं0 रामरतन पुरोहित द्वारा प्रसिद्ध साहित्यकार कृष्णानन्द हुण्डैत को दिया गया था, वहां से लेखक को प्राप्त हुआ है।

7. जिस समय की ये घटना है ओरछा राज्य में लड़ई रानी तथा पूर्व ओरछा नरेश के भतीजे में ओरछा गद्दी के लिए खींचतान चल रही थी । पुरोहित परिवार ओरछा नरेश द्वारा मध्यस्थता करना बताता है किन्तु लेखक का अनुमान है कि यह मध्यस्थता या तो स्वयं लड़ई रानी ने की थी या उनके दीवान नत्थे खाँ ने की थी।

8. उक्ति प्रसिद्ध है

पुरा सौन की खान

राजा जाने और सुजान ।

9. खिमलासा में सवा मन सोना और अकूत चाँदी लूटी गयी - जनश्रुति

10. रणछोर घोषी के मर्दन सिंह के संपर्क में आने की घटना का विवरण रणछोर घोषी के वंशजों से प्राप्त हुआ । इसी विवरण को श्री भवानी सिंह बैस महरौनी ने भी सत्यापित किया ।

11. खाडू का टाँड़ा - रेलवे लाइन से पहले व्यापारी बैलों पर नमक, चीनी, गुड़, कपड़ा इत्यादि वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर व्यवसाय के लिए ले जाते थे। इन बैलों के समूह को खाडू का टाँड़ा कहा जाता था ।

12. बखतबली के पूर्वजों को शाहगढ़ का राज्य ओरछा से विरासत में मिला था। मूलतःबखतबली इतिहास प्रसिद्ध बलिदानी हरदौल के वंशज थे । गौना, नाराहट, गुढ़ा बुजुर्ग, डोगरा, जमुनिया के बुन्देले उसी परिवार से संबंधित थे ।

13. मर्दन सिंह का दस्यु विरोधी अभियान बहुचर्चित है । विरधा पर झुनारे रावत की भेंट की घटना तथा उनकी मध्यस्थता में मर्दन सिंह तथा बखतबली के मध्य गौना नामक ग्राम में मैत्री स्थापना के संबंध में श्री कृष्णानन्द हुण्डैत को श्रद्धेय सिंहपुर वाली रावत, जो झुनारे रावत की पुत्रवधू थी, को उनके बाल्यकाल में बतलाई थी । इसका सत्यापन श्रद्धेय स्व0 नर्मदा प्रसाद मिश्र अटा ने भी किया था । विरधा के चौबों के सूत्रों से इस घटना का प्रामाणिक होना पाया गया ।

14. इस पत्र की प्रतिलिपि जो फारसी में लेखक को बूचा-अँधियारी के एक ग्रामीण के कागजों में मिली थी लेखक को फारसी का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण उसने उसे एक फारसीविद महानुभाव से पढ़वाकर उसकी प्रतिलिपि स्वयं के पास रखनी चाही किन्तु पत्रों के मालिक को कुछ संदेह सा हो गया । फलतः उसने प्रतिलिपि नहीं लेने दी । पत्र लेखक के रूप में द्वारका प्रसाद के हस्ताक्षर मिले तथा तिथि थी मिती अगहन वदी 3 संवत् 1...।

15. आजकल जिस प्रकार सर्कसों में तार कसकर उन पर अनेक प्रकार के खेल दिखाए जाते हैं । उसी प्रकार के खेल ये लोग रस्सों पर दिखलाते थे । हां उनके पास संतुलन छतरियां नहीं रहती थीं ।

16. इस घटना का पूर्ण विवरण ककरुवा वाले हिम्मत सिंह के वंशज श्री बलवंत सिंह उर्फ बल्देव सिंह, ने हुण्डैत जी को दिया था।

17. इस घटना के संबंध में निम्नलिखित पत्र देखने को मिला है :-

सिद्ध श्री सर्वोपमालायक सकल सुखदायक बुन्देला कुल सिरोमन श्री श्री महाराज श्री 108 श्री मर्दन सिंह जू देव चन्देरी मण्डल अधिपति महा सुभ स्थाने बानपुर विराजमान जो गेहे श्री कुं0 हिम्मत सिंह जू देव की सुभ स्थान ककरुवा से अनेकन बेर मुजरा जुहार पौंचे । आगे समाचार जौ है कै हुकम मुताबिक परौं रात के ललतपुर में गुआलियर वारन की फौजन पै हल्ला दओ । पैला नटन के तमासे दिया मिलकबे पाछे भए ता पाछें जबै सबई तमासो देखबे वारे सुद-बुद भूले खेल देखत रए। तबई खिलईया जौन ज्योरा बांसन सें बंदो तौ वा सें गिर परो अर मुरजानो सो भौं पै डर रओ। लोगन नै जानी कै जौ मरतै आ है सो सबै दौर परे। तबै अपन के सिपाईंयन ने हल्ला दओ । मौका पाकैं खंगारन ने मसालें सीयरीं कर दईं ती सों अंदयारौ सो हो गओ तो भगवान की किरपा सें और श्री महाराज जू देव विराजमान बानपुर के पुन्न परताप सें भली भई सो जानवी लिखी सांवरे की ।

दसकत सिरी कुंवर हिम्मत सिंग जू देव के मिती फागुन वदी 10 संवत् 1911 वि0 (मिती के अंक अपठनीय हैं)

18. राजा जू बबेले के वंशज अभी ....में रहते हैं । बबेले परिवार अत्यंत समृद्धिशाली रहा है किन्तु वर्तमान में स्थिति अच्छी नहीं है ।

19. पिनके ने अपनी रिपोर्ट मे कैप्टन गॉर्डन को चन्देरी का डिप्टी कलेक्टर लिखा है, यह ग़लत है क्योंकि चन्देरी कभी भी अंग्रेजी शासन में नहीं रहा । पिनके एक स्थान पर कैप्टन गॉर्डन को झांसी का डी.एस.पी. लिखता है तो दूसरे स्थान पर चन्देरी का डिप्टी कलक्टर ।

गॉर्डन नामक व्यक्ति के संबंध में अंग्रेजी लेखकों ने भ्रम में डाल दिया है। पिनके ने अपनी रिपोर्ट के अनुच्छेद 59 में गॉर्डन द्वारा बानपुर के राजा को लिखा बताया है कि डकैती, रक्तपात तथा सिपाही विद्रोह करने में असमर्थ हूं । अतः मैंने इसका भार बानपुर के राजा को सौंप दिया । मैं अपने धर्म के अनुसार शपथपूर्वक कहता हूं कि मैंने स्वेच्छा से इसे लिखा। इस जिले में जो भी ब्रिटिश सेना आए उसे बानपुर के राजा की सहायता करनी चाहिए, गार्डन ने यह 14 जून 1857 को लिखा।

पिनके के अनुसार यह लेख बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने गॉर्डन को मजबूर करके लिखा लिया था किन्तु परिस्थितियों एवं अन्य सूत्रों के अनुसार 14 जून 1857 को गार्डन को शिवरामदास के मकान में छिपा होना पाया जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि गॉर्डन ने परिस्थितियों से

विवश होकर तथा अंग्रेजों की प्राण रक्षार्थ आश्रय पाने के लिए बानपुर पहुंचने से पूर्व ही बानपुर के राजा मर्दन सिंह को यह लिखकर भेज दिया होगा।

दूसरी ओर थ्वतमपहद च्वसपजपवंस ब्वदेनसजंजपवद की संख्या 283 दिसम्बर 30 1859 ; क्कपजपवदंसद्ध में लिखा है कि 6 जून को कैप्टन गॉर्डन डिप्टी सुपरिण्टेण्डेंट झांसी ने मेजर आर्स्किन ; तोपदद्ध और किसी अन्य मेजर को लिखा कि 'स्कीन की प्रार्थना पर मैं तुम्हें कुछ पंक्तियों यह बताने के लिए भेज रहा हूं कि 12वीं देसी पैदल सेना के एक भाग ने छावनी में खुला विद्रोह कर दिया है तथा किले को , जिसमें बारूदखाना है, ले लिया है । उन्होंने सारा खजाना भी हथिया लिया है । खजाने में लगभग 45000 रुपये हैं । तोपखाने के लोग भी उसमें सम्मिलित हो गए हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि या तो गॉर्डन वंशी दो व्यक्तियों ;एक ललितपुर में तथा दूसरा झांसी में अथवा अंग्रेजों द्वारा विद्रोह के संबंध में दिया गया विवरण संदिग्ध है। किसी भी अंग्रेज लेखक ने विद्रोह का विवरण निष्पक्ष होकर नहीं किया ।

20. शिकरम एक प्रकार की बैलगाड़ी होती थी जिसमें यात्रा में जिस सामान की आवश्यकता संभव होती थी वह नीचे के भाग में रख लिया जाता था । गाड़ी के ऊपरी भाग में बैठने का स्थान होता था ।

21. पिनके ने अपनी रिपोर्ट में पृष्ठ संख्या 11 में यह स्वीकार किया है कि 12 जून 1857 में ललितपुर में विद्रोह होने पर बानपुर के राजा को एक कामदार मुहम्मद अली ने अंग्रेजों की पूर्ण सहायता की थी ।

22. गॉर्डन का अनुमान था कि टेहरी (ओरछा) तथा बानपुर के अधिकारियों ने उनके (अंग्रेजों) विनाश की योजना बना ली थी (देखिए पिनके की रिपोर्ट पृष्ठ 11 पर अनुच्छेद 61)। वस्तुतः यह अवसर पाने पर बानपुर और ओरछा राज्यों द्वारा अंग्रेजों के प्रति किए गए अनुग्रह पर पानी फेरकर भविष्य में अवसर पाते ही उन्हें छीन लेने का कारण बना दिया।

23. पिनके ने अपनी रिपोर्ट में यह सच्चाई स्वीकार की है ।

24. ललितपुर की अराजकता समाप्त करने के संबंध में दीवान द्वारकादास के वंशजों ने बताया है जो अंग्रेज लेखक भी लिखते हैं कि मर्दन सिंह ललितपुर के विद्रोहियों से लड़े किन्तु यथार्थतः ललितपुर में विद्रोही नहीं अराजक तत्व थे ।

25. मदनपुर और जालंधर के जागीरदार लोधी बिरादरी के थे । मदनपुर जागीर में 132 गांव थे । जालंधर जागीर में जालंधर, बहादुरपुर, कवराटा, सौंरई तथा बम्हौरी गांव थे । सन् 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम के उपरान्त मदनपुर जागीर समाप्त कर दी गई । पारिवारिक भरण पोषण के केवल मदनपुर गांव इन लोगों के लिए रहने दिया गया।

26. शंकरशाह को अंग्रेज इतिहासकार गोंडवाने में उत्पन्न राजा बताते हैं (देखिए मैलेसन की पुस्तक संख्या 2 पृष्ठ 133) किन्तु बुन्देलों की वंशावली के अनुसार शंकरशाह बुन्देला वंशी हैं । रुद्रप्रताप ने अपने पुत्र भूपतशाह को गढ़ाकोटा जागीर में दिया था ।

27. श्री श्रवण कुमार त्रिपाठी की खोज के अनसार राहतगढ़ रामशाह के वंशज भावगढ़ के जागीरदार के अधिकार में था । मोदप्रहलाद के चन्देरी के परित्याग के बाद लूट के धन का बंटवारा सिंधिया और अंग्रेजों के बीच हुआ । बंटवारे के अनुसार राहतगढ़ अंग्रेजों को मिल गया था । राहतगढ़ एक बहुत अच्छा दुर्ग था जिसे अंग्रेजों ने अपनी सेना का प्रमुख केन्द्र बनाया था ।

28. 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की समाप्ति के बाद ढाना के तिवारी को 52 गांव जागीर में दिए गए थे ।

29. धुरमंगल तत्कालीन परिस्थिति में अंग्रेजों के विरुद्ध मर्दन सिंह की ओर से युद्ध करना उचित नहीं समझते थे ।

30. गौना की इस पंचायत के संबंध में पटना वाले दुबे एवं ककरुवा वाले बल्देवसिंह ने बताया ।

31. अंग्रेज लेखकों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि विद्रोहियों ने विद्रोह का कारण राजच्युत करना और उसके लड़के को फांसी देना घोषित किया था ।

32. धोकल सिंह और जुझार सिंह की वीरता की संबंध में उक्ति है

राहतगढ़ के नार दो धोकल और जुझार ।
काट फिरंगन के कटक फौजें लई निकार ।।
प्रान दए मैदान में पै राखी ती आन ।
धन्न मताई जौन को दूद करौ तो पान ।।

33. राहतगढ़ पर मर्दन सिंह के इस आक्रमण के संबंध में ली ने अपने ग्रंथ के पृष्ठ संख्या 186-187 पर लिखा है कि बानपुर के राजा का आक्रमण पूर्ण सुनियोजित था ।

34. अंग्रेज लेखकों ने बरौदिया के युद्ध में अंग्रेजों को विजय प्राप्त होना बताया है यदि वास्तव में ह्यूरोज को विजय प्राप्त हुई होती तो सागर गोरी सेनाओं को वापिस ले आने का कोई कारण नहीं बनता । यही नहीं बरौदिया का युद्ध 5 फरवरी को होने के उपरान्त फरवरी के अंत तक अंग्रेजी सेनाएं सागर में पड़ी रहीं और उत्तर की ओर नहीं बढ़ीं । इससे स्पष्ट है कि बरौदिया के युद्ध में अंग्रेजी सेना की इतनी अधिक हानि हुई कि वह लगभग बीस दिनों तक सामने खड़े शत्रु पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकी ।

बरौदिया युद्ध का विवरण दीवान मलखान सिंह जालंधर वालों के वंशज शिवराज सिंह सैदपुर, महरौनी के घोसियों, बिरारी व पुरा-पाचौनी के ठाकुरों और बल्देव सिंह उर्फ बलवंत सिंह ककरुवा वालों द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर है ।

35. मदनपुर एवं जालंधर वालों का कथन है कि बखतबली और मर्दन सिंह दोनों मदनपुर घाटी पर रहकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े । महरौनी के बैसवंशी श्री भवानी सिंह का भी यही कहना है । किन्तु ककरुवा वाले हिम्मत सिंह के प्रपौत्र श्री बलवंत सिंह बताते हैं कि मर्दन सिंह उनके प्रपितामह हिम्मत सिंह के साथ अमझरा घाटी पर युद्ध में सम्मिलित रहे । अंग्रेज लेखकों ने भी कहा है कि अमझरा घाटी को मर्दन सिंह रोके हुए थे ।

36. श्री श्रवण कुमार त्रिपाठी के मतानुसार अमझरा तथा मदनपुर पर आक्रमण करते समय ओरछा का दीवान नत्थे खां अंग्रेजों के साथ था, यह सत्य प्रतीत नहीं होता है । उन्होंने अमझरा पर मर्दन सिंह के साथ आमापानी के नवाब का होना भी बताया है किन्तु यह भी निराधार ही है ।

37. श्री श्रवण कुमार त्रिपाठी बृजलाल पटवारी तालबेहट को मर्दन सिंह का गुप्तचर बताते है । उन्होंने बताया है कि बृजलाल इस युद्ध के पूर्व अंग्रेजों के पक्ष में हो गया था, यह भी निराधार ही है क्योंकि बृजलाल का ह्यूरोज से प्रथम मिलन बरी कलां पर हुआ

38. राहतगढ़, मदनपुर और अमझरा घाटी के युद्धों का विवरण दीवान शिवराज सिंह सैदपुर, महरौनी के बैसवंशी श्री ठाकुर भवानीसिंह, धोकल सिंह के वंशज हाकिम सिंह, पाली वाले ठाकुर कुजन सिंह, ककरुवा वाले हिम्मत सिंह के पौत्र बलवंत सिंह, बाजूरा दुबे पटना वालों के वंशज दुबे परिवार तथा संबंधित क्षेत्र में प्रचलित जनश्रुतियों पर आधारित हैं । श्री बल्देव सिंह के पुराने कागजों में एक सड़ा- गला कागज का टुकड़ा मिला । जिससे एक छन्द की दो पंक्तियां, जो उनके पूर्वज हिम्मत सिंह बुन्देला की वीरता वर्णन में किसी अज्ञात कवि द्वारा लिखी गई होगीं, मिली हैं -

जूझ की उमंग भरो
बीरन के गोलन पै
गोली बनो जात है। लेखक पूरे छन्द की खोज में है ।

39. तालबेहट के किला टूटने की घटना वहां बहुचर्चित है । यह विवरण मर्दन सिंह के पुरोहित वंशज पं0 रामरतन पुरोहित द्वारा श्री कृष्णानन्द हृण्डैत को दिया गया। गोस्वामी बंधुओं के वंशज आज भी तालबेहट में हैं । गोस्वामियों का परिवार एक सम्मानित परिवार है इसी परिवार के आदरणीय पं0 सुदामा प्रसाद गोस्वामी उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे हैं । किलेदार पूरन सिंह के वंशज सुनौरी में निवास करते हैं ।

40. मर्दन सिंह की इस आक्रामकता और स्वदेश प्रेम को देखकर ही कर्नल सी.बी.मैलेसन सी. एस. आई. को लिखना पड़ा।

"The Rajah of Banpur and others of lesser note boldly asserted their independence."

-ग्राम-छिल्ला (बानपुर), ललितपुर

इतिहास और पुराणों का नगर : बानपुर

– पं0 बाबूलाल द्विवेदी [1]

भगवान शिव के बारह – सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकाल, ओंकारेश्वर, केदारनाथ, भीमशंकर, विश्वनाथ, त्र्यंबकेश्वर, वैद्यनाथ, नागेश, रामेश्वर और घुश्मेश्वर – ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध हैं। इन्दौर में मांधाता पर्व पर नर्मदा नदी के उत्तर नट पर ओंकारेश्वर महादेव स्थित हैं। लोकमतानुसार एक बार विंध्य पर्वत ने नदी के दक्षिण तट पर पार्थिवार्चन सहित 6 माह तक आराधन किया और वही ओंकारेश्वर द्विधात्मक रूप अमरेश्वर या अमलेश्वर नाम से विख्यात हुए। ये दोनों ओंकारेश्वर और अमरेश्वर वस्तुतः पृथक-पृथक विग्रह होते हुए भी एक ही माने जाते हैं इसी प्रकार उत्तराखण्ड में हिमालय के केदार श्रृंग पर भगवान नर-नारायण की आराधना से प्रकटे स्वयंभू भगवान केदारनाथ हैं।

केदारनाथ से दक्षिण में एक सौ किलोमीटर स्वामी कार्तिक की जन्म स्थली के रूप में मान्य रुद्रपुर नगर है। इसी स्थान पर दानवेन्द्र बलि के ज्येष्ठ पुत्र बाणासुर का जन्म हुआ। जिसने अपनी तपस्या से भगवान शिव (केदारनाथ) को प्रसन्न कर अपनी अभिलाषा – बहुत सुन्दर, विपुल बाहुओं से युक्त वीर बनकर सदैव शिव के समीप ही विहार करूं; मां पार्वती का पुत्र कहाऊँ; मेरी ध्वजा मयूरांकित हो और अजर-अमर हो सकूं – के अनुसार एक सहस्र भुजाएं वरदान में प्राप्त कीं।

'भुजाओं का भार ब्यर्थ ही मुझे कब तक ढोते रहना पड़ेगा ।' बाण के इस विचार को समझ भगवान ने उसे मयूरांकित ध्वजा देते हुए आश्वस्त किया कि जाओ यह जिस समय स्वतः नीचे गिर जाएगी, उसी समय तुम्हें एक युद्ध करना होगा; जिसमें तुम पराजित होगे । बाण ने ध्वजा को रुद्रपुर में स्थापित कर दिया । वहां देवराज इन्द्र ने अपने वज्राघात से शत-सहस्र धारा युक्त रुधिरव:र्ण किया, तभी से इस नगर का नाम रुधिरपुर/शोणितपुर हो गया। यही कालान्तर में प्रयत्नलाघव अर्थात् मुख-सुख से रुद्रपुर कहलाया जाने लगा। यह उत्तराखण्ड में हिमालय पर्वत की केदार उपत्यका में मंदाकिनी के पश्चिम तट पर स्थित ज्योतिर्लिंग के समीप का एक नगर है

भगवान शिव द्वारा प्रदत्त ध्वजा की रक्षा करता हुआ बाण अपनी माता कोटरा; पत्नी लोहिती; पुत्रों – पुर, इन्द्र दमन आदि तथा मंत्री कुंभनाथ (कुंभाण्ड) को साथ लेकर 3140 ई0पू0 आज से लगभग 5143 वर्ष पहले मध्य देश में जैमिनी (जामनी) नदी के तट पर आया। यहां उसने अपने नाम का नगर बसाकर ध्वजा को स्थापित किया। यही स्थान वर्तमान में बानपुर के नाम से प्रसिद्ध है। बुंदेलखण्ड माहात्म्य' में स्वामी रामकष्ण भारती अवधूत जी महाराज – जो बानपुर में खेरापति हनुमान जी के मंदिर पर कई वर्षों तक रहे – ने लोकप्रचलित मान्यता एवं भग्नावशेषों के आधार पर बुंदेलखण्ड को दैत्यभूमि माना है। उन्होंने दैत्यराज हिरण्यकशिपु की राजधानी एरच तहसील मोंठ जिला झांसी को माना है। उनके अनुसार प्रहलाद पुत्र विरोचन ने अपनी राजधानी मुक्ता नगर वर्तमान मूसानगर बनाई और विरोचन पौत्र बलि के शतनंदनों में से एक बाण ने शोणितपुर के साथ-साथ अपने नाम पर मध्य देश में बानपुर का निर्माण किया।

इस नगर का निर्माण वास्तु शास्त्र के आधार पर हुआ था। कैलाश कुल के अनुसार विश्वकर्मा द्वारा दस अंगों – प्राकार, वप्र, द्वार, अट्टालक, महामंथ, प्रासाद, आपण, पुष्करिणी, संथागार एवं कोषागार – से युक्त कराया गया, किन्तु प्रासाद में कुछ भूलें रह ही गईं ।

किसी भी ऐतिहासिक कृति के काल निर्धारण हेतु वेद-पुराण, इतिहास-ग्रंथ, पुरातत्व-शिलालेख हमारे लिए साक्ष्य और स्रोत बनते हैं। किन्तु विडंबनाजनक यह है कि पुराण एवं इतिहास में वर्णित तथ्यों में साम्यता नहीं है। ऐसे में दृश्य और श्रव्य जनश्रुतियों की भी अनदेखी नहीं की जा सकती है । इनके आधार पर उपलब्ध साक्ष्यों से तथ्य जुटाए जा सकते हैं। जैसा डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी द्वारा संपादित 'बुंदेलखण्ड की विरासत – ओरछा' में भी कहा गया है ''लोकमन में लोकरंगों से लोककथाएं जन्म लेती हैं। लोक और लोकरंजन के लिए लोकचित्रों का अंतर्सम्बंध होता है ।'' अस्तु

बाणासुर पार्थिव पूजन करते समय प्रतिदिन पांच सौ अंजलि जलाभिषेक किया करता था तब उस समय जामनी नदी का प्रवाह रुक जाने से आने-जाने का मार्ग बन जाता था। अतः वह स्थान जामनी नदी में स्थित बाणाघाट के नाम से इस अंचल में प्रख्यात हुआ।

---

[1] लेखक की जिज्ञासु एवं स्वाध्यायी प्रवृति के बल पर अर्जित ज्ञान को देखकर बुद्धिजीवी आपकी प्रतिभाजन्य वक्तृता और व्यक्तित्व का लोहा मानने को विवश हो जाते हैं । आपका जन्म 10 मई 1947 को बानपुर के निकटस्थ ग्राम खिरिया मिश्र (छिल्ला) में एक साधारण परिवार में हुआ था । आयुर्वेद, पुराण, इतिहास, बुन्देली, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तथा संस्कृत साहित्य में समान अभिरुचि तथा हस्तक्षेप रखते हुए आपने अनेक शोध आलेख, लघु पुस्तिकाएं, कर्मकाण्डीय ग्रंथ, काव्य, संस्कृत अनुवाद, आकाशवाणी वार्ताएं तथा बुन्देली लोक साहित्य हिन्दी पाठकों को देकर उपकृत किया है । – संपादक

जिस प्रकार विंध्य पर्वत की अर्चना से अमलेश्वर ज्योतिर्लिंग प्रकट हुए थे । उसी प्रकार भगवान केदारनाथ के परम भक्त बाण की अर्चा से भगवान शिव संतुष्ट होकर स्वयंभू ज्योतिर्लिंग के रूप में यमविड़ार (जमड़ार) नदी के तट पर प्रकट हुए । जिन्हें कूंड़ादेव कहा गया । हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार-पत्रकार पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा इस नाम को परिष्कृत करते हुए कुण्डेश्वर नाम दिया गया । यमविड़ार और जामनी नदी का जहां संगम हुआ है, वह स्थान आज अजयपार के नाम से जाना जाता है । अजयपार (अजय अपार ह्रद - अजयपार की दहर) में जमड़ार और जामनी नदी के मध्य के एक द्वीप सर्वर्त्तुक रमणारण्य को बाण की पुत्री ऊषा ने अपना विहार स्थल चुना । यहां से वरोरुहों (स्त्रियों) को कुण्डेश्वर शिवधाम दर्शनार्थ के लिए एक घाट बनाया गया । वरोरुहों हेतु बनाए गए इस घाट को वरीयान घाट कहा गया । यही घाट वर्तमान में बरीघाट के नाम से जाना जाता है । आज भी यहां की प्राकृतिक संपदा और रमणीयता देखकर उस बाणासुर के पौराणिक युग स्मृतियां जीवंत हो उठती हैं । यह स्थान यदि पर्यटन-स्थल के रूप में विकसित किया जाए तो निश्चित ही पर्यटकों का मन मुग्ध हुए बिना नहीं रहेगा ।

इसी ऊषा-विहार में वैशाख शुक्ल द्वादशी की रात्रि के अंतिम प्रहर में ऊषा ने स्वप्न में एक युवक के साथ विहार किया । ऊषा ने यह वृतांत अपनी सखी चित्रलेखा (बाणासुर के मंत्री कुंभाण्ड की पुत्री) को सुनाया। चित्रलेखा अपनी कल्पना से हर प्रकार के चित्र बनाने में दक्ष थी। उसने सभी चित्र बनाते-बनाते क्रमानुसार द्वारिकाधीश श्री कृष्ण के पौत्र प्रद्युम्न कुमार अनिरुद्ध का चित्र बना दिखाया । राजकुमारी ऊषा का ध्यान वहीं स्थिर हो गया । सखी का अभिप्राय समझ चित्रलेखा ने अपनी शक्ति से रोचना के पति अनिरुद्ध को द्वारिका से बुला लिया । ऊषा अपने महल से नगर के पूर्व में सुरंग मार्ग से सर्वर्त्तुक वन में छः माह तक विहार करती रही।

एक दिन अनिरुद्ध को वर रूप में पाने की कामना से रात्रि में ऊषा पार्वती के पास पहुंची संयोगवश उसी समय बाण शिव दर्शनार्थ ज्योतिर्लिंग के समीप पहुंचा । रात्रि में ज्योतिर्लिंग के समीप अकेली पुत्री को आई देख घटना के रहस्योद्घाटन होने पर बाण ने अनिरुद्ध को नागपाश में बांध दिया। ऊषा के अनुनय विनय करने पर उसे मारा नहीं । सुनियोजित योजनानुसार सूचना प्राप्त कर श्री कृष्ण ने यादवी सेना को लेकर बाण पर आक्रमण कर दिया। बाण की ओर से भगवान शिव कार्तिकेयादि सहित बढ़े। प्रद्युम्न तथा कूपकर्ण, बलराम-गणेश, सात्यिक-कुंभाण्ड तथा कृष्ण के साथ आशुतोष शिव का भयंकर युद्ध होता रहा। बलराम ने कार्तिकेय के मारे को खदेड़ भगाया। कृष्ण ने जृंभणास्त्र तथा अपने शरीर से उत्पन्न ज्वरों द्वारा युद्ध करते हुए शिवजी को मोहित कर लिया। शिव को स्तंभित कर सात्यिक से लड़ रहे बाण पर श्री कृष्ण ने सुदर्शन का प्रहार किया । सुदर्शन बाण की बाहुओं को एक-एक कर काटता रहा। तभी नग्नावस्था में कोटरा को अपनी ओर आते देख श्री कृष्ण ने सुदर्शन को रोक लिया और भगवान आशुतोष के अनुरोध पर बाण को चतुर्भुजी बनाकर युद्ध विराम कर दिया। इस युद्ध में बाणपुर नगर, गणेश मंदिर, कोटरा की नगरी, कुंभाण्ड नगरी (कुम्हैड़ी) इत्यादि स्थान ध्वस्त हो गए।

नाग पाशोन्मुक्त अनिरुद्ध के साथ प्रसन्नता पूर्वक पुत्री का पाणिग्रहण कर बाण अपने दानवत्व को त्याग भगवान शिव का कालभैरव के रूप में मुख्य पार्षद बन गया। सहस्रों वर्षों तक वह ज्योतिर्लिंग नदी के तट पर दबा रहा। ऊषा विहार ऊखा तथा रमणारण्य रमन्ना के रूप में अवशिष्ट रह गए। ध्वस्त शिव मंदिर एक मिट्टी का टीला (स्तूप) शेष रहा।

बानपुर ग्राम में स्थित अद्वितीय बाईस भुजा गणेश का अर्चन, ज्योतिर्लिंग का दर्शन तथा पूजनोपरांत पार्थिव शिवलिंगों को नर्मदा नदी में यान द्वारा ले जाकर विसर्जित करना बाण का नित्य नियम था । इसीलिए नर्मदा में विसर्जित बाणलिंग सद्यः फलप्रद माने जाते हैं।

12वीं शताब्दी में जब चंदेल शासन का सितारा बुलंदी पर था । शैव मतावलंबी, जैन आश्रय दाता, धार्मिक, स्थापत्य प्रेमी मदन वर्मा (1130-1165 ई0); जिन्होंने वर्तमान मदनपुर का निर्माण कराया । प्रवास के दौरान कुण्डेश्वर ज्योतिर्लिंग के पास से निकले । कहते हैं उसी समय उन्हें यह ज्योतिर्लिंग दिखाई पड़ा । मदन वर्मा ने लिंग के समक्ष एक नंदीश्वर की प्रस्तरमूर्ति की स्थापना करा दी । नंदीश्वर की इस मूर्ति पर संवत् 1201 उत्कीर्णित है। यहां एक छोटे-से मठ का निर्माण भी इसी समय कराया गया। 1932 ई0 के पूर्व तक नंदी की इस मूर्ति के दर्शन किए जा सके हैं

कालांतर में मठ धराशायी हो गया । टीला टीला ही रहा । 15वीं शताब्दी तक इस टीले पर सात-आठ परिवारों का एक छोटा-सा गॉव बस गया। वहीं अपने निवास पर एक दिन धंती नाम की खटीकन (कल्याण शिवोपासनांक) धान कूट रही थी । मूसल के प्रहार से ओखली के चावल रक्तरंजित हो गए । मूसल के प्रहार से उसे आभास हुआ जैसे वह किसी के सिर पर लगा हो । उसने उखरी पर एक कूंड़ा ढंक दिया और इस कौतूहलोद्दीपक रहस्य का अभिज्ञान कराने के लिए टीले से नीचे की ओर आयी । यहां लघुतुंगारण्य में श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी और श्रोतागण काकरवाड़ी (आंध्र प्रदेश) निवासी प्रसिद्ध सोमयाजी लक्ष्मण भट्ट तैलंग के पुत्र - पुष्टिमार्गीय, वेदान्त के :ड संप्रदाय में से एक शुद्धाद्वैत मत प्रवर्तक - महाप्रभु वल्लभाचार्य की 22वीं वर्षगांठ मना रहे थे । यह दिन वैशाख कृष्ण एकादशी का था ।

आश्चर्य पूर्वक धंती के अनुरोध पर वहां जाकर ओखली के समीप शिवलिंग को आधार बनाते हुए खुदाई कराई । जब शिवलिंग की गहराई का पता न चल सका, तब टीकमगढ़ (टेहरी) से प्रसिद्ध वैदिक तैलंग ब्राह्मणों को बुलाकर प्रतिष्ठा करायी गई तथा ज्योतिर्लिंग पर कूंड़ा को जलाधारीनुमा रखवाया गया । इसी से इसका कूंड़ादेव नाम प्रसिद्ध हुआ । इसी पर एक छोटे-से द्वार सहित

एक मठ बनवाया गया । धीरे-धीरे बस्ती उजड़ती गई। शताधिक वर्षों बाद बुंदेली स्थापत्य कला के जनक वीर सिंह जू देव प्रथम मुग़ल बादशाह अकबर की मृत्यु (13.10.1605) के बाद ओरछा की राजगद्दी पर सुशोभित हुए । वीरसिंह एक बार यहां पधारे । उन्होंने इस स्थान का निरीक्षण कर इस छोटे मठ के चारों ओर एक विशाल चबूतरे का निर्माण करा दिया ।

एक दिन अपनी 52वीं वर्षगांठ पर संवत् 1618 में वीरसिंह जू देव ने कूंड़ादेव भगवान से 52 विभिन्न स्थानों पर मंदिर-महल-गढ़ी आदि बनाने की मनौती मांगी । ओरछा नरेश की यह मनोकामना पूरी होने पर यहां अनेक मरम्मती कार्य कराए जाने लगे । देखते-देखते वहां एक पूरी बस्ती बस गई । किन्तु समय के थपेड़ों को सहते हुए ज्योतिर्लिंग का मठ पुनः धराशायी हो गया, जिसे ओरछा के महाराज विक्रमाजीत सिंह (1776-1817ई0) ने फिर से निर्मित करा इस स्थान के विकास और उसकी सुरम्यता में चार चांद लगाए । आगे चलकर महाराजा प्रतापसिंह जू देव (1885-1930ई0) ने यमविड़ार नदी पर 15 फुट ऊँचा पुल कुण्ड में घाट, साधु-संतो के निवास हेतु कोठी एवं सीढ़ियों का निर्माण कराकर इस तीर्थ का जीर्णोद्धार किया। बब्बाजू प्रताप सिंह के निधन के उपरांत 4.11.1930 को वीर सिंह जू देव द्वितीय ने ओरछा का राज्यभार संभाला । उन्होंने भी भगवान शिव के इस धाम के विकास करने में हरसंभव योगदान किया । तत्कालीन ओरछा राज्य के गृहमंत्री अश्विनी कुमार पाण्डेय होम साहब ने मंदिर के निर्माण का कार्य अपने हाथों में ले लिया राजाज्ञा से मढ़ी को तुड़वाकर मंदिर निर्माण हेतु नींव खोदी गई । स्वयंभू लिंग में तीन-तीन फुट के अंतर पर विभिन्न प्रकार की जलाधारियां मिलती गईं । 25 फुट तक की ही खुदाई हो सकी कि विशाल जलधार स्फुट हो उठी । नींव खुदाई रोककर भराई का काम प्रारंभ कर दिया गया । शिवलिंग की गहराई का कोई पता न चल सका। पूरी पहाड़ी पर संगमरमर का मंदिर बनवाया गया । शिवकृपा से होम साहब के अनुज भ्राता विरक्त ब्रह्मचारी पं0 श्री देवीदत्त जी पाण्डेय (काका जी) ने गुरु आज्ञा से अल्मोड़ा से पधारकर इस स्थान की कमान संभाल ली। तब से मामा जी जैसे सिद्ध महात्मा, अनेक प्रदेशों एवं देश के राजनेता, श्रद्धालुवृन्द, पं0 बनारसी दास चतुर्वेदी एवं यशपाल जैन सरीखे साहित्यकार, देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद जैसे मूर्धन्य एवं गुणी व्यक्तित्वों ने इस स्थान की सिद्धि और सुरम्यता को सराहा और अनुभव किया ।

भगवान कुण्डेश्वर की महिमा में कुण्डेश्वर की पावन स्थली में निवास कर रहे प्रसिद्ध बुंदेली भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ डॉ दुर्गेश दीक्षित की ये पंक्तियां अनायास स्मरणीय हो उठती हैं -

कलियुग का कैलाश शिरोमणि पावन तीर्थ हमारा
धन्य-धन्य बुंदेलखण्ड यह सारे जग से न्यारा ।

इस प्रकार बानपुर के पौराणिक राजा बाणासुर की अर्चना-वंदना से प्रसन्न होकर प्रकटे स्वयंभू महादेव वर्तमान कुण्डेश्वर के नाम से ख्याति प्राप्त कर अनेक प्रदेशों के आकर्षण का एक प्रमुख तीर्थ-केन्द्र बन गया है ।

- 'मानस मधुप', 'साहित्यायुर्वेद रत्न', ग्राम छिल्ला (बानपुर) जनपद - ललितपुर

बानपुर की बोली और उसका साहित्य

- डॉ राकेश नारायण द्विवेदी

बानपुर की बोली; हमारी बोली अर्थात् बुन्देली बोली। बुन्देली के विविध रूप हैं किंतु यहां हमारे विवेचन का आशय उसके विविध प्रकार नहीं, अपितु बुंदेलखण्ड के समग्र अंचल में व्यवहृत एक सामान्य बुन्देली भाषा से है। बानपुर का इस देश में पौराणिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से गौरवपूर्ण स्थान है। इस पुस्तक में बानपुर के गौरव का वर्णन कई विद्वानों के आलेखों में सविस्तार और शोधपूर्ण हुआ है। इस आलेख में बानपुर की बोली को केन्द्र बिन्दु बनाकर बुन्देली बोली और उसके साहित्यिक सौन्दर्य के उद्घाटन का प्रयास हुआ है।

बुन्देलखण्ड साहित्यिक क्षेत्र में जगनिक, गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि केशवदास, लालकवि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, डॉ वृन्दावनलाल वर्मा और लोककवि ईसुरी के कारण तथा आल्हा-ऊदल और वीरांगना लक्ष्मीबाई एवं उनके अभिन्न सहयोगी बानपुर नरेश महाराजा मर्दनसिंह के कारण पराक्रम के क्षेत्र में संसार में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है।

बानपुर की बोली शौरसेनी अपभ्रंश से उद्भूत पश्चिमी हिन्दी की पांच बोलियों में एक बुन्देली भाषा है। पश्चिमी हिन्दी की बुन्देली के अतिरिक्त अन्य बोलियां हैं खड़ी बोली, ब्रज भाषा, बांगरु या हरियाणवी और कन्नौजी । इस प्रकार बुन्देली की सहोदरा उसके अतिरिक्त ये चार बोलियां हैं। अन्य बहनों में पूर्वी हिन्दी की अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी; बिहारी हिन्दी की मैथिली, मगही और भोजपुरी, राजस्थानी हिन्दी की मेवाती, मारवाड़ी और जयपुरी तथा पहाड़ी हिन्दी की कुमांयुनी और गढ़वाली । इन बोलियों को मिलाकर हिन्दी प्रदेश बनता है । बुन्देली में ऐ, औ का उच्चारण मूल स्वर तथा संयुक्त स्वर दोनों रूपों में होता है । ब्रजभाषा की तरह स्वरों के अनुनासिक रूप भी मिल जाते हैं । यहां की बोली के उच्चारण में अल्पप्राणीकरण मिलता है जैसे गधा को गदा, दूध को दूद तथा भूख को भूंक । ड, ढ की जगह र बोला जाता है, जैसे करोड़ का करोर दौड़ का दौर । कभी-कभी र लुप्त हो जाता है जैसे गालियां - गाईं व्याकरणिक दृष्टि से अवधी की तरह इया अथवा वा प्रत्यय संज्ञा के साथ जुड़ते हैं जैसे लठिया, बैलवा, मलिनिया आदि ।

बुन्देली क्षेत्र के रचनाकारों ने ब्रजभाषा (केशवदास-रामचन्द्रिका), अवधी (गोस्वामी तुलसीदास - श्रीरामचरितमानस) तथा खड़ी बोली (मैथिलीशरण गुप्त - भारत भारती) में काव्य सृजन करके हिन्दी साहित्य को कालजयी कृतियां दी हैं। यहां के अधिसंख्य रचनाकारों ने ब्रजभाषा में अपनी रचनाएं लिखीं। हिन्दी साहित्य में काव्य ही अभिव्यक्ति की आदि विधा रही। अतः यहां के साहित्यकारों ने भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय काव्य-सृजन करके दिया । बुन्देली भाषा के माध्यम से साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले प्रमुख रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय अधोप्रस्तुत है-

बुन्देली बोली और संस्कृति का प्रथम महाकाव्य आल्हखण्ड है । इसके रचयिता महाकवि जगनिक हैं । जगनिक का जन्म आगरा जिले की खैरागढ़ तहसील में हुआ था। ये महोबा के राजा के आश्रित कवि थे। बुन्देलखण्ड की ग्रामीण जनता के लिए आल्हखण्ड धर्म सदृश काव्य-ग्रंथ है आल्हाखण्ड को लिपिबद्ध करने का कार्य सर चार्ल्स इलियट ने सन् 1865 में किया, जिसमें 23 लड़ाइयों का वर्णन किया गया है, परंतु बाद के आल्हखण्ड में 25, 56 और 64 लड़ाइयों का वर्णन मिलता है।

बुन्देली भाषा को विकसित कर उत्कर्ष तक पहुंचाने वाले ईसुरी का जन्म मऊरानीपुर के निकट मेढकी ग्राम में संवत् 1881 में हुआ था । ईसुरी खेत खलिहानों में बैठकर लोगों को बुंदेली भाषा में कविता बनाकर सुनाते थे। लोग इनकी कविता-लालित्य से युक्त गायन-काव्य सुन भाव विभोर हो जाते। यहीं से उनकी कविता से एक नवीन काव्य विधा का सृजन हुआ, जिसे 'फाग' नाम से प्रसिद्धि मिली। फाग साहित्य में ईसुरी श्रृंगार के रस सिद्ध कवि के रूप में अमर हो गए इस छंद में 28 मात्राएं होती हैं और 16 तथा 12 मात्राओं पर यति होती है। अपने काव्य में ईसुरी ने प्रेयसी के लिए काल्पनिक नाम 'रजऊ' प्रयोग किया है। स्वयं ईसुरी ने कहा है कि रजऊ को लक्षित कर रची गई फागों की संख्या 360 है।

रीतिकाल के उत्तरार्द्ध कवियों में बुंदेली धारा के प्रसिद्ध कवियों में से एक गंगाधर व्यास का जन्म संवत् 1906 में छतरपुर में और निधन संवत् 1973 में हुआ था । ईसुरी की काव्य परंपरा को विकसित करने में व्यास जी का महत्वपूर्ण स्थान है । बुन्देली त्रयी में ईसुरी और गंगाधर व्यास के अतिरिक्त ख्यालीराम आते हैं । इनका जन्म संवत् 1906 में चरखारी स्टेट के छोटे से गांव अठकोरा में रामसहायक जी लोधी राजपूत के घर हुआ था । यह ईसुरी के समकालीन थे ।

रस्ता सुगम ईसुरी डारी अच्छी राम बिचारी ।
गंगाधर गट्टी पुरवा कें पक्की सड़क निकारी ।
जां जां झील परी बोधन ने ख्याली ख्याल सुधारी ।

पदम सिंह बिरछा लगवा कें करी घनेरी छांरी ।
ता ऊपर लाले उर मोती निगम खात नईं हारी ।।

बुंदेलखण्ड के प्रसिद्ध कवि घासीराम व्यास से प्रेरणा प्राप्त करके झांसी के श्री रामचरण हयारण मित्र (जन्म 1905 ई0) का प्रारंभिक काव्य-सृजन मानक हिन्दी का है, किन्तु आगे चलकर इन्होंने विशुद्ध बुंदेली को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । मित्र जी ने अपने बुन्देली काव्य-सृजन से जताया कि मानक हिन्दी में सृजन की क्षमता रखकर भी मातृभाषा बुन्देली की सेवा को अपना प्राथमिक कर्तव्य बनाया जा सकता है। 'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' इनका विवेचना परक ग्रंथ है। मित्रजी के 'लोकगायनी' तथा 'लौलइया' शुद्ध बुंदेली कविताओं के संकलन हैं।

बुन्देली काव्य क्षेत्र में उरई निवासी श्री शिवानंद मिश्र 'बुन्देला' अपनी साहित्यिक प्रसिद्धि के कारण बुन्देला उपनाम से ही अधिक जाने जाते हैं। बुंदेला जी का सांस्कृतिक और नैतिक जागरण पर बल देता हुआ एक पद उनकी कविता 'कथा खेत खरयानन की' से यहां उद्धृत है -

तुम डिल्ली की बातें करो बड़े भइया
हमें करन दो सेवा अपने गांवन की ।
तुम कारन पै मलकौ मालपुआ गुलकौ,
हमें कहन दो कथा खेत खरयानन की ।
ठांड़ी कर गए छाय-बनाय मड़इयन को,
रात-रात सोई गीले में महतारी,
पाल-पोस स्यानों कर गई सब भइयन कों ।

बुन्देली गद्य एवं काव्य के अप्रतिम रचनाकार डॉ दुर्गेश दीक्षित का बाल्य-काल पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी के परिवार के साथ कुण्डेश्वर में व्यतीत हुआ। अभी भी वे कुण्डेश्वर में निवास करते हैं । श्रद्धेय चतुर्वेदी जी के संबल और मार्गदर्शन से इनमें काव्य सृजन की रुचि और क्षमता का विकास हुआ। कवि सम्मेलनों में श्रोताओं का सहयोग इनके उत्साह में निरंतर वृद्धि करता गया डॉ दीक्षित ने अत्यंत परिश्रमपूर्वक अध्ययन करते हुए डी.लिट्. की उपाधि धारण की है। एक आलेख के रूप में उनका ललित बुन्देली गद्य इस पुस्तक की शोभा में श्रीवृद्धि कर रहा है।

पृथ्वीपुर में शिक्षक श्री रतिभान तिवारी 'कंज' को प्रगतिवादी विचारधारा का बुंदेली कवि माना जाता है। इनका जन्म संवत् 2007 में टीकमगढ़ जिले के नैनुआ ग्राम में हुआ था। श्री कंज को बुन्देली भाषा की सेवा पर उ.प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। कवि के पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति गहरे आक्रोश को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

उनके रोजउं मने दिवारी, मोरे घरे धंधक रई होरी ।
उनकी पौर उटारी हंस रई, सूनी उरी टपरिया मोरी ।
वे तौ हलुआ रबड़ी सूंटें, दूध धरें कुत्ता नौरा खों ।
अदपेटां सोवें हम रोजउं, तरस रए कौरा-कौरा खों ।

जगदीश सहाय खरे 'जलज' सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील रहे हैं इनकी 1963 में लिखी बुन्देली रचना 'राम धई खाय लेत महंगाई' बड़ी लोकप्रिय हुई -

रामधई खाएं लेत महंगाई
उतै लगत अब एक रुपइया जितै लगत को पाई।
काकी होरी, काकी होरा ?
कलजुग, परौ सबई पै तोरा,
चिथरा भई तुमाई धुतियां,
हम तौ कहत लपेड़ौ बोरा,
चुटियां फीता छोड़ के रंग लो,
करिया रामबांस कौ जोरा,
दार उधार मुहल्ला भर की, अब नो नई चुकाई।
कासें मैं आवै तिरकाई।

बुंदेल छंद नामक अनोखे छंद में बुन्देली रचनाएं करने वाले बिजावर के श्री संतोष सिंह बुन्देला ने भी बुन्देली काव्य साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना महती योगदान किया है। वहीं मही कुम्हर्रा मोंठ निवासी श्री अवध किशोर श्रीवास्तव 'अवधेश' ने झांसी के कवीन्द्र नाथूराम माहौर के संपर्क में रहकर काव्य रचना आरंभ की। उनकी बुन्देली आन, बान और शान को अभिव्यंजित करती ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

बुन्देलों की सुनो कहानी, बुन्देलों की बानी में ।
पानीदार यहां का पानी, आग यहां के पानी में ।।

अवधेश जी का बुन्देली भाषा के माधुर्य को स्पष्ट करता यह पद दर्शनीय है-

लिखतन बुन्देली अखरी सी, बोलत में मिसरी सी,
ब्रज संस्कृत की बड़ी बहिन, प्राकृत की छुकरी सी ।
कोट-कोट हिरदै में बस के, अधरन पै बिखरी सी,
कएं 'अवधेश' मका की रोटी, नैनूं सें चिपरी सी ।

लोकभाषाओं में रचे साहित्य को देखकर रमई काका के प्रथम कविता-संकलन 'बौछार' की भूमिका में डॉ रामविलास शर्मा ने लिखा है ''ग्रामीण भाषाओं में सुन्दर कविता हो सकती है, यह संभावना आज सत्य बनकर हमारे सामने आ गयी है। यही नहीं, ग्रामीण भाषाओं में जिस कोटि की व्यंजना संभव है, वह खड़ी बोली में अभी सुलभ नहीं है। इन कविताओं को पढ़ने से पता लगता है कि हमारी उपभाषाओं में सैकड़ों ऐसे शब्द भरे पड़े हैं, जिन्हें अपनाने से हिन्दी समृद्ध होगी।''

बानपुर निवासी श्री कैलाश मड़बैया के कृतित्व को 'बानपुर के अविस्मरणीय साहित्यिक वैभव - कैलाश मड़बैया' नामक लेख में इस पुस्तक में दिग्दर्शित कराया जा चुका है।

बानपुर के ही डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी को बानपुर का 'साहित्यिक कैलाश' कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा । उनका 'बुन्देली शब्द कोश' यदि हिन्दी का अमूल्य कोश बन गया है तो 'दद्दा' हमारे बानपुर के भी अक्षय कोश बन चुके हैं । ऐसी विभूतियों पर बानपुर को गर्व है । दद्दा ने 'बुन्देली शब्द कोश' के प्राक्कथन में लिखा है ''बुन्देली शब्द कोश के निर्माण सुनियोजित प्रयास सर्वप्रथम ओरछा नरेश स्व. महाराजा वीरसिंह जूदेव (द्वितीय) ने सन् 1940-42 के आस-पास करवाया था । इसके प्रभारी श्री कृष्णानंद गुप्त थे । पर्याप्त आर्थिक साधनों और समस्त सुविधाओं के होते हुए भी किन्हीं कारणोंवश यह कार्य नहीं हो सका । व्यक्तिगत स्तर पर भी स्व. बालकृष्ण तैलंग, स्व. मुंशी अजमेरी आदि ने भी शौकियातौर पर बुन्देली शब्द संकलन का कार्य किया था ।'' अल्प संसाधनों में रहकर भी दद्दा ने शब्दकोश बनाने का विशाल कार्य अकेले संपन्न कर दिखाया । मुझे विश्वास है यह शब्द कोश बुन्देली भाषा ही नहीं हिन्दी और भाषियों के लिए अमूल्य उपहार सिद्ध होगा। इससे भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य के बीच परस्पर गमनागमन हेतु एक सेतु बन सकेगा । दद्दा एक शब्दकोशकार ही नहीं अपितु एक निर्भीक संपादक और निष्पक्ष आलोचक भी हैं ।

संपादन के माध्यम से बुन्देली भाषा और साहित्य के साथ-साथ इतिहास और पुरा-सामग्री के अन्वेषक इतिहासकार टीकमगढ़ निवासी पं0 हरिविष्णु अवस्थी का नाम अविस्मरणीय है। कुण्डेश्वर में निवास कर रहे पं0 गुणसागर 'सत्यार्थी' का नाम बुन्देलखण्ड के साहित्य और यहां की धरोहरों को अपने कथ्य में उतारने के लिए प्रमुख रूप से लिया जाता है । इन पंक्तियों के लेखक के पूज्य पिता श्री पं0 बाबूलाल द्विवेदी बानपुर के निकटस्थ एक लघु-ग्राम (छिल्ला) में रहते हुए अपने स्वाध्याय और सत्संगति के बल पर बुन्देली काव्य ही नहीं संस्कृत के अनुवाद तथा इतिहास और पुराणों सहित अनेक ऐतिहासिक स्रोतों का दर्शन-पारायण कर अहैतुक भाव से गवेषणापरक साहित्य सृजनरत हैं । यह पुस्तक और इसमें दिए गए उनके अनेक आलेख उनके कृतित्व को निरूपित करते हैं ।

यहां उल्लेखनीय है कि बुन्देली भाषा और साहित्य के मात्र उपर्युक्त रचनाकार ही इस साहित्येतिहास में नहीं आते हैं । ऐसे अनेक अज्ञात, अल्पज्ञात तथा अभिज्ञात मूर्धन्य बुन्देली रचनाकार हैं, जिनका इस आलेख में स्थानाभाव तथा अज्ञानता के कारण उल्लेख और विवेचन नहीं हो सका है ।

हमारे देश में लोक-साहित्य, लोकभाषा और लोक-प्रथाओं का अध्ययन 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ईसाई मिशनरियों तथा अंग्रेज अधिकारियों ने आरंभ किया था । इन यूरोपीय लोगों के देशों में इससे डेढ़ शताब्दी पहले ही राष्ट्रीयता के जागरण के फलस्वरूप यह काम प्रारंभ हो चुका था।

बुन्देलखण्ड में यह काम ओरछा नरेश श्री वीरसिंह जूदेव के संरक्षण में 'वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद' के तत्वावधान में आगे बढ़ा । इसके संस्थापक रायबहादुर डॉ श्यामबिहारी मिश्र 'मिश्र बंधु' तत्कालीन प्रधानमंत्री ओरछा राज्य थे । 1940 ई0 में श्री

बनारसीदास चतुर्वेदी ने कुण्डेश्वर को साहित्यिक केन्द्र बनाकर वहां से 'मधुकर' नामक पाक्षिक पत्र निकाला । इस पत्र ने अपने पांच वर्ष के जीवनकाल में बुन्देली लोक-साहित्य के विविध अंगों की प्रचुर सामग्री एकत्र कर ली । इन्हीं दिनों टीकमगढ़ में कुछ विद्वानों के सहयोग से 'लोकवार्ता परिषद' की स्थापना हुई श्री कृष्णानंद गुप्त ने 'लोकवार्ता' नामक त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया । इन दोनों पत्रिकाओं ने हिन्दी क्षेत्र में लोकभाषा और लोक-साहित्य के प्रति लगाव उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान किया ।

नव-जागरण की लहर ने छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, बुन्देली आदि सभी लोकभाषाओं को प्रोत्साहित किया और उनमें काव्य-सृजन होने लगा । प्रारंभ में कुछ लोगों को भय था कि इस प्रवृत्ति से मानक हिन्दी में बाधा उपस्थित होगी, परंतु उनकी शंकाएं निर्मूल सिद्ध हुईं । प्रमुख भाषा विज्ञानी और बुन्देली के विशेषज्ञ प्रो0 कान्तिकुमार जैन के संपादन में 'ईसुरी' के अंकों में बुन्देली साहित्य की अमूल्य धरोहर को समाविष्ट किया गया है । सागर तथा झांसी विश्वविद्यालयों के अनेक विद्वान प्रोफेसरों द्वारा बुन्देली का विकास और संवर्द्धन किया गया है । छतरपुर के नर्मदा प्रसाद गुप्त ने 'मामुलिया' त्रैमासिक शोध पत्रिका के माध्यम से बुन्देली संस्कृति के गौरव संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान किया है ।

संप्रति, बुन्देली के संवर्द्धन हेतु कई संस्थाएं और संगठन कार्यरत हैं। जिनमें अखिल भारतीय बुन्देलखण्ड साहित्य एवं संस्कृत परिषद भोपाल, बुन्देलखण्ड शोध संस्थान झांसी, वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद टीकमगढ़, बुन्देलखण्ड संस्कृति एवं सामाजिक सहयोग परिषद लखनऊ, बुन्देलखण्डी लोक सांस्कृतिक मंडल ललितपुर, बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर, बुन्देल शोध संस्थान सेंवढ़ा, संयुक्त बुन्देलखण्ड प्रगतिशील जनवादी लेखक संघ झांसी, लोक मंगल उरई इत्यादि प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त कई विद्यालयों के वार्षिकांक एवं व्यक्तिगत प्रयत्नों के आधार पर निकली स्मारिकाएं भी बुन्देली साहित्य और संस्कृति को लिपिबद्ध करते हुए उनके संचालन-प्रोत्साहन हेतु गतिमान हैं । इन सबके सामूहिक प्रयत्नों ने यह प्रमाणित किया है कि बुन्देली साहित्य और संस्कृति राष्ट्रभाषा हिन्दी को समृद्ध करने में किसी अन्य विभाषा या बोली से पीछे नहीं हैं । लोक भाषाएं हमारे जीवन को अभिसिंचित करती हैं । इनका प्रभाव कभी क्षीण नहीं होता है । इस उत्तर आधुनिक दौर में कभी बेजोड़ मानी जाने वाली ब्रज संस्कृति पर जहां पश्चिमीकरण हावी हो गया है, वहां बुन्देली गांवों की भाषा और संस्कृति अभी भी इस अपसंस्कृति के प्रभाव से बहुत कुछ बची है ।

. - वरिष्ठ सहायक प्रोफेसार, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, गांधी महाविद्यालय, उरई

रेडियो रूपक [2].

प्रथम समर : रणक्षेत्र
बानपुर

- गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी' [34]

फ्लश ऑन

(तोपों के धमाकों और घोड़ों के दौड़ने व यत्र-तत्र चीत्कार का ध्वनि प्रभाव)

ईको में - सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी;
यत्र-तत्र जन-जन के मुख पर गूंजी यही कहानी ।
पराधीनता अब न सहेंगे हो स्वतंत्र अब भारत -
तलवारों में उतर चुका बुंदेलखण्ड का पानी ।।

फ्लश परिवर्तन

(ईको में गूंजती बुलंद आवाज़ धीरे-धीरे विलीन होने पर नरेशन)

1 जी हां, अंग्रेजों के राजसिंहासनों को हिला देने वाला प्रथम समर स्वयं में अभूतपूर्व था, जिसने एक नए इतिहास का श्रीगणेश किया ।

2 और 1857 की 'गदर' नाम से विख्यात इस प्रथम समर की पृष्ठभूमि में 1842 का 'बुंदेला विद्रोह' भी अपने आप में एक अनूठी मिसाल है ।

3 प्रख्यात कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान के शब्दों में जिन राजवंशों ने अंग्रेजी शासन के सिंहासन हिला देने हेतु भृकुटी तानी थी, वे राजवंश ज्यादातर बुंदेलखण्ड के ही थे ।

4 उन्हीं राजवंशों में बानपुर राज्य के राजा मर्दन सिंह का नाम इस प्रथम समर के इतिहास में आज अमर है और यह नक्षत्र के समान चमक रहा है ।

5 वे चंदेरी के राजा मोद प्रहलाद के ज्येष्ठ पुत्र थे और उन्होंने कठोर और कष्टमय जीवन के अनुभव प्राप्त किए थे । रणकौशल और राजनीति के व्यावहारिक धरातल से गुजर कर आए थे ।

6 जबकि राजा मर्दनसिंह के पिता मोदप्रहलाद इसके विपरीत रहे । इसीलिए उन्होंने अपना चंदेरी का राज्य तक खो दिया । वह तो राजा मर्दनसिंह ही थे, जिन्होंने अपनी सूझ-बूझ एवं कुशलता से पुनः राज्य प्राप्त कर 1830 ई0 में बानपुर को अपनी राजधानी बनाया ।

7 मर्दनसिंह अंग्रेजों की चालों भली-भांति समझते थे । वे विलासिता के दुष्परिणाम अपने पिता के शासनकाल में देख चुके थे । इसलिए आरंभ से ही उन्होंने अपना नया मार्ग चुन लिया था ।

---

[2] रेडियो रूपक हिन्दी साहित्य में एक नई विधा है, जो आकाशवाणी की देन कही जाती है । रेडियो रूपक के तत्व हैं - ध्वनि प्रभाव, संगीत, भाषा तथा मौन। इसमें भाषा का व्यवहार दो रूपों में होता है - संवाद रूप में और वर्णन ;छंततंजपवदद्ध रूप में । अंधा माध्यम (श्रव्य साधन) होने के कारण इसके संवाद शाब्दिक ही रहते हैं । रेडियो रूपक में वर्णन करने के लिए लेखक का प्रतिनिधित्व सूत्रधार करता है । सूत्रधार या तो स्वयं पात्र रूप में उपस्थित होकर या तटस्थ रहकर नाटकीय कार्यव्यापार की सूचना देता हैं। यह विधा 20 मिनट से 30 मिनट तक की अवधि में लगभग दो घंटे की विषय-वस्तु रेडियो श्रोताओं को रोचक एवं लोकरंजन के साथ परोसने में सक्षम है । इसके लेखक अभी बहुत कम हैं । भोपाल आकाशवाणी ने 1857 के महासमर पर रूपकों की एक श्रृंखला का प्रसारण किया था । इसके कार्यक्षेत्र में रूपक लेखकों का टोटा पड़ जाने पर आकाशवाणी छतरपुर के कार्यक्षेत्र से श्री सत्यार्थी जी को लिया गया और उनसे एक साथ चार रूपकों के आलेख लिखवाए गए । उनमें से 'बानपुर' पर लिखा आलेख हम अपने पाठकों के लिए प्रकाशित कर रहे हैं । यह विधा पढ़ने से नहीं सुनने में अधिक आनंद देती है । - संपादक

[3] लेखक का जन्म 17 अगस्त 1937 को चिरगांव (झांसी) मुंशी अजमेरी के तृतीय सुपुत्र के रूप में हुआ था । आपकी रचनाएं हैं - मेघदूत (बुन्देली काव्यानुवाद), बुन्देली के नवगीतकार (संस्कृत पद्यानुवाद डॉ पुष्पा दीक्षित), संगीत सप्तक, बौराया फागुन, गुनगुन, रंग फुहार (बुन्देली फाग संग्रह), सोपान प्रकाश, चौखटी दुनिया (बाल फैंटेसी), तीन फुट का गर्म समोसा, बाल समोसा, बनवास (अनूदित) । आपको केशव पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है । - संपादक

8 वे भारत में अंग्रेजी शासन का अंत कर देने के पक्षधर थे । परंतु भारतीयता पर गर्व करने वाले मर्दनसिंह को अपने क्षत्रियधर्म पर गुमान था । विवेक से काम लेना ही उन्हें प्रिय था

9 इसीलिए वे अंग्रेजों के कट्टर विरोधी होते हुए भी प्रत्यक्ष रूप में अपने विरोध को प्रकट किए बगैर अपने मूल लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे । उनका लक्ष्य एक ही था - भारत से अंग्रेजी शासन को समाप्त करना ।

10 इस लक्ष्य को पाने हेतु शाहगढ़ के राजा बखतबली उनके प्रमुख सहगामी रहे। दोनों ने आस-पास के जागीरदारों तथा प्रभावशाली योद्धाओं को स्वतंत्रता संग्राम के महायज्ञ में आहुति देने का आह्वान किया ।

11 कुछ ऐसे ही आचरणो से ललितपुर की छावनी में कानाफूसी होने लगी । अंग्रेज अधिकारी मन ही मन इन पर संदेह करने लगे व इन पर विशे:ा नजर रखी गई।

12 यही वह समय था जब मेरठ की छावनी से प्रथम समर की आग का धुंआ उठा। कानपुर में उसकी चिंगारी चमकी और बानपुर में वह दबी हुई आग ऐसी धधक रही थी कि वह विकराल रूप लेती दिखाई देने लगी ।

13 अंग्रेजों की ललितपुर छावनी इस दबी हुई प्रचण्ड आग से आशंकित हुई । लेकिन जब तक प्रत्यक्ष रूप में बानपुर का विद्रोह सामने नहीं आया, तब तक प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज भी कुछ कहने व करने की स्थिति में न थे ।

14 अंग्रेजी खेमे में किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति ने धीरे से करवट बदला और एक दिन......

फ्लश परिवर्तन

(ललितपुर स्थित अंग्रेजी छावनी में अंग्रेज अधिकारी गंभीर चर्चा करते हुए एक गोपनीय बैठक में)

अंग्रेज 1 - अगर मैं गलट नहीं समझटा हूं टो मेरा मन कहटा है कि बानपुर का राजा मर्डनसिंग हमारे साठ कभी भी बगावट कर सकटा है ।

अंग्रेज 2 - ये बाट आप डावे शे कैशे कह सकटे हैं? अभी टक तो उशने हमारे आदमियों की हिफाजट ही की है ।

अंगेज 1 - वो भी मुझे पटा है । केप्टन सेल और डॉ ओ. ब्रियन हमारे ही लोग ठे, जिनको उशने शरन डी और हिफाजट भी की ।

अंग्रेज 3 - चोप ! बेवकूफ कहीं का । 12 और 13 जून को टू कहां मर गया ठा? जब ललिटपुर में हमारी छावनी में मेरठ, कानपुर और झाँसी बगैरह की आग भड़की उठी ।

अंग्रेज 2 - ललिटपुर छावनी के हिंदुस्थानी सिपाहियों ने बगावट की ठी । हमारे खजाने और आर्म्स स्टोर पर कब्जा करके हमारे आफीसरों के वो जान के दुश्मन बन गए ठे ।

अंग्रेज 1 - माई गॉड ! गॉड ने सभी आफीसरों की जान उश डिन बचा ली ठी । कुछ लोग टब सागर भाग गए ठे और कुछ लोग बानपुर में राजा की शरन में पहुंचे ठे ।

अंग्रेज 3 - हां सर, याड आ गया, सब कुछ याड आ गया । टब आप बानपुर के राजा पर शक क्यों कर रहे हैं? जबकि उशने हमारे लोगों की आफट पड़ने पर मडड की ।

अंग्रेज 1 - यही टो खास बाट है । बानपुर का राजा मर्डनसिंग बहोट चालाक है । हमारी मडड करना उशका ड्रामा है । हमारे खुफिया डिपार्टमेण्ट का कहना है कि छावनी में हिन्डुस्ठानी सिपाहियों की बगावट करवाने में मर्डनसिंग का ही हाट है ।

अंग्रेज 3 - अगर ऐसी बाट है टब टो हमें उशके खिलाफ जबरडस्ट ऐक्शन लेना चाहिए सर ।

अंगेज 2 - क्या बोला ऐक्शन? बगैर किसी पक्के शबूट के हम ऐक्शन कैशे ले सकटे हैं ?

अंग्रेज 1 - टुम ठीक कहते हो । अभी हमको भी कूटनीट की चाल चलना चाहिए। उशको यह अहसास भी न होने दें कि हम उशकी सब चालाकी जान गए हैं। अभी हम उश पर कड़ी नजर जरूर रखेंगे ।

फ्लश परिवर्तन

(नरेशन पुनः)

अ इस प्रकार दोनों ही पक्ष एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देख रहे थे । परंतु बानपुर जो स्वतंत्रता के प्रथम समर का रणक्षेत्र बना, उसके सीने में दबी हुई आग दिनों-दिन धधक कर प्रचण्डता की ओर बढ़ने लगी ।

अ जब राजा मर्दनसिंह ने अंग्रेजों को बानपुर में शरण दी तो बानपुर रणबांकुरों को कार्य अच्छा न लगा । वे उन सभी शरणागत अंग्रेजों को मौत के घाट उतार देने के पक्षधर थे ।

अ लेकिन मर्दनसिंह जो एक ओर अंग्रेजी साम्राज्य का भारत से अंत कर देने का संकल्प लिए थे तो दूसरी ओर भारतीयता के गौरव के लिए अपने क्षत्रिय धर्म को महत्व देते हुए शरणागत की रक्षा करने के भी पक्षधर थे ।

अ राजा मर्दनसिंह की यही तो कूटनीति थी कि कुछ अंग्रेजों को संरक्षण देकर वे अंग्रेजों के विश्वासपात्र बन जाएं और अंग्रेजों के पेट के भीतर बैठकर विस्फोट करें ।

ऐसा करके वे अंग्रेजों की भीतरी व्यूह रचना और सैन्य शक्ति से अवगत रहकर अपनी विद्रोही योजना को अंजाम देना चाहते थे । लेकिन अंग्रेज अधिकारियों से बानपुर के राजा की भावना छिपी न रह सकी । लेकिन वे प्रकट में बानपुर के राजा से विरोध न कर सके । जिसका प्रमाण झांलमशे ंदक डंससमेवदशे रू प्दकपंद डनजपदल वा 1857.58 टवस.ट के ये शब्द हैं -

"The three companies of Gwalior at that (Lalitpur) Station had broken into Mutiny, had plandered the Treasury and had driven the European Officers to flee for protection to the Raja of Banpur, who unders the pretence of being a friend, had been for some days in the Vicinity of Laitpur, exciting the Sipahi's to Mutiny."

अ इस प्रकार शरणागत अंग्रेज अधिकारियों में अपना विश्वास जमा कर राजा मर्दनसिंह ने उनसे उनकी वास्तविक सैनिक शक्ति तथा युद्ध संबंधी भेद लेने में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली थी

अ स्वतंत्रता के इस प्रथम समर में रण-क्षेत्र बानपुर यानि कि बानपुर के राजा मर्दनसिंह की नीति एवं रीति के संबंध में बाबू भगवानदास श्रीवास्तव ने हमें बताया कि

फ्लश परिवर्तन

(बाबू भगवानदास श्रीवास्तव का साक्षात्कार प्रस्तुत किया जाए । तत्पश्चात नरेशन पुनः प्रारंभ करें)

1 10 मई 1857 को मेरठ से विद्रोह की जो चिंगारी भड़की, वह दिल्ली में भीषण रूप धारण करती हुई 4 जून 1857 को कानपुर में विकराल ज्वाला बन गई ।

2 भारतीय सेना ने अंग्रेजी खजाने और शस्त्रागार पर अपना अधिकार जमा लेने के साथ नाना साहब को राजा घोषित कर दिया ।

3 यही वह समय था, जब 3 जून 1857 को अंग्रेजों के दो बंगले जला दिए गए और उनके स्टार फोर्ट स्थित खजाना और शस्त्रागार भारतीय सैनिकों ने लूट लिए ।

4 बहुत से अंग्रेज अधिकारी मार दिए गए । अंग्रेजी खेमें में भय समा गया । झॉसी के डिप्टी कमिश्नर गार्डन ने भी अपने प्राण गँवाए । सब ओर त्राहिमाम् त्राहिमाम् था ।

5 इस प्रकार झांसी में अंग्रेजों का स्त्री-बच्चों सहित जिस निर्दयता से संहार हुआ । वह व्यवहार एवं कार्यप्रणाली बानपुर के राजा मर्दनसिंह को रास नहीं आई ।

6 जबकि राजा मर्दनसिंह अंग्रेजी साम्राज्य को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने को संकल्पित थे। परंतु भारतीयता के ही परिप्रेक्ष्य में अपने क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करते हुए वे नैतिकता के साथ प्रथम समर को शौर्य के साथ जीतना चाहते थे

7 राजा मर्दनसिंह बानपुर से चलकर ललितपुर के निकट ग्राम मसौरा में ठहर गया । वहां से अपने गुप्तचरों द्वारा 11 जून को झांसी का समाचार ललितपुर की छावनी में प्रचारित किया ललितपुर छावनी के अंग्रेज अधिकारी भय से कांप उठे ।

8 इस प्रकार 12 और 13 जून की मध्य रात्रि में जो ललितपुर छावनी में भारतीय सैनिकों ने विद्रोह किया; उसके सूत्रधार गुप्तरूप में बानपुर के राजा मर्दनसिंह ही थे, जिसे अंग्रेज समझ नहीं सके थे ।

9 न केवल बानपुर; वरन् समूचा बुंदेलखण्ड ही इस प्रथम समर का रण-क्षेत्र बन चुका था। घर-घर में आज़ादी की लड़ाई की चिंगारी पहुंच चुकी थी ।

10 क्या बूढ़े, क्या बाल, पुरुष और महिलाएं देश की बलिवेदी पर अपने प्राण न्योछावर कर देने को उतावले हो उठे ।

11 छोटे-छोटे बच्चे भी उत्सुक होकर गा उठे ।

फैड इन

(समूह गीत)

मां छोटी तलवार दिला दे;
हम लड़ने को जाएंगे ।
गोरों की काली करतूतें,
अब न सहन कर पाएंगे ।
नदी बेतवा कल-कल स्वर में;
शौर्य का पाठ पढ़ाती है ।
जुल्म ढहाए जो गोरों ने
हमको वह बतलाती है ।
जामनेर उत्साहित करती
हम पानी नहीं लजाएंगे ।
मां छोटी तलवार दिलादे
हम लड़ने को जाएंगे ।
वीर बुंदेलों की धरती यह,

कण-कण में इतिहास लिखा ।
देश-धर्म पर मर मिटने का
सबक धरा अब रही सिखा ।
मां ने हमको दूध पिलाया
दूध को नहीं लजाएंगे ।
मां छोटी तलवार दिला दे
हम लड़ने को जाएंगे ।
गणपति की बाईस भुजाएं,
फड़क उठी हैं देखो आज ।
प्रलयंकारी नर्तन करते
ओज बहाया अनुपम आज ।
शपथ उन्हीं पार्वती पुत्र की
देश आज़ाद कराएंगे ।
मां छोटी तलवार दिला दे,
हम लड़ने को जाएंगे ।

फेड आउट

(गीत के समापन के साथ ही रमतूलों का तुमुल नाद एवं कोलाहल गूंजने का ध्वनि प्रभाव, पश्चात नरेशन)

1 ऐसा लग रहा था, मानो 1842 का बुंदेला विद्रोह अब अपनी पन्द्रह व:र्ा की आयु पार करके तरुणाई में लाल हो गया है ।

2 1842 से 1857 तक आते-आते अंग्रेज न केवल बानपुर वरन् समूचे बुंदेलखण्ड भयभीत हो रहे थे, जिससे उनकी पूरी शक्ति अब बुंदेलखण्ड को तबाह कर देने में लग चुकी थी ।

3 मेरठ, कानपुर, दिल्ली, झॉसी के साथ समूचा बुंदेलखण्ड अंग्रेजों की आंखों की किरकिरी बन चुका था । अंग्रेज नित नई चालें चलते और बानपुर के रणबांकुरे उनके मजबूत मंसूबों को रेत के किले के समान पल में ढहा देते थे।

4 यह क्रम सतत चल रहा था । बुंदेले रणबांकुरों द्वारा वारदातों को अंजाम देते देखकर अंग्रेजों की आंखों की नींद उड़ जाती थी ।

5 लेकिन खास बात यही थी कि अभी तक बानपुर के राजा मर्दनसिंह की कोई भी विद्रोही गतिविधि उजागर नहीं हो सकी थी । वे पृ:ठभूमि में रहकर ही यह सब संपन्न करा रहे थे ।

6 3 जुलाई को जबलपुर से अंग्रेज कमिश्नर ने राजा मर्दनसिंह को पत्र भेजा । जिसमें सागर में विद्रोह का दमन करने का आग्रह करते हुए कहा था कि वे सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर हिनकिन को मदद करें और चंदेरी के राज्य से विद्रोहियों को सागर आने से रोकें ।

7 पत्र पढ़कर राजा मर्दनसिंह को संतोष हुआ कि अंग्रेजों की जबलपुर कमिश्नरी उनके वास्तविक रूप से परिचित नहीं है ।

8 जबलपुर कमिश्नरी का यह भ्रम भी कालांतर में टूट गया । मालथोन पर मेजर गौसेन की सेना में भितरघात के साथ तोड़-फोड़ और सागर की छावनी में विद्रोह जैसी घटनाओं की जड़ में राजा मर्दनसिंह का होना देर से ही सही, अब अंग्रेज समझ चुके थे ।

9 इसीलिए 10 जुलाई 1857 को राजा मर्दनसिंह को पत्र लिखा गया, जिसके अनुसार राजा मर्दनसिंह को चंदेरी और ललितपुर के शासन-प्रबंध से पदच्युत करने का स्प:ट आदेश था ।

10 उस पत्र में यह भी लिखा था कि वह बगैर अंग्रेजी सरकार की स्वीकृति के अपनी सेना कहीं भी नहीं भेज सकेंगे । राजा ने उस पत्र को पाते ही चंदेरी के अंग्रेजों को बंदी बनाकर चंदेरी को स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया ।

11 अब तो अंग्रेजों के प्रति एक स्वाभाविक घृणा का भाव यहां के जन-जन में समा गया था अंग्रेज भयभीत हो रहे थे ।

12 20 जुलाई 1857 को शाहगढ़ के राजा बखतबली ने राजा मर्दनसिंह को पत्र लिखकर अपने यहां घटित घटनाओं को बताते हुए उन्हें सागर पर आक्रमण कर देने की बात लिखी ।

13 यह पत्र राजा मर्दनसिंह को 22 जुलाई को खुरई में मिला । पत्र मिलते ही उन्होंने 1300 सिपाहियों को लेकर सागर की ओर कूच किया ।

(घोड़े दौड़ने का ध्वनि प्रभाव दिया जाए)

1. नरियावली होते हुए राजा मर्दनसिंह सागर की सीमा पर पहुंचे और सागर के सुदृढ़ किले पर जबरदस्त आक्रमण कर दिया । इससे अंग्रेजों का साहस चकनाचूर हो गया ।

2. अंग्रेजी सेना किले में मानो कैद होकर रह गई । सब कुछ उनका नष्ट होने पर भी युद्ध सामग्री पूरी तरह नष्ट न हो सकी थी । वे किले के भीतर अपनी रक्षा कर लेने में ही खैर मना रहे थे ।
3. जब राजा मर्दनसिंह ने सागर के किले को घेर लिया और अंग्रेजों के तोपखाने पर आक्रमण किया तो ब्रिगेडियर मिस्टर सेज ने उनके विरुद्ध अपनी सेना बढ़ाई ।
4. राजा मर्दनसिंह ने पेंतरा बदला और अपनी सेना को पीछे हटा लिया । परंतु अंग्रेजी सेना और आगे बढ़ने का साहस न कर सकी । अंग्रेजों ने किले का सहारा छोड़ना ठीक न माना मर्दनसिंह ने भी अपना घेरा तोड़ दिया और स्थिति जस की तस हो गई ।

(ध्वनि प्रभाव)

1. 17 सितंबर 1857 को राजा मर्दनसिंह ने सागर पर दोबारा आक्रमण किया। सागर नगर के राहतगढ़ द्वार पर विद्रोही बानपुर सेना के गोलों के धमाके गूंज उठे। (गोलों के धमाकों का ध्वनि प्रभाव)
2. दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ । राजा मर्दनसिंह अंग्रेजी सेना पर बाज की तरह टूट पड़े अंग्रेज सेनापति केप्टन डैलेल इस युद्ध में मारा गया । अंग्रेजी फौज की बहुत क्षति हुई और बानपुर के रणबांकुरों ने उसे खदेड़ दिया ।
3. झांसी सहित देश की राजनीति पल-पल में बदल रही थी । सागर से झांसी की ओर अंग्रेजी सेना को राजा मर्दनसिंह ने बढ़ने नहीं दिया ।
4. 6 जनवरी 1858 को इंदौर से सर ह्यूरोज ने सागर के लिए विशाल सेना के साथ कूच किया वह बानपुर के विद्रोहियों का खातमा कर देने को कुछ ज्यादा ही उत्साहित था ।
5. 24 जनवरी 1858 को ह्यूरोज राहतगढ़ पहुंच गया । राहतगढ़ ने भी इस बीच राजनीति के बहुत सारे उतार-चढ़ाव देख लिए थे । ह्यूरोज की सेना ने राहतगढ़ के किले पर गोले बरसाए । वह किले की एक दीवार तोड़ने में सफल हो गया ।
6. किले की दीवार टूटने का मतलब ह्यूरोज की सेना का किले में आसानी से प्रवेश और किले पर अधिकार कर लेना था ।

7 लेकिन ऐसा न हो सका, दीवार के टूटते ही पीछे से बानपुर के रणबांकुरे राजा मर्दनसिंह के नेतृत्व में ह्यूरोज की सेना पर टूट पड़े। ह्यूरोज की सारी सैनिक शक्ति दो भागों में बंट गई ।

8 यह सब देखकर ह्यूरोज यह निश्चय नहीं कर सका कि राजा मर्दनसिंह के उस आक्रमण का दृष्टिकोण क्या था? किले के भीतर से भी विद्रोही सिपाही लड़ रहे थे और बाहर से बानपुर के वीर तराना छेड़ते हुए अपना पराक्रम दिखा रहे थे।

फेड इन

समूह गान (या तो कोई रेडीमेड गीत दें जैसे - ''वतन के नौजवां वतन पर शहीद हों'' या फिर नया गीत भी दे सकते हैं)

धरती मां की आन है,
बानपुर की बान है
मर्दनसिंह की शान है, बढ़े चलो - बढ़े चलो ।
गोरा मन के कारे हैं
जिनके भाव दुधारे हैं
दुश्मन बने हमारे हैं, बढ़े चलो - बढ़े चलो ।
हों गोली की बौछारें
चमचम चमकें तलवारें
फौजें दुश्मन की हारें, बढ़े चलो - बढ़े चलो ।
गोरा दूर भगाना है
या फिर मर मिट जाना है
नया सबेरा लाना है, बढ़े चलो - बढ़े चलो ।
दिल उनका दहलाना है
गोरा नाम मिटाना है
आज़ादी अब लाना है, बढ़े चलो - बढ़े चलो ।
कसम तुम्हें है पानी की
मर्दनसिंह से मानी की
बुंदेला रजधानी की, बढ़े चलो - बढ़े चलो ।

(युद्ध की विभीषिका का ध्वनि प्रभाव)

फ्लश परिवर्तन

1 History of Indian Mutiny of 1857-58, Vol.V में स्पष्ट लिखा गया है कि "He (Raja of Banpur) came on with great boldness his standards flying and his men singing their National hymns."

(ध्वनि प्रभाव के साथ फ्लश परिवर्तन)

2 30 जनवरी 1858 को ह्यूरोज ने राजा मर्दनसिंह के विरुद्ध बरोदिया पर आक्रमण किया। एक ओर ह्यूरोज की विशाल सेना, तोपखाना आदि और दूसरी ओर मर्दनसिंह के थोड़े से सिपाही, वह भी अंग्रेजों के मुकाबले में शस्त्रहीन से ही ।

3 लेकिन बानपुर के रणबांकुरों ने यहां भी उन्हें छठी का दूध याद करा दिया । राजा मर्दनसिंह ने मालथोन के निकट नाराहट घाट पर ह्यूरोज का रास्ता रोका, ताकि वह झांसी की ओर न जा सके ।

4 ह्यूरोज ने अपना मार्ग बदल दिया । उसने मालथोन के रास्ते सिर्फ थोड़े से सिपाही राजा मर्दनसिंह को छलावा करने हेतु भेज दिए और स्वयं भारी फौज लेकर मदनपुर-मड़ावरा के मार्ग से निकलने में सफल हो गया । इस मार्ग में भी उसे शाहगढ़ के राजा बखतबली से युद्ध करना पड़ा । यदि मर्दनसिंह भी मालथोन छोड़कर यहां पहुंच पाया होता तो निर्णायक युद्ध यहीं समाप्त हो जाता ।

5 मार्ग के छोटे-मोटे किलों को ध्वस्त करता हुआ ह्यूरोज बानपुर जा पहुंचा । प्रथम समर के इस रण-क्षेत्र के योद्धा यहां थे ही नहीं ।

(तोपों के धमाकों का ध्वनि प्रभाव)

1 तोपों ने बानपुर के किले पर गोले बरसाना शुरू कर दिया । देखते ही देखते बानपुर का किला ध्वस्त हो गया । किले का वटवृक्ष मोती बंगला की अपनी दीवारों के टूट जाने पर भी मानो छत को दीवार के सहारे लिए ध्वस्त किले को छाया दे रहा था ।

2 इस प्रकार 10 मार्च 1858 को ह्यूरोज ने बानपुर पर अधिकार कर लिया । लेकिन बानपुर का शेर यानि राजा मर्दनसिंह उसके हाथ फिर भी नहीं आया। आता भी कैसे? अभी तो प्रथम समर की श्रीगणेश ही था।

3 तालबेहट - झांसी का समर अभी शेष था, जो ह्यूरोज के लिए लोहे का चना बना हुआ था बानपुर के बाद तालबेहट होती हुई ह्यूरोज की सेना झांसी की ओर कूच कर गई ।

4 और प्रथम समर की रणभूमि बानपुर मानो पराजित होकर भी रण के गीत गा रही थी ।

- आकाशवाणी भोपाल से साभार

बानपुर : बीता वैभव

– हरिविष्णु अवस्थी

बुन्देलखण्ड की भूमि को एक ओर प्रकृति ने मुक्त हस्त से सजाया संवारा है तो दूसरी ओर यहां के पूर्व शासकों ने इसके साज-श्रृंगार में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखी । परिणामस्वरूप आज भी अनेक ऐसे स्थल हैं जो अपनी कीर्ति पताका सारे विश्व में फहरा रहे हैं वहीं कुछ ऐसे भी स्थल हैं जो अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं । आवश्यकता है ऐसे स्थानों की खोज बीन कर उन्हें प्रकाश में लाने की । ऐसा ही एक स्थल है बानपुर ।

उत्तर प्रदेश के झाँसी संभाग में बुन्देलखण्ड के जिला ललितपुर से 34 कि.मी. और निकटवर्ती मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ नगर से 9 कि.मी. पश्चिम से वर्तमान बानपुर कस्बा अवस्थित है । लगभग 7000 आबादी वाला यह ऐतिहासिक महत्व का प्राचीन पावन स्थल, ब्रिटिश काल का विद्रोही और वर्तमान में आधुनिक प्रगति की नजरों से ओझल कालजयी कला केन्द्र है ।

महाभारत में बानपुर का 'बाणपुर' नाम से अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है । पौराणिक गाथाओं के अनुसार बाणासुर नाम का दैत्य यहां राज्य किया करता था, जिसके नाम पर ही कदाचित् इस स्थान का नाम बाणापुर पड़ा; जो कालान्तर में मुख-सुख से बानपुर कहलाने लगा आज भी बानपुर और टीकमगढ़ को मिलाने वाले मार्ग में प्रवाहित 'जामने' सरिता के सेतु को 'बाणाघाट' ही कहते हैं ।

इसी प्रकार पौराणिक प्रमाण के रूप में शिवभक्त 'बाणासुर' की पुत्री अनन्य सुंदरी 'ऊषा' के नाम पर 'ऊषाघाट' भी विद्यमान है । कहते हैं ऊषा इसी मार्ग से शिव की पूजा करने हेतु कूँड़ादेव (कुण्डेश्वर) जाती थी । 'बानपुर ग्राम से एक मील की दूरी पर स्थित 'नव द्वारियाँ (नव मठ द्वार) आज भी बानपुर से 'ऊषा कुण्ड' तक के सुरंग मार्ग का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं, जहां वर्तमान मड़िया-घाट पर ऊषा शिव जी की आराधना किया करती थी ।'[1]

बानपुर के संबंध में झांसी गजेटियर में भी ऐसा ही विवरण दिया गया है "A local tradition associates it with Banasur, a legendry demon king, after whom it is said to have been named."[2] ds-ds- 'kkg Hkh blh ls viuh lgefr O;Dr djrs gq, fy[krs gSa & "The village owes its name to the mythical demon Banasura who is supposed to have selected its as his capital, situated in latitude 24°43' and longitude 78°45'E on the bank of Jamini river."[3]

बानपुर का एक गौरवशाली इतिहास है । यहां के तत्कालीन नरेश मर्दनसिंह ने प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था । देश तो स्वतंत्र न हो सका, मर्दनसिंह परतंत्र हो गए । उन्हें क़ैद कर लाहौर की जेल में डाल दिया गया । "In 1842 Mardan Singh succeded him. He took active part in the freedom struggle of 1857 and in consequence was deprived of his kingdom and imprisoned at Lahore. His fine fort cum palace built on an eminence is now in a ruined state as it was practically destroyed by the British in 1857."[4] बानपुर नगर के मध्य में स्थित इस दुर्ग के भग्नावशेष, स्वतंत्रता सेनानी महाराजा मर्दनसिंह के त्याग और बलिदान के साक्षी के रूप में आज भी विद्यमान हैं

पुरा सम्पदा की दृष्टि से बानपुर को चन्देल काल से पूर्व का माना गया है – "In the neighbourhood of Banpur are scattered several vestiges of antiquity, even earlier than the Chandel."[5] बानपुर बुन्देलखण्ड के उन गिने-चुने स्थानों में से एक है, जहां हिन्दू धर्म एवं जैन धर्म का समान रूप से विकास हुआ है । ''बानपुर में जैन तथा हिन्दू धर्म का समान रूप से पल्लवन हुआ । फलतः दोनों धर्मों से सम्बंधित वास्तुखण्ड एवं प्रतिमाएं यहां प्राप्त हुई हैं ।''[6]

आज से 50-60 वर्ष पूर्व तक यहां हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियां यत्र-तत्र बिखरीं पड़ी थीं । "Beautiful statues of Mahadeva, Ganesha, Bhavani, Vishnu, Surya, Kali, Varaha etc. are seen everywhere, broken or entire. Ganesh Khera is an ancient site where there is a large elephant headed god, who possesses eighteen handes and measures 8'-0''x4'-0""[7] बानपुर का यह मूर्ति भण्डार कहां ग़ायब हो गया ? कोई नहीं जानता । बानपुर से शेषशायी विष्णु की एक आदमक़द मध्यकालीन प्रतिमा प्राप्त होने तथा राजकीय संग्रहालय झाँसी (मूर्ति सं. 81-188) में सुरक्षित होने का उल्लेख अवश्य डॉ एस.डी. त्रिवेदी ने किया है ।[8] गनेशपुरा में गनपति जी की मूर्ति तथा तीन विशाल नंदीगण की मूर्तियां ही शे:ा रह गयी हैं । सन् 1942 में स्वर्गीय पं. गौरीशंकर जी द्विवेदी 'शंकर' ने इस स्थान पर और भी मूर्तियों का दर्शन किया था । उन्होंने लिखा है ''कुछ आगे चलकर श्री गणेश जी की एक सुन्दर, प्राचीन और विशाल मूर्ति है । आजकल जहां पर यह मूर्ति है, उसके आस-पास कितनी खण्डित मूर्तियां पड़ी हैं; जिनमें नन्दीगण, जलहरी, शिवलिंग अधिकतर हैं । श्री गणेश जी की मूर्ति में बाइस भुजाएं बनी हैं ।''[9]

बानपुर की गणेश प्रतिमा की भुजाओं की संख्या के सम्बंध में विभिन्न विद्वानों ने उनकी संख्या अलग-अलग बताई है । पूर्व वर्णन में पी.सी. मुखर्जी ने अठारह तथा गौरीशंकर द्विवेदी ने बाईस भुजाओं का उल्लेख किया है । एस.डी. त्रिवेदी के अनुसार – ''बानपुर गॉव से दो किलोमीटर आगे गणेशपुरा में नृत्य गणपति की अठारह भुजी विशाल प्रतिमा लगी हुई है ।''[10] श्री कैलाश मड़बैया के अनुसार – ''बानपुर के उत्तरी भाग में बड़े तालाब के निकट पार्वती नंदन गणेश की बाईस भुजाओं वाली विशाल मूर्ति दर्शनीय है ।''[11] के.के. शाह के अनुसार – :Ganesha temple stands inside a neighbouring village only the chief image has claim to our notice. Endowed with no less than twenty four arms, and holding a variety of weapons and objects, the god has found here a remarkable representation."[12] झाँसी जिला गजेटियर में बानपुर की गणेश मूर्ति का तो उल्लेख अवश्य हुआ

है किन्तु उसमें भुजाओं की संख्या नहीं दी गई है । उक्त विवरण में किसी विद्वान ने भुजाओं की संख्या अठारह, किसी ने बाईस तथा किसी ने चौबीस बतलाई हैं । भुजाओं की संख्या में भिन्नता का कारण, भिन्न-भिन्न ग्रंथों में दी गई सत्य/असत्य जानकारी को बिना सत्यापन अथवा अवलोकन के ज्यों का त्यों उद्धृत कर देना है । वास्तव में गणेश जी की इस मूर्ति में बाईस भुजाएं ही विद्यमान हैं; न अठारह और न चौबीस ।

यहां पर प्रमुख आकर्षण का केन्द्र है, सहस्रकूट चैत्यालय । ''बानपुर का मंदिर चतुष्कोणीय अधिष्ठान पर निर्मित है । इसके गर्भ गृह में सर्वतोभद्र सहस्रकूट का प्रतिष्ठापन है ।''[13]लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व निर्मित यह चैत्यालय चन्देलकालीन, भारतीय वास्तु एवं शिल्प का अद्वितीय उदाहरण है । चैत्यालय का बाह्य एवं आंतरिक दोनों भाग ऊपर से लेकर नीचे तक देव प्रतिमाओं एवं अलंकरणों से शोभित है । टीकमगढ़ जिले में स्थित जैन तीर्थ अहार में अठारह फुट ऊँची विशालकाय भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा के पाद पीठ पर एक शिलालेख है, जिसके अनुसार ''जिन्होंने बाणपुर में एक सहस्रकूट चैत्यालय बनवाया । वे गृहपति वंश रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य के समान श्रीमान देवपाल यहां हुए ।''[14] इस लेख में उनकी आगे की पीढ़ियों की नामावली दी गई है । श्री जाहड़ और उदयचन्द भ्राता द्वय द्वारा संवत् 1237 में अहार क्षेत्र में शांतिनाथ भगवान के विग्रह की स्थापना कराई गई । इसमें मूर्तिकार वाल्हण के पुत्र महामतिशाली मूर्ति निर्माता और वास्तुशास्त्र के ज्ञाता 'पापट' के नाम का भी उल्लेख है । इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि बानपुर स्थित सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण देवपाल ने (जो वसुहाटिका वर्तमान अहार के निवासी थे) कराया था । इसका वर्णन करते हुए के.के. शाह ने लिखा है कि - "The sole surviving monument of our interest here is a Jaina temple curiously called Banpur ke linga. As a matter of fact, it is Sahasrakuta Chaityalaya intended to symbolize 1008 auspicious qualities of a Jina's body. Modest though in size, with richly carved doorways and Jangha it has an appeal and charm of its own."[15]

इसी परिसर में चार मंदिर और हैं । प्रथम मंदिर का शिखर नागर शैली में निर्मित सबसे ऊँचा है । मंदिर के गर्भगृह में विराजमान भगवान ऋषभनाथ की प्रतिमा के पाद-पीठ पर संवत् 1142(1085 ई0) अंकित है । संगमरमर के श्वेत पाषाण से निर्मित यह कायोत्सर्ग प्रतिमा डेढ़ फुट की ऊँचाई में है । इसी से सटा हुआ द्वितीय देवालय है । इसके बाह्य भाग में भगवान शांतिनाथ की देशी पाषाण से निर्मित आठ फुट ऊँची प्रतिमा दर्शनीय है । मूर्ति की मुखाकृति खण्डित है । इसी मंदिर में भगवान महावीर की कायोत्सर्ग प्रतिमा विराजमान है । प्रतिमा के दोनों पार्श्वों में यक्ष-यक्षी युगल तथा ऊपर ध्यानी तीर्थंकर निरूपित किये गये हैं । यहां प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबली की एक कलात्मक प्रतिमा भी स्थापित है ।[16]

तृतीय मंदिर जिसे मध्य का मंदिर भी कहा जा सकता है । अपने वास्तु के कारण यह मंदिर भव्य एवं आकर्षक है । गर्भगृह में विराजमान भगवान ऋषभनाथ की ध्यान मुद्रा की यह प्रतिमा मनोहारी है । कंधों पर फैली केशराशि देखते ही बनती है । पाद-पीठ पर दो सिंहों के मध्य वृषभ की मूर्ति उत्कीर्ण है । जिससे स्प:ट हो जाता है कि प्रतिमा आदिनाथ की ही है । इसी में भगवान चन्द्र प्रभु की धवल संगमरमर की पद्मासन मूर्ति विराजमान है, जिसकी चरण चौकी पर संवत् 1541 (सन् 1484 ई.) अंकित है । इसके अतिरिक्त इस मंदिर में विभिन्न आकार-प्रकार की अनेक मूर्तियां आलों में जड़ी हुई हैं ।

चतुर्थ मंदिर, जिसे सामान्य जन 'बड़े बाबा का मंदिर' कहते हैं, में अठारह फुट ऊँची भगवान शांतिनाथ की भव्य एवं विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठित है । मूर्ति की चरण चौकी पर संवत् 1001 अंकित है । शिलालेख अपठनीय स्थिति में है । यह मूर्ति भी खण्डित है । इस मूर्ति के बायीं ओर 7 फुट ऊँची और विराजमान है, जिसे भगवान कुंथुनाथ की प्रतिमा बताया जाता है । भगवान शांतिनाथ के दाहिनी ओर भी सात फुट ऊँची भगवान अरहनाथ की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है । मंदिर में एक साथ तीन तीर्थंकरों के दर्शन करने से आत्मिक शांति प्राप्त होती है और दर्शनार्थी अभिभूत हो जाता है ।

सहस्रकूट चैत्यालय मंदिर परिसर के संग्रहालय में अनेक मूर्ति खण्ड संग्रहीत हैं । इनमें से एक शिलाखण्ड अत्यंत महत्वपूर्ण है । इस शिलाखण्ड के संबंध में के.के. शाह ने लिखा है - "A rare representation among these is that of Adinath with one caubisi on each side. Flanking the chief deity on either side are Parsvanatha and Suparsvanath making the whole composition signify the concept of triple caubisi, those of the past and future alongwith that of the present."[17] बानपुर के वर्तमान से, उसके मध्यकाल की संपन्नता की कल्पना सहज ही की जा सकती है । भारत के कुछ मुग़ल शासकों के बर्बरतापूर्ण मूर्ति-भंजन अभियान के पूर्व तक यह ग्राम जैन एवं जैनेतर धर्मावलंबियों का एक श्रे:ठ तीर्थ एवं संपन्न नगर रहा होगा । The town originally was a large one, and the several mounds ascribed to the betel leaf growers (Tambulies land) evidence to their supporting the luxury of large population.[18] आततायियों की संकीर्ण मनोवृत्ति का शिकार हुए यह देवालय एवं भग्न प्रतिमाएं सैकड़ों वर्षों तक अपवित्र तथा अपूज्य मानकर समाज की उपेक्षा के कारण और ध्वस्त होती गईं ।

आज़ादी के बाद आई जन-चेतना के कारण समाज ने अपनी इस बहुमूल्य धरोहर के मूल्य को समझा और इनकी साज-सँभार के प्रयास आरंभ हो गए । पुरा सम्पदा के रूप में विद्यमान देवालयों एवं खंडित मूर्तियों की सुरक्षा के प्रति आई इस जन-चेतना को देखकर, अब यह निश्चित हो चला है कि अगले पचास वर्षों में, सैकड़ों-हजारों व:र्ा प्राचीन यह क्षेत्र पुनः अपने आदि(मूल) वैभव को प्राप्त कर लेगा।

संदर्भ ग्रंथ -

1. बुन्देलखण्ड का विस्मृत वैभव - बानपुर, कैलाश मड़बैया, पृ0 5-6
2. झाँसी जिला गजेटियर, पृ0 328
3. Ancient Bundelkhand by K.K. Shah, page 68
4. झाँसी जिला गजेटियर, पृ0 328
5. Gazetteer of Archeological places in the district of Lalitpur by Mukerji P.C., page (B.V.V.B.72)
6. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व लेखक, डॉ एस.डी. त्रिवेदी, पृ0 73
7. क्रमांक 5 के विवरण अनुसार
8. क्रमांक 6 के विवरण अनुसार, पृ0 47
9. मधुकर पाक्षिक वर्ष 2 अंक 17 (1 जून 1942 ई0) लेख बानपुर, गौरीशंकर द्विवेदी, पृ0 17
10. क्रमांक 6 के विवरण अनुसार, पृ0 50
11. क्रमांक 1 के विवरण अनुसार, पृ0 33
12. क्रमांक 3 के विवरण अनुसार, पृ0 67
13. क्रमांक 6 के विवरण अनुसार, पृ0 36
14. श्री 1008 दि0 जैन सिद्ध क्षेत्र अहार जी संक्षिप्त परिचय - बारेलाल जैन राजवैद्य मंदिर सं0 1 शिलालेख की हिन्दी टीका
15. क्रमांक 3 के विवरण अनुसार, पृ0 68
16. बुन्देलखण्ड दर्पण सप्तम बिंब (झांसी महोत्सव 1999) डॉ अंबिका प्रसाद सिंह, पृ0 55
17. क्रमांक 3 के विवरण अनुसार, पृ0 68
18. क्रमांक 5 के विवरण अनुसार ।

- अवस्थी चौक, किले का मैदान, टीकमगढ़ (म0प्र0)

बुन्देलखण्ड प्रकृति और पुरुष-पी.एन. रुसिया अभिनन्दन ग्रंथ से साभार

स्वातंत्र्य समर के अमर योद्धा बानपुर नरेश मर्दन सिंह

- पं0 बाबूलाल द्विवेदी

महाभारत काल से ही लब्धप्रतिष्ठ ऐतिह्य महत्वपूरित किंतु वर्तमान में प्रगति की दृष्टि से ओझल अतीत के विकसित रहे राज्य - तहसील और अब परगना के रूप अभिज्ञात ग्राम बानपुर का नाम यहां के राजा मर्दनसिंह के कारण सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा । वर्तमान चंदेरी, तालबेहट, ललितपुर एवं महरौनी आदि स्थान इसी राज्य के अंतर्गत आते थे । सन् 1857 के स्वातंत्र्य समर के अमर योद्धा महाराजा मर्दनसिंह यहीं के राजा थे ।

मर्दनसिंह का जन्म 19.10.1802 ई0 आश्वनि शुक्ल शरद पूर्णिमा संवत् 1859 को चंदेरी में हुआ था । मर्दनसिंह का जन्ममहोत्सव उनके पिता मोदप्रहलाद ने तालबेहट के किले में संपन्न करवाया था । चंदेरी के राजा रामचंद्र के चार पुत्र - प्रजापाल, मोद प्रहलाद, भुवनपाल तथा चित्रसिंह - थे । प्रजापाल अविवाहित रहे। रामचंद्र के दूसरे पुत्र और मोदप्रहलाद का विवाह ग्राम खुटगुवां के परमार पर्वत सिंह की पुत्री राजकुंवर से हुआ था । राजा मर्दनसिंह इन्हीं की कोख से उत्पन्न हुए थे ।

कट्टर सनातन धर्मानुयायी राजा रामचंद्र कतिपय सामाजिकता-निर्वाह एवं अस्वस्थता वश अपने ज्ये:ठ पुत्र प्रजापाल को सन् 1801 ई0 में राज्य सौंपकर अयोध्या वास करने लगे थे । रजवारा के तत्कालीन रावसाहब उमरावसिंह ने अपने एक निकट के रिश्तेदार नत्थूराजा पिपरासर वालों को कूटनीति से चंदेरी नरेश घोषित करा दिया । इस पर अयोध्या में वास कर रहे राजा रामचंद्र ने अपने पास आए पुत्रों से रजवारा की गढ़ी तुड़वाकर उसकी पांच ईंटें नजर करने के लिए कहा। प्रजापाल इसी रजवारा युद्ध में सन् 1802 में खेत रहे । सहजाद नदी के सुरई घाट पर इसके साक्ष्य अब भी देखे जा सकते हैं । पुत्र शोक में वृद्ध राजा रामचंद्र की मृत्यु के पश्चात सन् 1802 ई0 में ही राज्य का भार उनके मझले पुत्र मोदप्रहलाद पर आ गया । विभाजन में भुवनपाल (सूबा साहिब) ग्राम भैलोनी तथा चित्र सिंह मथरा (बार) की जागीर प्राप्त कर अपना राज-काज करते रहे ।

मोदप्रहलाद विलासी प्रकृति के थे । इन्होंने साध्वी रानी राजकुंवर के अतिरिक्त सात विवाह और कर लिए । किशोर सिंह परमार जमूसर की पुत्री भानकुंवर, अनिरुद्ध सिंह परमार बाघाट की बेटी छुट्टन कुंवर (गजसिंह और रणजीत सिंह की माता), नथनजू परमार कैलगुवां की पुत्री गुमान कुंवर, हीराजू परमार खिरिया छतारा की पुत्री नंदकुंवर, बहादुर सिंह परमार की बेटी मनलकुंवर, दरयावसिंह परमार अमौरा की बेटी लाड़कुंवर तथा सामंतसिंह परमार गुरयाना की नातिनी रामकुंवर (राजकिशोरी); इन सबको मोदप्रहलाद की रानी होने का गौरव प्राप्त था। इतना ही नहीं, राजा के हरम में 23 वेश्याएं भी सदैव रहा करती थीं ।

अराजकता और विलासिता के चलते अवनति के उस दौर में ग्वालियर के तत्कालीन नरेश दौलतराव सिंधिया का अपने फ्रांसीसी सहायक सेनानायक जॉन वेप्टिस की सहायता से चंदेरी राज्य पर अधिकार हो गया । मोद प्रहलाद को सन् 1810 ई0 में सिंधिया से घबराकर श्याम जी के चौपरा की हवेली झांसी में शिवरामभाऊ के संरक्षण में शरण लेनी पड़ी । आरजू मिन्नत पर ग्वालियर नरेश से 25000 वार्षिक पेंशन एवं चंदेरी राज्य के दो परगना दूधई और खजुरिया मोदप्रहलाद को वापस मिल गए । राजा तालबेहट के किले में रहने लगे । अवर्णनीय विलासिता और अव्यवस्था की स्थिति अनुकूलता में उनके दो:ाों का विकास होता गया । इस पर प्रजा में असंतो:ा बढ़ गया । परिणामस्वरूप 1811 ई0 में तालबेहट के किले सहित चंदेरी राज्य के सभी छः सौ साढ़े पंचानबे गांवों से पुनः हाथ धोना पड़ा । मोदप्रहलाद को अपनी ससुराल ग्राम कैलगुवां को राजधानी बना वहीं गढ़ी का निर्माण करा मात्र 30 गांवों की मालगुजारी पर सन् 1815 से 1830 ई0 तक 15 व:ाों तक आश्रित रहना पड़ा ।

मर्दन सिंह की आयु उस समय 28 वर्ष थी । पारिवारिक कलह एवं पिता की मदन सभाओं को देखकर मर्दनसिंह दु:खी रहने लगे । उस समय सारा देश अराजकता के भयावह दौर से गुजर रहा था । दिल्ली की गद्दी पर कहने मात्र को मुग़ल वंशी अकबर द्वितीय का राज्य था । 'खल्क खुदा का, मुल्क बादशाह का, पर हुक्म कंपनी सरकार का ।' सभी को मानना पड़ता था । क्या राजा, क्या रंक; सभी कंपनी सरकार (अंग्रेजों) के इशारे पर नाचते थे । कहीं पिंडारी, कहीं मराठी तो कहीं स्थानीय जागीरदार जनता में लूटखसोट करते । प्राकृतिक आपदाओं का बाहुल्य कोढ़ में खाज का काम करता । प्रति 4-5 वर्षों में एक बार अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि होती; ऐसे में यहां के लोगों का लुटेरा बनना विवशता थी ।

मराठों के झांसी राज्य में रामसिंह राजपूत, बुद्धा, नूरखां मुसलमान, मनीराम, बदलू लोधी, बुदई फिरंगिया, छोटू ब्राह्मण, हीरा अहीर, मंगे नाई, अमीर खां पिंडारी आदि डाकुओं के गिरोहों का बोलबाला था, जो समूचे बुंदेलखण्ड में तहलका मचाए हुए थे । मर्दनसिंह के दोनों भाई अधिकांश अपनी ननिहाल बाघाट में रहा करते थे। वे भी कुसंगति में पड़कर बाग़ी बन गए ।

मर्दनसिंह को घर में एकमात्र सहारा अपनी परम विदुषी धर्म पत्नी भोजकुंवर (रत्नेश रानी) का ही था । भोजकुंवर ग्राम सुनवाहा के धीरज सिंह धंधेरे की पौत्री और विशुन सिंह की बेटी थी तत्कालीन परिस्थितियों में मर्दनसिंह ने अपनी सूझ-बूझ से बानपुर के

जागीरदार अपने पूर्वज धीरज सिंह (रंधीर सिंह) के वंशजों को बानपुर के बदले गदयाना की जागीर लेने को राजी कर लिया । वे जॉन वेप्टिस - जिसे चंदेरी विजय के उपलक्ष्य में ग्राम जरया की जागीर प्राप्त थी - से मेलजोल बढ़ाकर अपनी सेना को पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षित कराते रहे । चंदेरी राज्य में छः सौ साढ़े पंचानबे ग्राम, जिनमें पादारखी और माफी के 47 ग्राम छोड़कर, कुल छः सौ साढ़े बावन ग्राम आते थे । इस राज्य का बंटवारा सिंधिया के दीवान किश्ना जी, आत्माराम, मुख्तार राखन पुरोहित, वकील नौने बहादुर सिंह, चौधरी शोभा सिंह, कर्नल जॉन वेप्टिस के मध्य दो तिहाई भाग ग्वालियर राज्य में तथा एक तिहाई भाग मोदप्रहलाद एवं उनके सभी भाई-बंधुओं को दे दिया गया । यह बंटवारा खजुरिया में हुआ था । मर्दनसिंह उस समय अपने पिता के साथ थे । सन् 1830 ई0 में बानपुर राज्य स्थापित हुआ और 12 वर्ष तक मोदप्रहलाद बानपुर के राजा रहे । अब तक मर्दनसिंह के तीन पुत्र महीपत सिंह, शेरसिंह और गिरवर सिंह हो चुके थे ।

मर्दनसिंह अपना अधिकांश समय सैन्य शक्ति बढ़ाने हेतु गांव-गांव भ्रमण करने में बिताते थे । उन्हें एक ओर मराठों द्वारा की जा रही लूटपाट और दूसरी ओर अंग्रेजों द्वारा निर्दोष प्रजा पर किए जा रहे अत्याचार असह्य हो रहे थे । तालबेहट में अपने राजवंश के प्रति घृणास्पद जनश्रुतियों के कारण मर्दनसिंह का आवागमन भी कम हो गया था । मर्दनसिंह ने खंगार, नट, ठाकुर, लोधी, घोषी, यादव आदि जातियों के अपने दुःसाहसी साथियों को गुरिल्ला पद्धति से युद्ध लड़ने हेतु तैयार किया । उन्होंने अपने दोनों भाईयों को जैसे-तैसे समझा-बुझाकर बार की गढ़ी की सुरक्षा में नियुक्त किया । सन् 1842 ई0 में मोदप्रहलाद की मृत्यु हो गई । बानपुर में मात्र रजवारा रावसाहब और चौधरी खेतसिंह फौजदार को छोड़कर आए हुए सभी जागीरदारों के बीच मर्दनसिंह का 1842 में राज्याभिषेक हुआ ।

मर्दनसिंह ने सुरक्षा की दृ:िट से अपने पिता की अवशे:ा तीन परिणीता रानियां तथा बीस रखैलों को कैलगुवां की गढ़ी में पुरोहित ओर परिचरों के साथ भेज दिया। मात्र जमुनाबाई बानपुर की हवेली में रह गईं ।

युवराज महीपत सिंह अपने पिता मर्दनसिंह के पद चिन्हों पर चलते हुए उनके हर काम में हाथ बंटाते रहे । इसी बीच बानपुर राज्य की सीमा से लगे हुए शाहगढ़ राज्य सिंहासन पर मर्दनसिंह के वंश गोत्रज राजा बखतबली आसीन हुए । मर्दनसिंह की ममेरी बहिन बखतबली सिंह को ब्याही थी । पितृपक्ष की ओर से इनमें काका भतीजे का रिश्ता बैठता था । अंग्रेजों की कूटनीति और दुर्व्यवहार से दोनों राजा संत्रस्त थे, जिससे इनकी मित्रता और प्रगाढ़ होती गई । महरौनी में उस समय के सबसे हृष्ट-पुष्ट रंधीर घोषी तथा बमराना के पं0 केशरीसिंह टोंटे (टारौ टरे न टौटिया सिंहे ठोकर देय) जैसे बहादुर साथियों ने इन्हें पूर्णरूपेण साथ निभाने का वचन पहले ही दे रखा था । ग्राम संसुवा-बगौरा, पठा, ककरुवा, सिंदवाहा, नाराहट, भैरा, सैदपुर, मड़ावरा, जाखलौन आदि के साहसी व्यक्तियों के साथ मर्दनसिंह ने बारात का रूप बना लिया था । इस बारात के साथ मर्दनसिंह अंग्रेजों द्वारा शासित खिमलासा को लूटकर लगभग सवा मन सोना और इतनी ही चांदी से अपना सैन्यबल बढ़ा लिया । धीरे-धीरे तालबेहट में भी स्थिति सामान्य हो चली सन् 1844 ई0 में मर्दनसिंह के तालबेहट पहुंचने पर उनका वहां के गणमान्य नागरिकों द्वारा राज्याभिषेक किया गया । यहीं से मर्दनसिंह झांसी में गणेश मंदिर में हो रहे मोरोपंत की पुत्री मनु (लक्ष्मीबाई) का राजा गंगाधर राव के साथ हो रहे विवाह में सम्मिलित हुए । अब मर्दनसिंह को प्रजा का भी भरपूर सहयोग मिलने लगा था । 21.11.1853 को झांसी नरेश गंगाधर राव की मृत्यु होने पर मर्दन सिंह झांसी पहुंचे । उन्होंने वहां रानी को सांत्वना दी और अंग्रेजों की कुचालों को समझते हुए रानी से गहन मंत्रणा की । इस बीच मर्दनसिंह का अनेक स्वातंत्र्य समरवीरों, विद्रोहियों तथा स्वराज प्रेमियों से संपर्क होता रहा । मार्च सन् 1854 में लार्ड डलहौजी के आदेशानुसार रानी को बाहर निकालकर अंग्रेजी हुकूमत का झण्डा 'यूनियन जैक' झांसी के किले पर फहरा दिया गया । समूचा देश अंग्रेजों के अत्याचारों से व्याकुल था । इस कारण विद्रोह की स्थिति बनी । झांसी में इसके लिए 31 मई 1857 रविवार का दिन तय हुआ ।

पाह से पठौनी में प्राप्त अलवेला नामक घोड़े पर बैठकर समर नेतृत्व संभाले रणबांकुरे वीर योद्धा मर्दनसिंह पूर्व निर्धारित गुप्त योजना के अनुसार झांसी पहुंच गए । वहां उन्होंने रानी से विचार विमर्श किया और किले के हवलदार गुरुबख्श सिंह की सहायता से अंग्रेजों को भगाकर 8.6.1857 को किले से 'यूनियन जैक' उतार फेंका । उधर दिनांक 12.6.1857 को सूबेदार दिमान अर्जुन सिंह बनैरया के नेतृत्व में ललितपुर में भी बगावत हो गई । मसौरा में 13 जून को मर्दनसिंह की मुठभेड़ अंग्रेजों के साथ हुई । जिसमें अंग्रेज वहां से भागने को विवश हो गए । वीर मर्दनसिंह की कूटनीतियों का फिरंगियों को पता नहीं चल पाता । युद्ध में पलायन करते हुए भागे जा रहे लेफ्टिनेंट अर्विन को युवराज महीपत सिंह ने कल्यानपुरा में शरण दे दी । युवराज उस समय अपनी पत्नी कमलकुंवर (रंधीरसिंह परमार उगौरा की बेटी) सहित कल्यानपुरा में आवास बनाए हुए थे । मर्दनसिंह की नीति वस्तुतः अंग्रेजों के पेट में ही घुसकर विस्फोट करने की थी, जिससे वे अंग्रेजों के असहाय बच्चों तथा अबलाओं को एक ओर शरण देकर अपने क्षत्रिय धर्म का भी पालन करते थे, दूसरी ओर मर्दनसिंह अपनी सैन्य शक्ति को धीरे-धीरे बढ़ाकर अंग्रेजों को उनकी राह तक पहुंचा देना चाहते थे । इसी क्रम में मर्दनसिंह अपने 5000 विद्रोहियों का दल बना लिया था । उन्होंने खुरई-खिमलासा को वहां के तत्कालीन तहसीलदार अहमदबख्श के सहयोग से जीतकर राव पदमसिंह पाटन को सौंप दिया था । इस पर क्षुभित होकर अंग्रेजों ने 10 जुलाई शुक्रवार को मर्दनसिंह से चंदेरी व ललितपुर छीन लेने का आदेश दे दिया । छुपते-छुपाते रणबांकुरे बुंदेला वीर ने 17 सितंबर को सागर पर आक्रमण कर गुरिल्ला पद्धति से युद्ध करते हुए अंग्रेजों की आंखों में धूल झोंक दी । ठनगना की घाटी पर कई दिनों तक युद्ध चलता

रहा, जिसमें मर्दनसिंह के साथी शाहगढ़ नरेश बखतबली को पराजित होना पड़ा । सर ह्यूरोज इंदौर से चलकर बढ़ता हुआ चला आ रहा था । उसने सागर से बरोदिया गढ़ी को तोड़ मालथोन होते हुए मदनपुर आए वहां उसने किलेदार जगदेव के सहयोग से 8 मार्च को खण्डेराव अंबानी मड़ावरा की गढ़ी तोड़ दी तदुपरांत ह्यूरोज ने 9 मार्च को कुम्हैड़ी, 10 मार्च को महरौनी तथा 11 मार्च 1858 को बानपुर आकर नत्थेखां के लड़के काले खां से तोप चलवाकर यहां के किले को ध्वस्त करा दिया । 12 मार्च को बिनोरी, 13 मार्च को जमालपुर तथा 14 मार्च को तालबेहट का किला मिटा दिया गया । इसी बीच 13.3.1858 को दुर्भाग्य से विद्रोही क्रान्तिकारियों को रसद देकर अपनी राष्ट्रभक्ति को सर्वोपरि मानने वाले पं0 दुलारे मिश्र मसौरा का देहांत हो गया । दुखी हृदय मर्दनसिंह बखतबली के साथ बरुआसागर होते हुए झांसी पहुंचे । इस समय जिंगनी नरेश का पूर्ण सहयोग रहा। इन लोगों ने 3 अप्रैल 1858 को झांसी का किला पुनः लक्ष्मीबाई के अधिकार में करवाने में सफलता प्राप्त की अंग्रेजों से युद्ध करते-करते रानी झांसी की मृत्यु के समाचार को सुनकर मर्दनसिंह की छाती पर मानो पत्थर पड़ गया । वे बखतबली के साथ मोरार के जंगलों में 28.9.1858 को चले जा रहे थे अब इस रणबांकुरे के पास आत्मसमर्पण के अतिरिक्त कोई चारा न रह गया था । यहां पकड़े जाने पर दोनों मित्रों को लाहौर जेल भेज दिया गया । वहां से मर्दनसिंह के अनुरोध पर फिर मथुरा जेल में परिवर्तित कर दिए गए । मर्दनसिंह का अनुरोध था कि हमारी मातृभूमि में ही हमें रखा जाए 29 दिसंबर 1872 को शाहगढ़ नरेश के महाप्रयाण कर गए । 22.7.1879 मंगलवार को भगवान कृष्ण के पावन लीला धाम वृंदावन में यह रणबांकुरा देशभक्त नित्यलीलालीन हो गया ।

जब-जब झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनके सहयोगियों की चर्चा होगी, तब-तब बानपुर नरेश मर्दनसिंह का स्मरण अवश्यमेव किया जाएगा । मर्दन सिंह पर बानपुर को सदैव गर्व रहेगा हम सीना तानकर कह सकते हैं कि हम रानी झांसी के सहयोगी राजा मर्दनसिंह के क्षेत्र से हैं । मर्दनसिंह की कीर्ति-सुरभि लोकमानस में युगों-युगों तक जीवित रहकर दिग-दिगंत को सौरभित करती रहेगी। उनकी यशपताका हिन्दी साहित्यकार डॉ कृष्णानंद हुण्डैत की इस फाग के माध्यम से स्मरणीय है

धन-धन भूप बानपुर वारौ, जिनने लर कैं मौरा मारो ।
सैन फिरंगिन की सागर से चल बरोदिया आयी ।
उनकी करी कठिन की रन में खड्गन से पौनाई ।
गिनती के लै ज्वान संग में बाज झपट्टा मारौ ।
फौज फिरंगी पीछे छोड़ी तक सागर कौ द्वारौ ।
धन-धन भूप बानपुर वारौ, जिनने लर कैं मौरा मारो ।

संदर्भ-स्रोत

1 तवारीखे चंदेरी
2 तवारीखे झांसी
3 झांसी गजेटियर
4 ललितपुर गजेटियर
5 क्रान्ति-पथ, श्रवण कुमार त्रिपाठी तालबेहट
6 बुंदेलखण्ड का वृहद् इतिहास, डॉ के.पी. त्रिपाठी
7 बुंदेलखण्ड : प्रकृति और पुरुष, संपादक कैलाश बिहारी द्विवेदी एवं अन्य
8 बुंदेलखण्ड का इतिहास, पं0 गोरेलाल तिवारी
9 ओरछा का इतिहास, लक्ष्मण सिंह गौर
10 महारानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा
11 माझा प्रवास - वि:णु भट्ट गोडशे (आंखों देखा गदर - अनुवादक अमृतलाल नागर)
12 लेखक की अप्रकाशित पुस्तक 'बानपुर का 1857 का स्वतंत्रता संग्राम'

- 'मानस मधुप', साहित्यायुर्वेद रत्न' ग्राम छिल्ला (बानपुर)
जनपद - ललितपुर

राजा मर्दन सिंह बानपुर और चन्देरी का मुद्दा

-डॉ0 काशीप्रसाद त्रिपाठी

बानपुर के राजा मर्दन सिंह ओरछा के महाराज मधुकर शाह (सन् 1554-1592 ई0) के ज्येष्ठ पुत्र राम शाह के वंशज थे। राम शाह जो 1592 ई0 ओरछा के राजा बने थे, उन्हें सम्राट जहांगीर ने 1605 ई0 में गद्दी से हटाकर तीन लाख रूपया वार्षिक आय की बार की जागीर दी थी। राम शाह बार में स्थापित हुये कि 1612 ई0 में स्वर्गवासी हो गये। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके मृत ज्येष्ठ पुत्र संग्राम सिंह के ज्येष्ठ पुत्र भरत सिंह बार जागीर दार बने थे। वह बड़े पराक्रमी एवं महत्वाकाँक्षी थे। उन्होंने सन् 1616 में चंदैरी के सूबेदार गोदा राय पर चढ़ाई कर उसे लड़ाई मे पराजित कर चंदैरी प्राप्त कर सन् 1617 ई0 में उस उसे अपनी राजधानी बना ली थी।

भरत सिंह ने चंदैरी का राजा बनते ही चंदैरी राज्य को 4 प्रशासनिक इकाईयों में दुदाही संभाग, हर्षपुर (बासी) संभाग, गोल कोट (ईशागढ़) संभाग और भानगढ़ संभागों में विभक्त कर सुव्यवस्थित शासन स्थापित कर लिया था। भरत सिंह के छः छोटे भाई भी थे। जिन्हें क्रमशः कृष्ण सिंह को बाँसी, रूपसिंह को विजराठा, कीर्तिसिंह को ककराना, ध्रुव सिंह को खड़ेसरा, चंद्रभान को जामुनधाना एवं मानसिंह को डाँग बरौदा की जागीरें दे दी थी।

सन् 1630 ई0 में भरत सिंह की मृत्यु के पश्चात क्रमशः देवीसिंह (1630-63) दुर्ग सिंह (1663-87) दुर्जन सिंह (1687-1736) मान सिंह (1736-50) रहे थे। मानसिंह ने अपने तीसरे पुत्र धीरजसिंह को बानपुर की जागीर दे दी थी। राजा मानसिंह की मृत्यु के उपरान्त अनुरूद्ध सिंह (1750-75) रामचंद्र (1775-1802) प्रजापाल (1802) एवं भाई मोर प्रहलाद (1802-42) चंदैरी कैलगुवाँ में राजा रहे थे।

मोर प्रहलाद के समय चंदैरी राज्य, सागर के मराठा मामलतदार रघुनाथ राव (अप्पा साहब) एवं ग्वालियर के सिंधिया की वैमनस्यता एवं छीना झपटी के द्वंद्व युद्ध की चपेट में फँस गया था। सागर के मामलतदार के प्रभाव को कम करने के लिये सिंधिया ने सन् 1810 में अपने फ्रेंच सेनापति जॉन वैप्टिस्ट को चन्दैरी राज्य पर आक्रमण करने भेज दिया था। जिसने चंदैरी तालबेहट, बांसी, कोटरा, ननौरा, रजवारा, ललितपुर, मालथौन, जाखलौन, जेवरा, देवगढ़ एवं महरौनी इलाकों को छीनकर सिंधिया राज्य में शामिल कर लिया था। वैप्टिस्ट ने तो इस क्षेत्र की सुरक्षा के लिये अपने नाम पर मालथौन घाटी के वाम किनारे ''कर्नलगढ़ किला'' बनवाया था। इस उपलक्ष्य में सिंधिया ने प्रसन्न होकर जॉन वैप्टिस्ट को महरौनी इलाके में जरया ग्राम की जागीर दे दी थी। बुन्देलखण्ड में जरया एक मात्र फ्रेंच जागीर थी जो सन् 1947 तक स्थापित रही थी। सागर के मामलतदार रघुनाथ राव के मोंरा जी मराठा मड़ावरा और बालाबेहट क्षेत्र लेकर ही सन्तुष्ट हो गये थे।

सन् 1810 में मोर प्रहलाद जॉन बैप्टिस्ट के भय से झाँसी के मराठो की सुरक्षा में झाँसी भाग गये थे तथा श्याम जी के चौपरा की हवेली में रहे थे। वहाँ वह 3 बर्ष रहे। जब जॉन वैप्टिस्ट ग्वालियर लौट गया था तब मोर प्रहलाद लौट कर चन्दैरी के बजाय कैलगुवाँ के किले में रहने लगे इस समय उनके अधिकार में केवल 30 गाँव रह गये थे। कैलगुवाँ के किले में मोर प्रहलाद 15 बर्ष रहे। कैलगुवाँ में रहते हुये उन्होंने सिंधिया के बलात् आक्रमण की शिकायत बुन्देलखण्ड में कम्पनी सरकार के राजनैतिक प्रतिनिधि के पास हमीरपुर की थी। जिसके निराकरण के लिये मीर मुंशी बांदा, जीन वैप्टिस्ट ग्वालियर और मोर प्रहलाद की संयुक्त बैठक ग्राम सुनवाही में हुई थी। जिसमें निर्णय हुआ था कि जो क्षेत्र राजा रामशाह को मुगल सम्राट जहाँगीर ने ओरछा राज्य से दिलाया था, जिसमें बार, बानपुर और तालवेहट परगने थे, वह मोर प्रहलाद के कब्जे में रहेंगे। इस समझौते पर मोर प्रहलाद के कामदार पं. दुलारे मिसर मसौरा वालों ने एवं सिंधिया की तरफ से बासुदेव राव भाउ ने हस्ताक्षर किये थे। इसके बाद मोर प्रहलाद ने अपने बंशज धीरज सिंह के वंशजो से बानपुर लेकर कैलगुवाँ के बजाय बानपुर में राजधानी स्थापित कर ली थी। इस प्रकार 1830 ई0 में बानपुर राज्य का आविर्भाव हो गया था। जो मात्र 165631 रु0बार्षिक आय का रह गया था। बानपुर में 12 बर्ष राज्य संचालन के बाद 1842 ई0 में मोर प्रहलाद का निधन हो गया था।

मोर प्रहलाद के निधरोपरान्त, उनके पुत्र मर्दन सिंह (1842-1858 ई0) बानपुर के राजा बने थे। मर्दन सिंह भी पिता मोर प्रहलाद की भाँति महत्वाकांक्षी थे। वह चन्दैरी को नहीं भूले थे। चन्दैरी को किसी प्रकार प्राप्त कर लेने के प्रयास में रहा करते थें। सिंधिया अधिक शक्तिशाली था। जिस कारण उन्होंने कम्पनी सरकार से मैत्री बढ़ाई, और 1842 ई. के बुन्देला विद्रोह के नायक मधुकर शाह बुन्देला जिन्हें अंग्रेजी कम्पनी सरकार पकड़ना चाहती थी। मर्दन सिंह के मधुकर शाह बुन्देला को अपने राज्य के गैराव ग्राम से बहिन के घर सोते समय अंग्रेजी सेना को पकड़वाने में भरपूर सहायता की थी। अंग्रेज हैमिल्टन ने अपने मित्र मर्दनसिंह के सहयोग की खूब प्रशंसा की थी। उन्हे आशा थी कम्पनी सरकार उन्हें उनका पूर्व कालिक चंदैरी क्षेत्र सिंधिया से दिला देगा। परन्तु परिस्थिति उनके सोच के विपरीत घटित हुई।

सन् 1843 में लार्ड आकलेंड ने पिछले बर्ष 1842 ई0 के बुन्देला विद्रोह के उकसाने का आरोप ग्वालियर के सिंधिया पर लगा दिया था। उसका सोच था कि 1842 ई. मे अफ्गान युद्ध में अंग्रेजी सेना की पराजय का लाभ उठाते हुये, कम्पनी सरकार के

क्षेत्र खुरई खिमलासा में मधुकर शाह बुन्देला को लूट करने, अराजकता फैलाने एवं क्षेत्र में आगजनी करने का प्रोत्साहन दिया था। इस कारण लार्ड आकलेंड ने सिंधिया पर 1843 ई. में आक्रमण कर दिया था। सिंधिया ने अंग्रेजी आक्रमण से बचने के लिये आकलेंड से समझौता कर लिया और 14 लाख रुपया बार्षिक आय का चंदैरी क्षेत्र जो मोर प्रहलाद से छीना था वह अंग्रेजी कम्पनी सरकार को दे दिया था। इसके साथ ही अंग्रेजी सेना ने चंदैरी में अपना अड्डा कायम कर लिया था।

इस अप्रत्याशित उलट पलट की घटना से मर्दन सिंह को बड़ा धक्का लगा। उनकी इच्छा अंग्रेजो के सहयोग से सिंधिया से चंदैरी क्षेत्र ले लेने की थी। परन्तु परिस्थिति ऐसी बदली कि चन्दैरी उनके हाथ न लग कर कम्पनी सरकार के हाथ में जा पहुँची थी। जब चंदैरी सिंधिया के अधिकार में थी तो मर्दन सिंह सिंधिया के शत्रु और कम्पनी सरकार के सहयोग मित्र थे। लेकिन जैसे ही चंदैरी अंग्रेजों के अधिकार में दे दी गई तो वह अंग्रेजों के विरोधी एवं लक्ष्मीबाई झाँसी और बिठूर के धुधूपंत पेशवा मराठों के सहयोगी मित्र बन गये थें। लक्ष्मीबाई झाँसी की सलाह के अनुसार ही वह चलने लगे थे।

सन् 1857 में अंग्रेजी राज्य जो सेना के बलबूते पर चलता था। परन्तु उसी समय अंग्रेजी फौज के भारतीय सैनिकों में वेतन भत्तों की असमानता को लेकर असन्तोष उत्पन्न हो गया था। यह असन्तोष मई 1857 में अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध क्रान्ति के रूप में फूट पड़ा था। अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिकों ने बगावत कर अंग्रेजी प्रशासन को झकझोर दिया था। सरकार का शासन प्रशासन और नियंत्रण कही नजर नहीं आता था। हर सैनिक छावनी में अराजकता फैल गई थी। भारतीय सैनिकों ने बगावत कर छावनी शस्त्रागारों से हथियार लूट कर अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतारना आरंभ कर दिया था।

अंग्रेजी प्रशासन एवं अनियंत्रित ढीला हुआ तो बुन्देलखण्ड के अपदस्थ गैर क्षेत्रीय असन्तुष्ट मराठा मामलतदार और बिठूर के पेशवा सहित उनके हितैषी जमींदार ताल्लुकेदारों ने मौके का लाभ उठाते हुये, असन्तुष्ट भारतीय सैनिकों के नेता बन कर, अपने अपने पूर्व कालिक राज्यों क्षेत्रों और भूभागों पर कब्जा जमा बैठे थे। भारतीय विद्रोही सैनिकों ने झाँसी के झोकन बाग में रह रहे अंग्रेज अफसरों महिलाओं और बच्चों का कत्लेआम करते हुये लक्ष्मीबाई को पुनः झॉसी की रानी प्रशासक बना दिया था।

मर्दन सिंह ने भी लक्ष्मी बाई झाँसी की देखा देखी चंदैरी क्षेत्र के खुरई खिमलासा, नरयावली, मालथौन आदि परिक्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया था। वह मालथोन से बरौदिया होते हुये राहतगढ़ जा पहुँचे थे। उसी समय सैन्ट्रल इंडिया फील्ड फोर्स का कमांडर बन कर सर हूरोज भोपाल होकर राहतगढ़ आया। मर्दन सिंह पराजित होकर मालथौन बरौदिया की तरफ भागे। हूरोज विद्रोहियों को ठनगना मदन पुर सोरई में पराजित करता, मड़ावरा महरौनी के किलों को तोड़ता हुआ बानपुर की ओर बढ़ा। 11 मार्च 1858 को मेजर बायलो ने बानपुर किले को तोपों से उड़ा दिया था। मर्दन सिंह बानपुर छोड़ के कैलगुवाँ के किले में जा पहुँचे थे। हूरोज सीधा तालबेहट गया जिसने 14 मार्च को तालबेहट किला ध्वस्त कर दिया था। मेजर 'ओर' बानपुर से मर्दन सिंह का पीछा करता हुआ कैलगुवाँ जा पहुँचा और 15 मार्च 1858 को कैलगुवां किले को ध्वस्त कर नष्ट कर दिया था।। मर्दन सिंह के पास तीन -किले बानपुर, कैलगुवां एवं तालवेहट ही थे, वह तीनों ध्वस्त कर दिये गये थे। राज्य एवं घर बिहीन होकर मर्दन सिंह बार बांसी के जंगलों में भटकते रहे। परिवार बानपुर से दतिया जा पहुँचा था। जिन मराठों पेशवा धुधूपंत नाना साहब एवं लक्ष्मीबाई के उकसाने से सलाह मशबिरा से मर्दन सिंह ने अंग्रेजी कम्पनी सरकार के विरूद्ध चंदैरीका पूर्व कालिक क्षेत्र के लेने के लिये विद्रोह किया था। उन मराठा मामलत दारों पेशवादि किसी ने विपत्ति के समय उनको मदद नहीं की थी। जो छोटा सा बानपुर राज्य था। वह था तो, अधिक की लालच में छोटा भी चला गया था। कहावत है ''आधी छोड़ सारी को धावे, आधी रहे न सारी पावै''।

बार बाँसी के जंगलों में भटकते रहने पर पर निराश होकर मर्दन सिंह ने 28 सितम्बर 1858 को अंग्रेजों के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया था। अंग्रेजों ने उन्हें बुन्देलखण्ड से बाहर लाहौर में मोरी दरवाजा के पास हाकिम राय की हवेली में नजर कैद रख दिया था। बानपुर जागीर का विलय अंग्रेजी राज्य में कर लिया था। उनके परिवार के भरण पोषण को 1000 (एक हजार रूपया) मासिक पेशन दी गई थी। बाद में नवम्बर 1972 में उन्हें बृद्धावस्था में मथुरा में रख दिया था। जहां 22 जुलाई 1879 को उनका स्वर्गवास हो गया था।

-भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़

बुन्देले मर्दनसिंह की जय

दो मौतें न कोऊ की होती, माता न जनम दूजो दैहैं ।
अब प्राण जाय, कै परदेसी, कोई एक हिन्द पै रै पइहै ।।
रैय्यत बोली रानी की जै, रानी बोली मर्दन की जै ।
जै वीर हिन्दके ज्वानन की, बुन्देले मर्दनसिंह की जै ।।

- कैलाश मड़बैया

द्वाविंश बाहु विनायक सिद्धक्षेत्र : बानपुर

- पं0 बाबूलाल द्विवेदी

प्राचीन काल में हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ सुदूर पूर्व और मध्य एशियाई देशों तक गणेश पूजा भी पहुंची । आधुनिक भारत के गरम दल के प्रमुख नेता लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने गणेशपूजा को देश के स्वातंत्र्य समर से जोड़कर उसे देश के भीतर एक व्यापक आधार प्रदान किया । देश-विदेश में अलग-अलग भाषायी प्रवृत्तियों के कारण गणपति के नामों में भी परिवर्तन होता गया । जापान में 'कांगितेन' को कुशलता का देवता माना जाता है । चीन में कुआनसी, कंबोडिया में केनेस, यूनान में औरेनस्य (अरुणास्य का अपभ्रंश), मिस्र में एकटोन (एकटोन), ईरान के पारसियों में अहुरमज्दा (असुरमदहा) प्रभृति नामों से अभिज्ञात हुए हैं ।

विश्व के अनेक देशों में विनायक की मूर्तियों के शिल्प में किंचित् परिवर्तन हुए हैं । म्यॉमार (बर्मा) में सुथना (सॅकरी मुहरी का पाजामा) पहने हुए गणेश की मूर्ति का एक चित्र डॉ रामधारी सिंह दिनकर ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में दिया है । विश्ववंद्य भगवान गणेश की गोबर, धातु, काष्ठ, पाषाणादि विनिर्मित प्रतिमा-पूजा अनादिकाल से अद्यावधि चली आ रही है गणेश-पूजा आराधक की अभिलाषा को पूर्ण करती है -

गणेशमूर्ति प्रासादं करयामास सुंदरम् ।
वरदेति च तन्नाम् स्थापयामास शाश्वतम ।।
सिद्धि स्थानम् च तत्रासीद गणेशस्य प्रसादतः ।
कामान पुष्णाति सर्वेषां पुष्पकं क्षेत्र भित्यति ।।

गणेश पुराण 1-37, 45 एवं 46

पूर्वकाल में त्रिपुर विजय हेतु शिव ने, बलि बंधन हेतु विष्णु ने, सृष्टि हेतु ब्रह्मा ने, महिषासुर मर्दन हेतु पार्वती ने, सिद्धि प्राप्ति हेतु सिद्ध-सिद्धि गणों ने एवं विश्व विजय हेतु कामदेव ने भगवान गणेश पूजा-आराधना की थी ।

(धूर्ताख्यान - हरिभद्र सूरि)

श्री तत्वनिधि ग्रंथ में वर्णित कामनापूरक गणेश जी के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है । इनमें उनके अधोलिखित 32 रूप प्रमुख हैं -

1 बाल गणपति - रक्तवर्ण, चतुर्भुज
2 तरुण - रक्तवर्ण, अष्टहस्त
3 भक्त - श्वेत वर्ण, चतुर्हस्त
4 वीर - रक्तवर्ण, दशभुज
5 शक्ति गणपति - सिंदूर वर्ण, चतुर्भुज
6 द्विज - शुभ्रवर्ण, चतुर्भुज
7 पिंगलसिद्ध - चतुर्भुज
8 उच्छिष्ट - नील, चतुर्भुज
9 विघ्न - स्वर्णवर्ण, दशभुज
10 श्रिप्र - रक्तवर्ण, चतुर्भुज
11 हेरंब - गौरवर्ण, अष्टभुज, पंच गजमुख, सिंह वाहन
12 लक्ष्मी - गौरवर्ण, दशभुज
13 महा - रक्तवर्ण, दशभुज, त्रिनेत्र
14 विजय - रक्तवर्ण, चतुर्भुज
15 नृत्य गणपति - पीतवर्ण, चतुर्भुज
16 ऊर्ध्व - कनक वर्ण, षडमुख
17 एकाक्षर - रक्तवर्ण, चतुर्भुज
18 वरद् - रक्तवर्ण, चतुर्भुज
19 यक्ष - स्वर्णवर्ण, चतुर्भुज
20 क्षिप्र प्रसाद - रक्तचंदनांकित, षडमुख
21 हरिद्रा - पीतवर्ण, चतुर्भुज

22 एकदंत - श्याम वर्ण, चतुर्भुज
23 सृ:ि - रक्तवर्ण, चतुर्भुज
24 उद्दण्ड - रक्तवर्ण, द्वादशभुज
25 ऋणमोचन - शुक्लवर्ण, चतुर्भुज
26 दुण्डि - रक्तवर्ण, चतुर्भुज
27 द्विमुख - हरितवर्ण, चतुर्भुज
28 त्रिमुख - रक्तवर्ण, षडभुज
29 सिंह - श्वेतवर्ण, अष्टभुज
30 योग - रक्तवर्ण, अष्टभुज
31 दुर्गा - कनकवर्ण, अष्टभुज
32 संकटहर गणपति - रक्तवर्ण एवं चतुर्भुज होते हैं ।

अवस्थाभेद से गणेश की तीन प्रकार की मूर्तियां वास्तु तंत्रादि शास्त्रों में बतायी गयी हैं ।

1. स्थानक - खड़ी हुई । जिनका बाहुल्य चतुर्थ शताब्दी ई.पू. तक रहा ।
2. आसीन - बैठी हुई । ईसा की आठवीं शताब्दी के पश्चात ।
3. नृत्यति - नृत्य मुद्रा में गणपति मूर्तियों का बाहुल्य ईसा की छठवीं शताब्दी में रहा ।

युग प्रभेद से चारों युगों में गणेश की पूजा होती आयी है । गणेश पुराण क्रीड़ा खण्ड (1-18 से 21 तक) के अनुसार कृतयुग में गणेश का नाम 'महोत्कट विनायक' था, जिनका वाहन सिंह तथा दस भुजाएं हैं । त्रेतायुग में गुणेश नाम तथा मयूर वाहन और षडभुज हैं । द्वापर युग में 'गजानन' नाम तथा मूसक वाहन और चतुर्भुज रूप है तथा कलियुग में गणेश का नाम धूमकेतु है, जिनकी दो भुजाएं और अश्व वाहन है ।

तंत्रसारादि तंत्रागमों में गणेश के हेरंब युद्ध में तुमुलशब्दकारी देवता के दसों हाथों के आयुधादि का वर्णन मिलता है । गणेश को ब्रह्मा ने कमल, कुबेर ने रत्नमाला, वरुण ने पाश, शिव ने त्रिशूल, इंद्र ने अंकुश, समुद्र ने मुक्तामाल, शेषनाग ने सर्प तथा ऋषि जमदग्नि की पत्नी रेणुका ने परशु एवं वाहन सिंह प्रदान किया। गणेश की ही भांति अन्य देवी-देवताओं की भुजाओं और आयुधों का वर्णन सुप्रभेदागमादि तंत्र शास्त्रों में प्राप्त होता है ।

ऐलोरा की गुफा में पार्वती के वामहस्त में गणपति मूर्ति है । मैसूर राज्य में होयसलेश्वर मंदिर में चौथी शती की नृत्य गणपति की दशभुजी मूर्ति है । पार्श्व में मोदक भक्षणरत मूसक है पूर्वी नेपाल के बनेपा नामक स्थान पर सर्पगणों की छाया में चतुर्भुज, दशभुजी दो मूसकों पर सवार गजमुख गणेशमूर्ति है । नागपट्टिनम् (तंजौर) में पंजगजमुखी सिंह पर आरूढ़ दशभुजी हेरंब मूर्ति है । ग्वालियर संग्रहालय में प्रतिहारकालीन नृत्य गणपति की मूर्ति है । पार्श्व में एक मृदंगवादक है । उटारी नदी के पश्चिमी तट पर ग्राम उदयपुरा (बानपुर से 12 कि.मी. पश्चिम) जिला ललितपुर (उ0प्र0) में एक दशभुजी गणेश मूर्ति है, जिसके बगल में दो मृदंग और दो झांझ वादक नृत्य मुद्रा में हैं । झांसी के संग्रहालय में चौदह भुजी नृत्य गणेश की एक प्रस्तर मूर्ति है (बुंदेलखण्ड का पुरातत्व) ।

बाणासुर की भक्ति से प्रसन्न होकर साधना निर्भर सद्यः फलप्रद भगवान गणेश ने कृतयुगादि क्रम में क्रमशः दस, छः, चार एवं दो कुल बाईस भुजी रूप धारण किए हैं । चारों युगों में गणपति के विशि:ट रूपों में भिन्न-भिन्न संख्याओं में जो भुजाओं का वर्णन मिलता है, उनका कुल योग बाईस होता है । संभव है; सभी युगों में गणपति रूपों की संयुक्त आराधना एवं फलाकांक्षा को ध्यान में रखकर एक बाईस भुजी मूर्ति के निर्माण की कल्पना की गई हो । मेरी अद्यतन जानकारी के अनुसार बानपुर को छोड़ 22 भुजी गणेश मूर्ति विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं है । इस रूप में बानपुर की यह गणेश मूर्ति विश्व में अद्वितीय स्थान रखती है ।

के.कीर्ति शाह ने अपनी पुस्तक 'ऐंशियेण्ट बुंदेलखण्ड' पृ:ठ 54 पर बांदा (उ0प्र0) के राइसिन नामक स्थान पर चौबीस भुजी गणेश मूर्ति का उल्लेख किया है, परंतु उनके लेख की आधिकारिकता असंदिग्ध मानने में कठिनाई है, क्योंकि उन्होंने अपनी इसी पुस्तक के पृ:ठ 68 पर बानपुर की मूर्ति की भी 24 भुजाओं का उल्लेख किया है । इस प्रकार उन्होंने सुना-सुनाया अथवा मनगढंत अपुष्ट मूर्ति विवरण कदाचित् बिना स्थान-भ्रमण किए ही अपनी पुस्तक में दे दिया है ।

डॉ एस. डी. त्रिवेदी ने अपनी पुस्तक 'बुंदेलखण्ड का पुरातत्व' के पृष्ठ 50 पर बानपुर की इस मूर्ति को 18 भुजी बता दिया है । उद्धरण प्रस्तुत है - ''ललितपुर जिले के बानपुर गांव से दो कि.मी. आगे गणेशपुरा में नृत्य गणपति की अठारहभुजी विशाल प्रतिमा लगी हुई है ।'' 'ऐंशियेण्ट बुंदेलखण्ड के लेखक ने ईमानदारी के साथ यह स्वीकार किया है कि बानपुर की चौबीस भुजी मूर्ति की उसे सूचना मिली है किन्तु डॉ त्रिवेदी ने तो साधिकार लिखा है । यहां स्मरणीय है कि त्रिवेदी जी झांसी संग्रहालय के क्यूरेटर थे और बानपुर उन्हीं के क्षेत्र के अंतर्गत था । कदाचित यह सरकारी कामों का औपचारिकता पूर्ण निर्वहन रहा होगा । इससे यह भी स्पष्ट है कि इन महाशय ने भी बिना स्थान को देखे ही लापरवाही से अपुष्ट सूचनाओं को दस्तावेजी स्वरूप दे दिया ।

वास्तविकता यह है कि इस स्थान पर मंदिर आज भी नहीं है और डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक भी यहां कोई मंदिर न था । 20-25 वर्ष पूर्व तक गणेशजी की 22 भुजी मूर्ति खुले में पड़ी हुई थी । उसी अवस्था में उसकी पूजा-अर्चना होती थी । ऐसा लोक-विश्वास था कि गणेश जी खड़े नहीं होना चाहते हैं और न ही वे अपने ऊपर कोई मंदिर या किसी प्रकार का कोई छप्पर डलवाना चाहते हैं ।

बाद में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम एवं उससे पूर्व के अनेक अवसरों पर झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के सहयोगी बानपुर नरेश मर्दनसिंह के पौत्र राजा कृष्ण प्रताप सिंह कुछ दिन के लिए छतरपुर से बानपुर में आकर रहने लगे । उनके मन में गणेश जी की इस मूर्ति को खड़ा करने का विचार आया, किंतु प्रचलित किंवदन्तियों के कारण वे थोड़े झिझकते भी थे । एक दिन वे स्थानीय विद्यालय के विद्यार्थियों को लेकर गनेशपुरा आए । गणेश जी पूजा-अर्चना कर उनसे खड़े होने की प्रार्थना की और विद्यार्थियों के सहयोग से जोर लगाकर मूर्ति को खड़ा कर दिया । विशालकाय और भारी भरकम मूर्ति किसी आकस्मिक घटनावश गिर न पड़े, इसलिए उसके पीछे सत्ती का चीरा कर्णवत् अड़ा दिया । उसके पश्चात् जनसहयोग से मूर्ति के इर्द-गिर्द दीवारें बनाकर उसके ऊपर छत डालकर एक कमरा बना दिया गया । वर्तमान में गणेश मंदिर का यही स्वरूप है, जिसमें मूर्ति के अतिरिक्त मात्र परिक्रमा करने योग्य स्थान है ।

एक ही शिलाखण्ड से निर्मित इस मूर्ति की ऊँचाई मय पीठिका के लगभग सात फुट है । मूर्ति का एक दाहिना हाथ दाहिने दांत पर एवं बायां हाथ पैर के पास है । शेष बीस भुजाओं में विविध अस्त्र-शस्त्र, फल तथा कुछ अन्य वस्तुएं हैं । इन वस्तुओं को मूर्ति पर सिंदूर की मोटी पर्त चढ़ी होने के कारण पहचानने में कठिनाई है । मूर्ति की गजशुण्ड बायीं ओर मुड़ी हुई है । मूर्ति में गणेश प्रसन्न मुख एवं नृत्य मुद्रा में हैं । विशेष बात यह है कि यह अद्भुद मूर्ति खण्डित नहीं है इसके अतिरिक्त मंदिर के बाहर लगभग तीन-तीन फुट ऊँची तीन खण्डित नंदी मूर्तियां रखी हैं किंतु कोई शिव मंदिर के अवशेष या शिव मूर्तियां नहीं हैं । इससे दर्शक के मन में कई प्रश्न उभरते हैं और कई पुरातात्विक संभावनाएं भी ।

गनेशपुरा में माघ की गणेश चतुर्थी को एक दिवसीय मेला भी लगने लगा है। स्वतंत्रता के बाद बानपुर से गनेशपुरा तक पहुंच मार्ग के निर्माण हो जाने के कारण मेले के अतिरिक्त भी दर्शनार्थियों का आना-जाना बढ़ गया है । संभव है धीरे-धीरे लोगों का ध्यान स्थान के उद्धार की तरफ भी आकर्षित हो।

- 'मानस मधुप', 'साहित्यायुर्वेद रत्न', ग्राम छिल्ला
(बानपुर) जनपद ललितपुर
बुन्देली इतिहास और संस्कृति, आदिवासी लोककला अकादमी म0प्र0संस्कृति परिषद भोपाल से साभार

बानपुर नरेश मर्दनसिंह के नाम महारानी लक्ष्मीबाई का ऐतिहासिक पत्र जिसमें 'स्वराज्य प्राप्त करने की योजना बनायी गयी थी।

।। श्री ।।

श्री महांराज कोमार श्री महांराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा मर्दनसिंह बहांदुर जूदेव एते श्री महारानी श्री रानी लक्ष्मीबाई जू देवी के बांचनै .....भले चाहिजैं इहॉं के समाचार भले हैं आपर पाती दिवान गो....स जू लि आए सो पड़कर खुसी भई आपर अपुन की ब हमारी ब.....साहगढ़ और.....तात्याटोपे की जो सलाह पर.....थी कै ***सुराज*** भऔ.....सासन भओ चाहिजें एही हमारी राय....को चाहिजें.....अपुनो ही देस है और बानपुर....अपुन ने तोपें.....गोला ढरवाए है ई बात कौं.....को जाहर नहीं... ..भओ चाहिजें काये से टीकमगढ़.....रानी लड़ई सरकार व नत्थे खां दीवान विदेसियों....ही बात कौ खियाल राखने है और इ..... .जाहर कर.....जानवी पाती समाचार.....कुंआर ....संवत् 1914 मुहर

स्वातंत्र्ययवीर बानपुर नरेश मर्दन सिंह जो लौट न घर को आए

-प्रो0 भगवत नारायण शर्मा[5]

आजाद की प्रथम-अठारह सौ सत्तानवी-जन क्रान्ति की चिनगारी को प्रचण्ड ज्वाला के रूप में धधकाने वाले शौर्य और पराक्रम के साथ साथ अद्‌भुत धीरता के धनी बानपुर (ललितपुर) के छोटे से राज्य के राजा मर्दन सिंह ने औपनिवेशिक चक्रवर्तित्व के अहंकार में मदमस्त, ब्रिटिशराज को अपनी व्यावहारिक सूझबूझ से भरी कूटनीतिक चालों से बार-बार पटखनी दे-देकर झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को लगभग सभी मोर्चों वर उनके सगे बड़े भाई की तरह डटकर जो निःस्वार्थ सहयोग उनके दाहिने हाथ के रूप में दिया है, उसकी गूंज न केवल बुन्लेखण्ड में अपितु देशदेशांतर तक यूरोपीय जगत में सुनाई देने लगी थी। मर्दन सिंह ने अपनी मर्दानगी को पलाश की तरह दहकाया और करौंदी की तरह महकाया। सन् 1757 में अपनी धूर्तता, कुटिलता से जिस अंग्रेजी साम्राज्य की दागवेंल लार्ड क्लाइब के हाथों डाली गई थी, वह मात्र सौ वर्षों के अन्तराल से 1857 में लार्ड डलहौजी के जमाने में पीपल के पत्ते की तरह हिलने लगेगी, इसकी कल्पना इंग्लैण्ड में बैठे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने कभी न की होगी। इसीलिए 20 मई 1857 को वहां के जागरूक सांसद जॉन ब्राइट को हाउस आफ कामन्स में भारतीय जनता आंख खोल देने वाले सशस्त्र जन प्रतिरोध के सम्बन्ध में यह कहना पड़ा था कि ''सरकार के नाम पर डाकू साझीदारों की कम्पनी का खात्मा अब जल्दी हो होने वाला है.....। तुमने इस विद्रोह को दबाने, में तलवार से काम लिया, वह तलवार टूट गई तुम्हारे हाथ में उसकी मूठ रह गई। सभ्य यूरोप की निगाह में तुम फटकार खाये सिर झुकाये खड़े हो।''

तत् कालीन मजदूर नेता, प्रखर पत्रकार, क्रान्तिदर्शी कवि, भारतीय जन विद्रोह के सच्चे शुभ चिन्तक अर्नेस्टजोन्स ने जिन्हें ब्रिटिश शासकों ने जेल की काल कोठरी में डाल दिया था, उन्होंने भारतीय जन विलप्व को अखिल विश्व की उत्पीड़ित जनता के मुक्ति संग्राम की एक मजबूत कड़ी मानते हुए इसके व्यापक प्रभाव की उद्‌भावना अपनी कविता में प्रस्तुत करते हुए कहा था।

''विजयी सैलाब!!
सैकड़ों पर्वतों जनता के अधिकारों की दुर्धर्ष नदी बहती है।
और सिपाही जागते है।
एक के बाद एक दूसरी पल्टन भागती है।
तब वहां से भागते है, पैसे के लोभी जज,
ऐयाश लार्ड,
बे मुफलिस अंग्रेज जो यहां आकर नबाब बन गए थे।
अत्याचारी महाजन और घमंडी व्यापारी भागते हैं।
जब सारे देश में स्वतंत्रता का दुंदुभी घोष छा जाता है।

सात समन्दर पार बैठे, इंग्लैण्ड के मजदूर नेता अर्नेस्टजान्स की आंखों में तैरने वाले पीड़ित मानवता की मुक्ति के सपने को संघर्ष की जमीन पर उतारने वाले जिन योद्धओं ने बढ़ चढ़कर भाग लिया उनमें नाना साहब, बहादुर शाह जफर, रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, कुंअर सिंह, बेगम जीनत महल, मंगल पाण्डेय, अजीम उल्ला की श्रंखला में बुन्देलखण्ड की वीरांगना अवन्तिवाई तथा बानपुर नरेश मर्दन सिंह व उनके अभिन्न सहयोगी शाहगढ़ नरेश बखतबली इस विप्लव को ऊँचाईयां देने में सदैव आगे से भी आगे रहे हैं।

तद्‌युगीन पदयात्री मराठा पुरोहित पं0 विष्णु भट्‌ट शास्त्री ने अपनी विश्व प्रसिद्ध मराठी भाषा में लिखी गई माझा प्रवास (आंखों देखा गदर) यात्रा वृतान्त पुस्तक के हिन्दी रूपान्तरण के पृष्ठ सं0 22 एवं 23 पर राजा मर्दन सिंह साहस व दृढ़ता का

[5] प्रो0 शर्मा ललितपुर नगर के प्रमुख बुद्धिजीवी और समाज सेवी हैं। अपने अपना अध्यापन कर्म बड़ी कुशलता सहजता एवं विद्वत्तापूर्ण निभाया है। नेहरू महाविद्यालय ललितपुर के पूर्व प्राचार्य शर्मा जी जिम्मेदारी के प्रति पूर्ण समर्पित और निष्ठावान व्यक्तित्व के रूप में जाने जाते रहे हैं।

-सम्पादक

खुलासा करते हुए कहा है कि कलकत्ते में अंग्रेज गर्वनर ने भारतीय राजाओं और नवाबों के लिए ब्रिटिश राज्य की जड़ों को मजबूत करने हेतु जो चौरासी सूत्रीय कार्यक्रम अमल में लाए जाने के प्रस्तुत किया था उसका प्रथम सशक्त विरोध बानपुर के छोटे से राज्य के राजा मर्दन सिंह ने किया था। उन्होंने सावधान किया था यह हिन्दुस्तान, भरतखण्ड, जम्बूद्वीप है। समग्रदेश हमारी कर्मभूमि है .... कोई भी शक्ति इन अनुचित कार्यों (84 सूत्रों) को नहीं मनवा सकती है।

इसी पुस्तक के लेखक विष्णु भट्ट शास्त्री जो विद्रोह के समय झांसी के किले में फंस गये थे तथा विद्रोह के दमन के उपरान्त बचते बचाते काशी पहुंच गये थे, तथा वहां से कांवर में गंगाजल भरकर पुणे के अपने गांव में जब लौटे तब उन्होंने अपने चलने फिरने से लाचार माता-पिता की गंगा स्नान की अभिलाषा को सोत्साह पूर्ण किया। क्रान्ति के समय जो कुछ उनकी आंखों के सामने घटित हुआ, उसी का वृतान्त माझा प्रवास में लिपिबद्ध कराया। इस पुस्तक के पृष्ठ 65 पर अंकित है कि ''झांसी के पच्छिम में वेत्रवंती (बेतवा) नदी के पास बानपुर नाम ाक एक छोटा सा राज है। वहां के राजा को लक्ष्मीबाई ने अपना बड़ा भाई माना था। बानपुर का राजा गदरवाली पलटनों को अपने यहां आश्रय देता था। उसने सोचा इस शहर में अंग्रेजों के साथ लड़ाई तो होगी ही इस लिए अपने लोगों को यहां से जहां तहां जाने का हुकुम देकर, अपने कुटुम्ब खजाने को लेकर झांसी आ गए। लक्ष्मीबाई ने उन्हें रहने के लिए एक अलग महल दिया और शाही बंदोबस्त कर दिया। राजा कुछ दिनों बाद बानपुर लौट गए। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद अंग्रेज सेनापति ह्यूरोज की सेनाओं ने बानपुर पर आक्रमण कर दिया। नगर को घेर कर सात दिनों तक लड़ाई जारी रखी। अंत में बची-खुची सेना लेकर राजा बेतवा के कछारों में जाकर डट गया।.....झांसी में यह खबर फैल गई कि बानपुर अंग्रेजो के ताबे में आ गया हैं। इस समाचार से झांसी में हड़कम्प मच गई। .....अंग्रेज सरकार ने झांसी के अधीन गांव-गांव में जाहिरनामा लगा दिया कि झांसी पर धावा बोला जाएगा। पांच बरस से ऊपर और अस्सी बरस तक के बूढ़ों तक को मार डाला जाएगा। इसलिए जंग के दिनों में कोई झांसी न आए।''

अक्सर कहा जाता हैं कि अंगेजों के राज में कभी सूर्य नहीं डूबता था (कदाचित, उपनिवेशों का मालपानी,टेम्स के तट तक निचोड़े जाने के कारण) परन्तु उक्त वृतान्त पढ़कर यह उक्ति ज्यादा सटीक लगती है कि उनके औपनिवेशिक-राज्य में खून भी नहीं सूखता था, सौ वर्ष पूरे होने पर जब देश ने 1957 में धूमधाम से शताब्दी-समारोह मनाया था, तब उसके बर्षो बाद, लगभग आज से चार दशक पूर्व मेरी भेंट, ललितपुर में पधारे राजा मर्दन सिंह के प्रपौत्र स्व0 श्री कृष्ण प्रताप सिंह जूदेव से हुई थी। मेरी अनेक जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए, उन्होंने यह अवगत कराया था कि उनके यशस्वी पूर्वजों द्वारा किया गया संघर्ष, व्यक्तिगत या क्षेत्रीय विस्तार व स्वार्थपूर्ति के लिए न होकर, स्वराज्य प्राप्ति के लिए ही किया गया था, जिसके प्रमाण स्वरूप उन्होंने अपने परिवारजनों, ततकालीन सांसद पं. रामसहाय तिवारी एवं पं. रघुनाथ विनायक घुलेकर के साथ दिल्ली जाकर उन पत्रों को सौपा था, जो परस्पर एकजुट होकर, क्रान्ति के नेताओं ने स्वराज्य प्राप्ति के उद्देश्य से लिखे थे। उन्होंने यह भी बताया था कि नेहरू जी ने रानी लक्ष्मीबाई और बानपुर नरेश से संबद्ध पत्रों को एकाधिक बार पढ़कर और भावुक होकर अपने हृदय से लगाकर उसमें आए 'स्वराज्य' शब्द को रेखांकित करके, राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित कर लिया था।

इन दस्तावेजों की पुष्टि, पंजाब सरकार द्वारा 1957 में शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाशित कराये गए गदर सम्बन्धी कागजातों से भी होती है, क्योंकि अंग्रेजो ने रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान के बाद महाराजा बानपुर को गिरफ्तार कर जेल लाहौर (पंजाब) में डाल दिया था, उनके प्रपौत्र ने बताया कि क्रान्ति का निर्दयता पूर्वक दमन करने के उपरान्त अंग्रेज उनसे इतने भयभीत रहते थे कि उन्हें जीते जी, अपनी जन्म-भूमि में आकर, क्षेत्रीय सहयोगियों से मिलने तक का कभी अवसर नही दिया। सिर्फ मथुरा-वृंदावन तक ही आने की अनुमति दी। जहां उन्होंने अन्तिम सांस ली। उन्होंने कहा कि क्रान्ति सम्बन्धी पत्रजात तथा नरयावली के मोर्चे पर अंग्रेज सेनापति से छीनी गई दूरबीन आदि उन्होंने राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रधानमंत्री जी के माध्यम से जमा करा दिए थे। यह सभी सामग्री उन्हे बब्बाजू और बउवाजू के द्वारा हस्तांतरित हुई थीं जो कि संघर्ष के जीवंत प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के रूप में स्वयं इतिहास निर्माता रहे हैं।

इस ऐतिहासिक पत्राचार में, जिसे पंजाब सरकार ने प्रकाशित कराया है उसमें एक पत्र ऐसा भी है, जिसमें राजा मर्दन सिंह ने मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर को सूचित किया है कि ''उन्होने अंग्रेजों को चन्देरी से निकाल दिया है और सागर पर आक्रमण किया हैं। उन्होंने बुन्देलखण्ड के कुछ राजाओं की शिकायत भी की है कि वे राज्य विस्तार के लिए लड़ते है। यदि ये सब मिल जाते है, तो वे अंग्रेजों को निकाल बाहर कर सकते है। उन्होंने अपने विश्वास पात्र मियाखां को बहादुर शाह के पास भेजा था और प्रार्थना की थी कि इस प्रदेश के राजाओं को हुकुमनामा भेजकर, राजा मर्दन सिंह से मिलकर, अंग्रेजों से लड़ने को कह दें। उन्होंने बादशाह से यह शिकायत भी की थी कि कुछ तो खुल्लम खुल्ला अंग्रेजों के साथ है कुछ गुप्त रूप से मिले हुए हैं। इस पत्र में बानपुर राजा ने यह भी उल्लेख किया है कि बम्बई और मद्रास की सेनाओं का मार्ग, ललितपुर व ग्वालियर से हैं। इसलिए इन दोनो स्थानों पर माकूल

प्रबन्ध लाजिमी है। अतः शाही दफ्तर से हुकुम जारी कर दिए जाने चाहिए।''(इस पत्र पर मोहर के साथ राजा मर्दन सिंह के हस्ताक्षर अंकित है) इस पत्र में राजा ने यह भी सूचित किया है कि ''जिन स्थानों को उन्होने जीता है, वहां शाही-झण्डा फहरा दिया गया है''। मर्दन सिंह द्वारा राजाओं को मिलाने की बात कहना विद्रोह के एक केन्द्रीय मुख्यालय और उसके सुदूरवर्ती जनविस्तार की एकसूत्रता तथा एक उद्देश्य की स्पष्ट घोषणा करके अंग्रेजो की ठकुरसुहाती करने वाले कतिपय इतिहासकारों के सीमित गदर सम्बन्धी मूल्याकंन के सफेद झूठ की प्रामाणिक तौर पर कलई खोलता है।

राजा मर्दन सिंह ने खुरई, सागर, नरयावली, राहतगढ़, बरोदिया आदि स्थानों पर जो वीरतापूर्ण संघर्ष, अंग्रेज सेनापति ह्यूरोज का मनोबल तोड़ने के लिए किया है, उसका व्यापक प्रसार करने में बुन्देलों, हरबोलो, सैनिकों, साधुओं, फकीरो, निर्धन-सामंतो और किसानो के साथ लोहे, लकड़ी, पीतल, गोला-बारूद से जुड़े शिल्पकारों, चन्देरी और झांसी के वस्त्र-उद्योग से जुड़े, उजाड़ दिए गए बुनकरों, जुलाहों और उनकी माताओं और बहिनों ने किया। प्रतिरोध की मुख्य शक्ति यथार्थतः आम जनता ही थी। जो अन्याय पूर्ण सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए स्वतः स्फूर्त लामबंद होकर 'विजन' बोल रही थी। आजादी की इस पहली लड़ाई में भले ही सैनिक पराजय का अस्थाई आघात लगा हो, पर स्वाधीनता के लिए सहसा अंगड़ाई लेकर आम जनता का उठ बैठना, विश्व जनमत के लिए सबसे बड़ी ऐतिहासिक नैतिक विजय की अविस्मरणीय घटना हैं।

''जनता कभी भी देश भक्त बहादुर-सपूतों को व शत्रु से मिल जाने वाले देशद्रोहियों को कभी भी नही भूल सकती''-इन उद्गारों को व्यक्त करते हुए अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले, महाराजा के प्रपौत्र की आंखो में सहसा चमक आ गई और उन्होने स्वीकार किया कि मैं बुन्देलखण्ड में जहां भी जाता हूँ जनता मुझे बेमुकुट बादशाह मानकर अपने हृदय-सिंहासन पर बैठालकर अपनी गरीबी दूर करके हर प्रकार की परतंत्रता से मुक्त होना चाहती हैं। यही मेरे जीवन मे यश की सबसे बड़ी धरोहर हैं।

-पूर्व प्राचार्य, नेहरू पी0 जी0 कालेज
ललितपुर

मर्दन मृगेन्द्र शत्रु गर्दन मरोरी है

- सेवकेन्द्र त्रिपाठी, झांसी

अंग्रेजी क्रूर शासन में जहां श्रीरामचरितमानस की - जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी सो नृप अवसि नरक अधिकारी' प्रभृति नीतिपरक चौपाइयों का उदाहरण देना प्रतिबन्धित था। अंग्रेजों के विरुद्ध कोई करखा, कविता या पद का संभाषण - प्रकाशित नहीं कर पाता था। ऐसे समय में त्रिपाठी जी द्वारा रचित वीर केशव साहित्य परिषद् ओरछा राज्य, टीकमगढ़ बुन्देलखण्ड की तृतीय वार्षिक रिपोर्ट वर्ष संवत् 1989 (सन् 1932-'33) पृष्ठ 27 पर प्रकाशित यह कविता पं0 श्री हरिविष्णु अवस्थी के सौजन्य से प्राप्त हुई है। यह कविता बानपुर नरेश मर्दनसिंह के कृतित्व पर संभवतः प्रथम प्रकाशित कविता है - संपादक

वीर बानपुर की सुवीर बान पुर कीन्हीं निज खंग बल ते अकेले जंग जोरी है।
'सेवकेन्द्र' मढ़ी कीर्ति अखिल बुन्देलन की गरुवे गरूरिन की गर्व गढ़ी तोरी है।।
नर्म दली झारे हैं फिरंगी रंगहीन कीन्हे निपट निशंक वीर बंक चढ़ी त्योरी है।
जय जय जनर्दन की क्रूरन कपर्दन की मर्दन मृगेन्द्र शत्रु गर्दन मरोरी है।।

बानपुर के प्रमुख मेले

– नीरज द्विवेदी

संग और प्राक्तन संस्कारवश मानव मात्र के मन में समय-समय पर मद, मोह, मात्सर्य, लोभ, काम, ममता और अहंता आदि आंतरिक दो:ाों का उद्‌बोध होता रहता है । इन दोषों का मार्जन करने के अनेक उपाय संस्कृति-स्रोत शास्त्रों में अभिवर्णित हैं । इन्हीं उपायों के आधार आस्था के प्रतीक हमारे व्रतपूजनादि हैं । आस्थावान् होकर हम ईश्वर की आराधना, उपासना अथवा भक्ति करते हुए आत्ममुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते चले आ रहे हैं । किसी स्थान विशेष पर सामूहिक रूप से मनाए जाने वाले यह व्रत, पर्व और त्योहार हमारी सांस्कृतिक एकता, अखण्डता एवं सहिष्णुता के जीवंत निदर्शन हैं ।

बुंदेलखण्ड में सामूहिक पर्व मनाने की एक विशिष्ट लोकरीति रही है । मेला इसी लोकरीति का मूर्तरूप है । आस्था, विश्वास और आकर्षण के केंद्र मेलों का उद्‌देश्य परस्पर मेलजोल से रहना, सुख-दु:ख एवं विचारों-योजनाओं का परस्पर विनिमय, आपसी परिचय और विश्वबंधुत्व की भावना को साकार कर देना है । फ्रांस के सुप्रसिद्ध दार्शनिक सिगमण्ड फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'स्वप्नों की व्याख्या' (Interpretation of Dreams : Translated) में बताया है कि किसी व्यक्ति को यदि स्वप्न में मेले का दर्शन होता है तो यह उसकी उन्नति का संकेत है ।

बुंदेलखण्ड के खजुराहो, जागेश्वर (बांदकपुर), शारदा मैया (मेहर), जुगलकिशोर (पन्ना), कामदगिरि (चित्रकूट), रामराजा (ओरछा), स्वयंभूशिव (कुण्डेश्वर), बालाजी (उन्नाव), दशावतार (देवगढ़) सर्वमान्य तीर्थ हैं । बुंदेलखण्ड के तीर्थों में दुर्भाग्यवश द्वाविंश बाहु विनायक सिद्धक्षेत्र बानपुर इतिहासकारों तथा सरकारों द्वारा उपेक्षित रहा, जिससे यहां की अद्वितीयता देश-प्रदेश के कोनों में प्रसारित न हो सकी । बानपुर उत्तर प्रदेश के झांसी संभाग में जिला मुख्यालय ललितपुर से 34 कि.मी.पूर्व, तहसील महरौनी से 14 कि.मी. उत्तर तथा मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ से 10 कि.मी. पश्चिम में जामनी नदी के किनारे बसा एक अतिप्राचीन ऐतिहासिक गॉव है । यहां उत्तर दिशा में बड़े ताल के पास स्थित गनेशपुरा (गणेशखेरा) में प्रतिवर्ष माघ कृष्ण चतुर्थी को गणेश मेला लगता है । यहां की गणेश मूर्ति विश्व में अपनी तरह की एकमात्र मूर्ति है । यह मूर्ति एक ही चट्‌टान में उत्कीर्णित लगभग आठ फुट ऊँची नृत्य करती हुई विद्यमान है । इसका एक दाहिना हाथ दाहिने ओर के दांत पर एवं एक हाथ पावं पर है । मूर्ति की गजशुण्ड बायीं ओर फिर दायीं ओर मुड़ी हुई है । गणेश जी का मुखमण्डल प्रसन्न मुद्रा में है । 22 भुजी विलक्षण और विरल इस गणेशमूर्ति के यहां अत्यंत मनोहारी दर्शन किए जा सकते हैं ।

प्राचीन षोडश महाजनपदों में प्रसिद्ध चेदि महाजनपद के इस सिद्धक्षेत्र पर कभी कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, कुशुंभ (कमण्डलु) धारी नैषेचिक (इच्छा रहित), नैकटिक (संन्यासी) दर्शनार्थ पधारकर इस भूमि को पवित्र किए थे । उस समय मेला में कहीं गल, कोहल, गभीरिका (बड़ा ढोल),

आनक (नगाड़ा), लंबिका, लाबुकी (सारंगी), तानपूरादि वाद्ययंत्रों के स्वरसहित कीर्तन प्रेमी, नर्तक, प्लवक (नट) आदि के खेल खेलते हुए, झूलों पर झूलते हुए, पलंकर्ष (गजक) का स्वाद लेते हुए बाल वृंद दिखाई पड़ते थे । कहीं उलूखलिक (कूटा हुआ) शीतल मधूक चूर्ण (मुर्का), मधूकमोदक (लटा) खाते और काम्ल (खटमिट्‌ठा) ऐक्षव्य (गन्ने का रस) पीकर कलरव करते हुए ग्राम्य बालक कुशीलवों (भाट-गवैयों) के गायन-वादन, उक्थों (स्तोत्रों) द्वारा गणेश स्तवन और जयघोष तथा विशाल मंदिर के शिखर पर फहराती उच्चूड (ध्वजा) आदि-आदि यहां के मेला में दर्शकों का मन मोह लेते थे ।

गनेशपुरा की इस सिद्ध पीठ के संबंध में कहा जाता है कि जब मध्यदेश में बाणासुर ने आकर निवास किया और जामने नदी के पास यमविड़ार (यमदृष्टा - जमड़ार) के तट पर भक्त बाणासुर की अर्चा स्वीकार करने हेतु भगवान शिव (कुण्डेश्वर) स्वयं प्रकट हुए थे ।[1] यहीं पर (बाणासुर के महल के निकट) बाण की इच्छा के अनुसार उसे द्वाविंशबाहु भगवान गणेश ने दर्शन दिए थे । यह आख्यान शास्त्रानुमोदित जनश्रुतियों में प्राप्त होता है ।

देवी-देवताओं के चारों युगों के समवेतित स्वरूपों का ध्यान आशुफलप्रद बताया गया है। आदि शक्ति विष्णु अनुजा की सतयुग में आठ भुजाएं, त्रेता तथा द्वापर में चार-चार एवं कलियुग में दो भुजाएं बताई गई हैं। महिषासुर मर्दन के समय देवी को 8+4+4+2 कुल अठारह भुजाओं को एक साथ धारण करना पड़ा था। दक्ष यज्ञ को पूर्ण कराने हेतु भगवान विष्णु को आठ भुजाएं धारण करनी पड़ी थीं।

सतयुग में गणेश का नाम महोत्कट विनायक था । उनका वाहन सिंह एवं दस भुजाएं थीं इसी प्रकार त्रेता में उनका नाम गुणेश वाहन मयूर तथा छः भुजाएं मानी गईं । द्वापर में गजानन नाम, वाहन मूषक चार भुजाएं एवं कलियुग में धूमकेतु नाम, वाहन अश्व तथा दो भुजाएं मानी जाती हैं ।[3] बाणासुर की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान गणेश ने सतयुगादि क्रम से 10+6+4+2 कुल 22 भुजाएं धारण कीं । गणेश अपने धर्म भ्राता बाण को चतुर्युगीन बाहु वैलक्षण्य रूप में अद्वितीय दर्शन देते थे । गणेश जी का यह ध्यान और दर्शन सभी मनोभिलाषाओं को पूरा करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है । यहां पर पहले एक विशाल मंदिर था किंतु ऋश्यकेतु (जिसकी ध्वजा पर बारहसिंगा हिरन अंकित हो) अनिरुद्ध को जब बाणासुर ने अपनी पुत्री ऊषा के प्रणय सूत्र में निमग्न देख उषा विहार में अवरुद्ध कर दिया था, तब द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण ने इस पूरे नगर को ध्वस्त कर दिया था कृष्ण ने बाण को उसकी हजार

भुजाओं में से मात्र चार भुजाओं का रख छोड़ा था । बाण का यह स्वरूप कालभैरव के नाम से भगवान शिव के दरबार में देखा जा सकता है । बाण अपनी पीठ पर शिवलिंग को धारण किए रहते हैं । यह प्रतीक भारशिवों में प्रचलित रहा है ।

सन् 1292 में विदिशा और देवगिरि विजय अभियान हेतु बुंदेलखण्ड में बुतशिकन (मूर्तिभंजक) बना गॉव-गॉव में लूटमार करता हुआ अलाउद्दीन खिलजी बानपुर के वैभव को देश एक दिन यहां ठहरा । विश्व विजय एवं अपने धर्म स्थापन की ललक को अपनी मुस्कान में नापता हुआ समयाभाव के कारण भेलसा चंदेरी से होता हुआ वापस लौट गया । 22.10.1296 को अपने श्वसुर और पितृव्य (चाचा) जलालुद्दीन को मारकर दिल्ली का शासक बना था । उसका बलवन के लालमहल में राज्याभिषेक हुआ था । अब वह अमीर-ए-तुजुक से बदलकर सानि (सिकंदर द्वितीय) कहलाने लगा सन् 1307 में देवगिरि नरेश शंकरदेव के वार्षिक कर न देने से क्षुब्ध हो अलाउद्दीन ने अपने नायब मलिक काफूर को वरीदां (गुप्तचर अधिकारियों) और कई मुनहिशों (गुप्तचरों) सहित विशाल सेना लेकर भेजा । उसने रास्ते में पड़ने वाले बानपुर के बारे में भी अच्छी तरह समझा दिया । बानपुर में चमू (सेना) सहित मलिक काफूर ने पड़ाव डाला । यहां सिद्ध पीठ के शिखर पर फहराती हुई उच्चूड और ऋचीषों (घण्टियों) के स्वरों ने उसे आकर्षित किया । प्राच्यक मंदिर की परिक्रमा में विप्रोषित भर्तृकाएं (विदेश गए अपने पति के प्रत्यागमन की मनुहार करती स्त्रियां) आस्थावान आवालवृद्ध चरिष्णु (इधर-उधर घूमते हुए) भक्त वृंद के सुरम्य और धार्मिक वातावरण को देखते ही खिलजी के अस्त्र-शस्त्र सज्जित सैनिकों ने ध्वस्त कर दिया । हिजड़े मलिक काफूर ने बानपुर के वैभव को नेस्तनाबूद करने में कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी ।

स्वनाम धन्य अनाम वीर योद्धाओं ने इस यावनी सेना से लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की । लबालब जल से भरे तालाब ने वीरों के शवों को अपने अंक में आश्रय दिया । कतिपय वीर बंधुओं ने सती मार्ग का वरण किया, जिनके स्मृत्यवशेष चैत्यालय आज बड़े ताल के बांध देखे जा सकते हैं । कालांतर में ध्वस्त मंदिरों की 22 भुजी गणेश मूति न्युब्जित (औंधी) पड़ी रही । शेष मूर्तियां कला के कलंकों द्वारा उत्सन्न कर दी गईं । अब भी इस क्षेत्र से अनेक प्रकार की मूतियों का मिलना जारी है बानपुर नगर वीरानी में बदल गया ।

सन् 1848 में तत्कालीन चंदेरी नरेश मानसिंह मराठा सेना से पराजित हो गए थे । उनके एक भाई जोरावर सिंह पाली, श्री सूबाजू भैलोनी एवं श्री धीरज सिंह बानपुर के जागीरदार थे । मानसिंह एक दिन प्रवास में छुपते हुए इस स्थान पर आए और भगवान गणेश से अपनी कार्य सिद्धि का वर मांगा । महरौनी नगर, जो महोनी (1262 ई0 तक) के नाम से प्रसिद्ध रहा, को मानसिंह ने पुनः आबाद कर यहां एक किले का निर्माण कराया ।

सन् 1802 में मोद प्रहलाद के राजा बनने के बाद सन् 1830 में बानपुर राजधानी बनी । अब गणेश मंदिर का पुनरुद्धार का विचार बना किंतु यह विचार कार्यान्वित न हो सका । 1842 ई0 में मोदप्रहलाद की मृत्यु के बाद मर्दनसिंह (1842 - 1858 ई0) का शासन काल बहुत उथल-पुथल भरा रहा । 11.3.1858 को वायलो ने बानपुर को तोपों से ध्वस्त कर दिया । बानपुर एक बार फिर वीरान हो गया । सिद्ध पीठ की किसे पड़ी थी? सारा नगर अराजकता के दौर में सिसक रहा था सन् 1955-56 में स्वातंत्र्य वीर मर्दनसिंह के प्रपौत्र दिमान कृष्णप्रताप सिंह तथा राव रामप्रताप सिंह के सान्निध्य में गिरी हुई गणेश मूर्ति को सीधा कराया गया। बड़े ताल के बांध से लाए गए एक सती चौरा को मूर्ति के पीछे आधार स्वरूप टिका दिया गया । एक छोटी सी मठिया बना दी गई

22 भुजी इस गणेश मूर्ति को झांसी संग्रहालय के क्यूरेटर ने 18 भुजी तो के.के. शाह ने 24 भुजी असावधानीवश बिना स्थान को देखे ही लिख दिया है । बुंदेली साहित्यकार कैलाश मड़बैया, बुंदेलखण्ड के पुरातत्वविद् हरिविष्णु अवस्थी तथा इन पंक्तियों के लेखक के पूज्य पिताश्री ने स्थान निरीक्षण एवं मूर्ति के चित्रों सहित अपने विभिन्न आलेखों में इस गंभीर त्रुटि का परिमार्जन किया ।

इस स्थान पर आज भी बाबा के गीत गाते हुए सुदूर ग्रामांचलों से आए ग्राम्य-जन गाते हुए दर्शन कर अपने को अनुग्रहीत करते हैं । पुष्प-माला को लाकर वर गणपति को पहना तदुपरि स्वयं धारण करने में कृतकृत्य हो जाते हैं । बहुप्रचलित बाबा का गीत भी यहां अपने पाठकों को देना अनुपयुक्त न होगा, गीत में आए भैरोंलाल बाणासुर हैं -

गनेश देव गजरा को विरजे हो
गजरा को विरजे भोरइं ठाड़े मलनियां के द्वार ।
मलनियां गजरा नाहिं देवै
गजरा न देवै गजरा नइयां छबीले महाराज ।
गनेश देव दूला तौ बने
दूला बने सिद्धि बुद्धि दुल्हन जोरें हाथ ।
धुजन पै माता गौरा झूलें
माता गौरा झूलें त्रिशूलन भोलानाथ ।
दरश की अरे बेरा तौ भई
बेरा भई पट खोलो रंगीले भैरोंलाल ।
कपाट तौ अरे बेई खोलें

बेई खोलें जी के जगा दए भैरों भाग ।

बानपुर में लगने वाले मेलों में एक प्रमुख नाम भगवान श्री शान्तिनाथ के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर लगने वाले वार्षिक मेला का भी है । बानपुर चंदेलों के शासनकाल में जैन लोगों का अतिशय क्षेत्र बन गया था । यहां का सहस्रकूट चैत्यालय अपनी मनोहारी शोभा के कारण न केवल देश-भर के जैनियों के तीर्थों में; अपितु बुंदेलखण्ड के प्रमुख आकर्षण-केन्द्रों में सम्मिलित किया जाता है । यहां प्रतिवर्ष लगने वाले मेले में क्षेत्र के लोगों का परस्पर मेल-मिलाप देखते ही बनता है । यह मेला विगत 26 वर्षों से अद्यावधि पर्यंत प्रतिवर्ष फरवरी माह में आयोजित किया जाता है जैन धर्म के समृद्ध लोगों द्वारा इस मेले में इस अत्यंत पिछड़े क्षेत्र के लोगों के लिए चिकित्सकों के दल की एक सप्ताह के लिए व्यवस्था की जाती है, जिसमें व्यक्तियों की निःशुल्क नेत्र एवं सामान्य चिकित्सा की जाती है । इस शिविर की यहां के सुविधा विहीन लोग वर्ष भर प्रतीक्षा करते हैं । जिससे लाभान्वित होकर वे अपने शरीर के सामान्य रोगों और नेत्र-रोगों से मुक्ति पाते हैं ।

सहस्रकूट चैत्यालय नागर शैली में बनाए गए अनेक मूर्ति-मंदिरों की श्रृंखला है। जिसमें जैन तीर्थंकरों ऋषभनाथ, शांतिनाथ, वर्धमान महावीर, अरहनाथ तथा ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबली की प्रतिमाएं स्थापित हैं । मूर्तियों की स्थापत्य कला एवं उनके विस्तृत विवरण के लिए जैन धर्मावलंबी बुंदेली साहित्यकार कैलाश मड़बैया की पुस्तक 'बानपुर का विस्मृत वैभव - बानपुर' का अवलोकन किया जा सकता है ।

संदर्भ-स्रोत

1 बुंदेलखण्ड का इतिहास, डॉ काशीप्रसाद त्रिपाठी
2 श्री कृष्ण किशोर द्विवेदी स्मृति ग्रंथ
3 कल्याण गणेश अंक, गणेश पुराण
4 संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे
5 खिलभाग हरिवंशपुराण, वेद-व्यास
6 चंदेलकालीन कला और संस्कृति, डॉ महेन्द्र वर्मा
7 प्रतिमा विज्ञान
8 U.P. Gazetteer Distt. Jhansi, Edited by Isha vasanti Joshi, p.36
9 पी. एन. रूसिया अभिनंदन ग्रंथ : 'बानपुर - बीता वैभव', हरिविष्णु अवस्थी
10 बुंदेलखण्ड का विस्मृत वैभव - बानपुर, कैलाश मड़बैया
11 बुंदेलखण्ड : प्रकृति और पुरुष, संपादक-डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी एवं अन्य
12 श्री मद्भागवत महापुराण

- ग्राम छिल्ला (बानपुर), जनपद - ललितपुर

बानपुर के लोकदेवता

- पं0 बाबूलाल द्विवेदी

'दैवाधीनं जगत सर्वम्' उक्ति के अनुसार समस्त जगत देवताओं के अधीन है। यास्क के निरुक्त में दैवत काण्ड में देवताओं के दो भेद बताए गए हैं -

1 **नित्य देवता -** इनमें गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति भगवत्कोटि में एवं प्रजापति, यम, वरुण, इन्द्र, आदित्य आदि सामान्य अधिकारी कोटि के देवता होते हैं ।

2 **नैमित्तिक देवता** - इनके भी दो भेद हैं (क) मर्त्य देवता एवं (ख) अधिष्ठातृ देवता ।

यह अधिष्ठातृ देवता ही लोकदेवता कहलाते हैं, जो विभिन्न स्थानों पर विभिन्न नामों को धारण करते हुए साधक की मनः कामना पूरी करते हैं ।

राजस्थान में पाबूजी (ऊँटों के देवता), गोगाजी (सर्पों के देवता), मल्लिनाथ, तेजाजी, रामदेवजी, देवजी; हिमाचल प्रदेश में मुख्यतः पहाड़िया बाबा; असम में जयमती देवी एवं जयदौल बाबा एवं बिहार के मिथिलांचल में दाई बाबू, विषहरा, सती, अघोरी, दीनाभद्री एवं महंकार आदि लोकदेवता लब्धप्रतिष्ठ हैं । बुंदेलखण्ड में भी अनेक लोकदेवता हैं । बुंदेलखण्ड में पाए जाने वाले लोकदेवता बानपुर में भी पूजे जाते हैं । यह लोक देवता यहां के प्रत्येक गांव-खेरा में देखे जा सकते हैं । ऐसे कुछ प्रमुख देवता इस प्रकार हैं -

1. कारसदेव - जिस प्रकार राजस्थान में रामदेवजी को द्वारिकाधीश भगवान श्रीकृष्ण का अवतार माना जाता है । बुंदेलखण्ड के बानपुर में वही स्थान हमारे देवहरे अथवा कारसदेव को प्राप्त है । सृष्टि के अशांत वातावरण में शांति का स्वर फूंकने वाले, नृशंसों से गोवंश की रक्षा करने वाले भगवान मुरली मनोहर श्री कृष्ण जब स्वधामगमनोत्सुक हुए, तब जन-जन की करुण पुकार और क्रन्दन सुनकर भगवान फूलनदेव, कमल कन्हैया एवं सवाई सूरजपाल अपनी बहन जगज्वाला आह्लादिनी के साथ इस धराधाम पर प्रकट हुए । बहन जगज्वाला जल का लोटा भर कर लाईं, भगवान शंकर ने प्रकट होकर इन सबको दीक्षा दी एवं दूध देने वाले पशुओं के संरक्षक होने का आशीर्वाद प्रदान किया । फूलनदेव दूध पीने के लिए मचल उठे । इतने में भगवान कृष्ण के अभिन्न मनसखा मनसुखा के अवतार हीरामन दादा भगवान फूलनदेव के निर्देशानुसार वहीं पर खड़ी अपनी अनबियानी (अप्रसूता) गाय को दुहने लगे । कारसदेव दूध पीकर प्रसन्न हो उठे । वहीं तुरंत एक मोर प्रकट हुआ । देव मोर पर बैठकर उसे नचाने लगे । वहीं पर एक मंगल नाम के अंधे एवं कोढ़ी कुम्हार ने देव को सवारी की आवश्यकता समझकर मिट्टी के वर्तन बनाने वाले चाक द्वारा मिट्टी का घोड़ा बना दिया । देव की कृपा से वह घोड़ा लीलागिर नाम से फूलनदेव की सवारी बना । उसी पर सवार हो भगवान अपने भक्तों की गोष्ठों में गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं ।

यह घटना भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी के दिन घटित हुई, तभी से भक्त भगवान कारसदेव को गोष्ठगीत - गोटें गाकर ढाक (डमरू के आकार उससे कहीं बड़ा एक वाद्य यंत्र, जो पैरों में बांधकर मुड़ी हुई लकड़ी द्वारा बजाया जाता है) के करुण स्वर में पुकारते हैं ।

यह गोटें मात्राओं की सीमा से परे तुकांत और अतुकांत पद्यबद्ध रचनाएं होती हैं । गोटों की भावोत्पादकता सुनने वाले के हृदय को छू जाती है । एक गोट के कुछ बोल इस प्रकार हैं -

सुनियो कमल कन्हैया सवाई सूरजपाल सरकार ।.....
मंगल गरज हथिया पछारन हार ।।.....
अनबियानी लगावन हार ।
आंखन आंदरौ कोड़ी मंगल कुमार ।।.....
जिनने मटियर बछेरा भौं दए ।
ऊमें जीवन पार दए ।।.....

इत्यादि प्रार्थनापरक गोटों की पुकार सुन 'घोलना' में देव का भावावेश हो जाता है । सभी उपस्थित गोटिया और जनसमूह जयघोष के बाद अपने संकट निवारण हेतु विनय करते हैं । कारसदेव से भावावेशित घोलना सबको रक्षा का - इच्छापूर्ति का आश्वासन देता है । भगवान कारसदेव साधक की मनः कामना पूरी करते हैं । यह इस क्षेत्र में प्रचलित मान्यता है । इसी कहानी से मिलती-जुलती बुंदेलखण्ड के विविध स्थानों पर कई कहानियां पाई जाती हैं । कारसदेव के कुछ प्रमुख जयकारा इस प्रकार हैं -

कमल कन्हैया सरकार की जय। मन मोरा की जय ।
सवाई सूरजपाल की जय। बेंदा गोटिया की जय । हीरामन दादा की जय।
बहन जगज्वाला की जय। लीलागिर बछेरा की जय ।

2. हरदौल – वीर प्रसू बुंदेलभूमि को विश्वविख्यात करने एवं बुंदेला-वैभव का वैशिष्ट्य बढ़ाने वाले भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरांकित महाराज वीरसिंह जूदेव प्रथम (जन्म सन् 1542 – मृत्यु 1627 ई0)हुए, जो ओरछेश महाराज मधुकर शाह के चतुर्थ पुत्र थे । इन्हें अपने पिता द्वारा बड़ोनी की जागीर प्राप्त हुई थी । महाराज वीर सिंह की तीन पत्नियां थीं । शहरा शाहाबाद के श्यामसिंह पँवार की पुत्री अमृतकुमारी थीं, जिनसे क्रमशः जुझार सिंह, पहाड़ सिंह, नरहरदास, तुलसीदास एवं बेनीदास पांच पुत्र हुए । दूसरी रानी खैरुवार के पवारसिंह की पुत्री गुमान कुंवर थीं, जिनसे क्रमशः हरदौल (हरदेव), भगवान दास (भगवंतराय), चंद्रभान एवं किशनसिंह चार पुत्र एवं एक पुत्री कुंजाकुंवरि हुईं । वीरसिंह की तीसरी रानी शहरा शाहाबाद के धँधेरे श्री पूरनसिंह की बेटी पंचमकुमारी थीं, जिनसे बाघराज, माधव सिंह एवं परमानंद तीन पुत्र हुए ।

जुझार सिंह का जन्म सन् 1563 एवं विवाह 25 वर्ष की उम्र में हरी सिंह पँवार की षोडशवर्षीय पुत्री चंपावती के साथ हुआ । इनसे क्रमशः विक्रमाजीत, उदयभान एवं दुर्गभान तीन पुत्र हुए । विक्रमजीत का विवाह अठारह वर्ष की आयु में रामसिंह धँधेरे निवासी कटरा की पुत्री कमल कुंवर के साथ सन् 1607 में हुआ था । डॉ के.पी. त्रिपाठी अपने ग्रंथ 'बुंदेलखण्ड का वृहद् इतिहास' में 1584 ई0 एवं मृत्यु 50 वर्ष की आयु में 1634 ई0 में बताते हैं ।

हरदौल का विवाह सन् 1628 में बीस वर्ष की आयु में दुर्गापुर के जागीरदार लाखनसिंह पँवार की पुत्री हिमाचल देवी के साथ हुआ । विवाह के दो वर्ष बाद इनके पुत्र विजयसिंह का जन्म हुआ । हरदौल को बड़ागाँव की जागीर मिली थी। हरदौल में देशप्रेम एवं धर्म जाति पर मर मिटने जैसी उदात्त भावनाएं कूट-कूट कर भरी थीं । उस समय हिन्दुओं को जबरन धर्मान्तरण करवाया जाता था । हरदौल के पिता वीरसिंह जू देव 13.10.1605 को, अकबर की मृत्यु के पश्चात् ओरछा के राजा बने थे । वीरसिंह ने अकबर के नवरत्नों में से एक अबुल फजल, जिस पर आरोप था कि वह इस्लाम धर्म में हिन्दुओं का धर्मान्तरण करवाता है, का बध कर दिया । कुछ इतिहासकारों का कहना है कि यह हत्या वीरसिंह ने अकबर के पुत्र जहांगीर के कहने से इसलिए की थी, जिससे वे राजा बन जाएं किंतु यह तथ्य मिथ्या एवं भ्रामक है । ऐसा कहने वाले इतिहासकार अबुल फजल की हत्या के कारणों पर मौन हैं ।

हरदौल की धर्मनिष्ठा एवं प्रजावत्सलता एवं देशभक्ति को देखते हुए महाराज वीरसिंह इन्हें ओरछा की राजगद्दी देना चाहते थे । किंतु गृहकलह से हिन्दू धर्म कहीं खतरे में न पड़ जाए; अतः महाराज को जुझार सिंह को ओरछा का राजा बनाना पड़ा ।

राज्यविरोधी तत्व मुग़लों में लोकप्रिय होना चाहते थे । उन्होंने एक दिन चौरागढ़ की विजय से लौटे जुझार सिंह के पास एक संदेश वाहक प्रतीत कुमार कायस्थ (बुंदेली माटी के सपूत के लेखक हीरा सिंह ठाकुर ने इसकी जाति खंगार बताई है) को भेज 22 वर्षीय हरदौल का 60 वर्षीय पतिव्रता भाभी से अवैध संबंध होने की चुगली करा दी । जुझार सिंह की आज्ञानुसार पतिव्रता चंपावती ने ओरछा में फूलबाग स्थित नौचौका महल में विषयुक्त भोजन देवर को दिया । चंपावती को यह कार्य असह्य लग रहा था । किंतु जुझार सिंह की आज्ञा के आगे वह विवश थी । फिर भी उसने हरदौल को भोजन में विष होने की बात बता दी । हरदौल ने अपने क्षात्र धर्म और मां समान भाभी के दिये भोजन को अमृत समझ कर ग्रहण कर लिया । हरदौल की मृत्यु हो गयी । इस पाप से मुक्ति के लिए जुझार सिंह ने अघमर्षण यज्ञ किया एवं मृत्यु स्थल पर हरदौल की समाधि बनवा दी । हरदौल की बहन कुंजा अपनी पुत्री के विवाह में भाई को निमंत्रण देने गई, जिसे यहां 'भात देना' कहा जाता है । जुझार सिंह ने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इस जघन्य कृत्य की कुंजा ने भी भर्त्सना की थी । विवश कुंजा हरदौल की समाधि पर निमंत्रण देकर अपने घर आयी अदृश्य वेष में वेरछा (दतिया) के परमार राजा देवी सिंह(हरदौल के बहनोई) के विवाह में हरदौल ने भरपूर सहयोग दिया । समूचे बुंदेलखण्ड में प्रत्येक गांव में हरदौल के चबूतरा बने हैं । ऐसी मान्यता है कि जिस प्रकार कुंजा की पुत्री के विवाह में हरदौल ने सहायता की उसी प्रकार लोगों के मांगलिक कार्य अदृश्य रूप में हरदौल संपन्न कराते हैं ।

3. सती चौरा – बिहार में होरिल सिंह की बहन भगवती ने स्वयं सती हो औरंगज़ेब के समय हो रहे इस्लामीकरण एवं अत्याचारों को रोकने हेतु अपना स्थान अमर बनाया एवं विवाह में युगल जोड़ी को सफल बनाने में प्रसिद्धि पायी । इससे उसके स्मारक बिहार में सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं । बुंदेलखण्ड में भी सती माई के चौरा मिलते हैं । इसके पीछे की घटना इस प्रकार है –

मुग़ल सम्राट शाहजहां ने चंदेरी नरेश देवीसिंह और उसके गौड़ साथियों द्वारा जुझार सिंह एवं उनके पुत्र विक्रमजीत सिंह के सोते समय सिर कटवा सीरोन की सरांय के चौराहे पर टंगवा दिए थे । जुझार सिंह के दामाद चंपतराय बुंदेला, जो छत्रसाल बुंदेला के पिता थे, ने कटे सिर लाकर सास चंपावती एवं बहू कमल कुंवर को दिए । ओरछा में कंचन घाट पर मिती कार्तिक शुक्ल नवमी संवत् 1691 तदनुसार दिनांक 30.10.1634 को ये दोनों महिलाएं अपने पतियों की मृत्यु पर सती हो गईं । इस घटना के बाद बुंदेलखण्ड में अपने पति की मृत्यु के अनंतर अनेक सतियां हुईं । सती-प्रथा का प्रचलन बुंदेलखण्ड ही नहीं देश के अनेक भागों में रहा था । ऐसी मान्यता है कि उनकी समाधि स्थल पर पूजा करने से अभीष्ट की सिद्धि होती है ।

4. गोसाईंन माता – ओरछेश पृथ्वीसिंह ने राजेन्द्रगिरि को झांसी के किले का अध्यक्ष बनाया उसने अपने नाम पर पृथ्वीपुर नगर भी बसाया । इसी राजेन्द्रगिरि ने झांसी में गोसाईं पुरा मुहल्ला बसाया था । यह कालान्तर में अनूपगिरि के नाम से मौदहा का राजा बना । सन् 1830 में पत्नी की मृत्यु होने पर अनूपगिरि के वंशज नरेन्द्रगिरि को अनूपगिरि की पत्नी की समाधि पर पूजा करने से पुत्र की प्राप्ति हुई । इस प्रकार यह प्रसिद्धि हो गई कि गोसाईंन माता संतानप्रदात्री माता हैं ।

5. बहुला माता – उज्जैन में साधु नाम के वैश्य की कन्या को ज्योतिषियों ने बताया कि विवाह की प्रथम रात्रि को ही इसके पति की सर्पदंश से मृत्यु होगी । ऐसा ही हुआ । बहुला अपने पति के शव के साथ नदी में खड़ी रही । उसने वहां देखा कि एक धोबिन कपड़े साफ करते समय रोने पर अपने बच्चे को मार डालती और घर जाते समय जीवित कर लेती । बहुला के धोबिन से बच्चों को जीवित करने के रहस्य को पूंछने पर उसने बहुला को महादेव के समक्ष नाचने को कहा। नृत्य करने पर उसका पति जीवित हो उठा । कहते हैं बहुला माता की पूजा से सर्पदंश एवं अन्य कारणों से अपमृत्यु का भय नहीं रहता ।

उपर्युक्त लोकदेवताओं के अतिरिक्त बानपुर में स्थान विशेष के अलग-अलग नामों से प्रचलित माई बाबू (मातृका ब्रह्म), बरम (ब्रह्म) देव, बूढ़ा बाबू (वृद्ध ब्रह्म), बाबू की दौज, कुंवर साहब, गोंड़, खरगोंड़, राजगोंड़, नटिनी रामसिंह, तेजसिंह भैंसा बाबा आदि अनेक स्थानीय अधिष्ठातृ लोक देवता हैं, जिनका अस्तित्व घटता-बढ़ता एवं बनता-बिगड़ता रहता है ।

क्योंकि सभी रूपों में वही एक परमेश्वर विद्यमान है, जैसा गीता में कहा गया है -

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्यः पार्थ सर्वशः ।
ये यथा माम प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।।

अस्तु, अंत में मैं सभी लोकदेवताओं को नमन करता हुआ सबके कल्याण की कामना करता हुआ अपनी कार्यसिद्धि की याचना करता हूं ।

– 'मानस मधुप', 'साहित्यायुर्वेद रत्न',
ग्राम छिल्ला (बानपुर) जनपद ललितपुर

स्वतंत्रता के अग्रगण्य सेनानी महाराज मर्दन सिंह

भारत मां के लाल लाड़िले की यह भूमि सुहाई ।
क्रान्ति दूत बन चिर स्वराज की जिसने ज्योति जलाई ।।
शैल श्रृंग पर दिव्य दिवालय पूरब में राजे ।
पश्चिम नगर मध्य महिलन ढिंग सुख-समृद्धि साजे ।।
उत्तर में मैदान मातु के मठ मंदिर छाजे ।
दक्षिण सप्त सती की मढ़ियां कीरति गन गाजे ।।
अंजनि सुअन सुआंजनेय की चहुं दिशि फिरी दुहाई ।
भारत मां के लाल लाड़िले की यह भूमि सुहाई ।।
सरवर सौम्य दुर्ग पर पानी पानीदार चढ़ा है ।
ऊँचा माथ उठाकर प्रहरी खोकर रत्न खड़ा है ।।
वहां नृपति मर्दनसिंह ने वीरों की आन निभाई ।
आज़ादी का वृक्ष रोप आज़ादी देख न पाई ।।
स्वतंत्रता की चिनगारी बन नृप ने आग लगाई ।
भारत मां के लाल लाड़िले की यह भूमि सुहाई ।।
सरढिंग ग्राम शाहपुर में दृढ़ सुरंग खड़ी है प्यारी ।
बेटी साहवान की आन की झांकी है मनहारी ।।
देव स्थान सुहावन पावन मनभावन भारी ।
शुचि जल स्रोत सतत वह निर्मल त्रिविध ताप हारी ।।
प्रकृति नटी ध्रुवकटी शिला पर शाश्वत कला बिठाई ।
भारत मां के लाल लाड़िले की यह भूमि सुहाई ।।

– रामनारायण श्रीवास्तव 'श्याम'

बानपुर के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी

- पं0 बाबूलाल द्विवेदी
- मनोहरलाल पुष्पकार[6]

जब पूरा देश स्वतंत्र होने के लिए ब्रितानवी शासन के विरुद्ध मांग, आन्दोलन एवं संघर्ष हेतु तत्परता से गांधी जी के नेतृत्व में उतावला था। 26 जनवरी 1930 को स्वराज्य दिवस मनाया जाय एवं 11 सूत्रीय मांगें वायसराय लार्ड इरविन के सम्मुख रखी जाएं - गांधी जी के इन प्रयासों में असफल होने के कारण जन-आन्दोलनों ने जन्म लिया। नमक-कर के विरोध में सत्याग्रह आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन की व्यापक लहर चल पड़ी। भला, बानपुर इन सब गतिविधियों में कैसे पीछे रहता। उस समय अंग्रेजों ने लगान न मिल पाने तथा अधिकांश विरोधी स्वर उठने के कारण बानपुर की लम्बरदारी कई हिस्से बनाकर बेच दी थी। मुख्यतः तीन पट्टी थी , एक पट्टी के लंबरदार कुंवर भवानी सिंह बुन्देला भैलोनी वारे (राजा के वंशज) जिसके मुख्तार करीम खां थे, दूसरी पट्टी अनिरुद्ध सिंह की, जिनके मुख्तार वंशी भिटा (यादव जी) तथा तीसरी पट्टी, जो ललितपुर के पं0 गोपालराम तथा सरजू प्रसाद किलेदार ने मिलकर खरीदी थी, जिनके मुख्तार माधव सिंह गहरवार थे। गोपालराम के पुत्र रामभरोसे की पत्नी गरई दुलैया अधिकांशतः बानपुर में रहा करती थीं तथा सरयू प्रसाद के पुत्र नंदकिशोर किलेदार का आना-जाना भी बानपुर में बना रहता था, जो उस समय के प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे हैं। चूंकि ललितपुर में श्री किलेदार जी के घर अनेक क्रान्तिकारियों - चंद्रशेखर आज़ाद, शंभुनाथ आज़ाद आदि आते-जाते रहते थे। इस प्रकार देश के जन-आन्दोलनों में बानपुर की सक्रिय भागीदारी स्वाभाविक थी। इससे पूर्व बानपुर में रामचन्द्र पांडुरंग तात्या टोपे जो जमड़ार नदी के किनारे बसे ग्राम अस्तौन के किले में यदा-कदा प्रवास करते बानपुर में आया-जाया करते थे। बुन्देलखण्ड के तत्कालीन 598 राज्यों में बानपुर प्रमुख विद्रोही रहा है। ब्रितानवी दमन चक्र में अनेक नामी-अनामी अमर हुतात्म स्वनामधन्य यशःशेष हो गए। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की 7 अगस्त 1942 में रात्रि को मुंबई में एक बैठक बुलाई गई। दो दिन के विचार विमर्श पश्चात् 'भारत छोड़ो' (अंग्रेजो भारत छोड़ो -Quit India) आन्दोलन की गांधी जी द्वारा की गई घोषणा आग की चिनगारी की तरह फैल गई। 9 अगस्त को गांधी जी गिरफतार कर लिए गए। बानपुर में विजय अभियान हेतु बिगुल बज उठा। अनेक बहादुरों ने अपना बलिदान दिया। जेलों में जगह नहीं बची। कोड़ों के आघात-संघात में ही कुछ व्यक्ति धराशायी हो स्वतंत्रता की नींव के पत्थर बने। कुछ लोगों ने तत्कालीन काला कानून भारतीय प्रतिरक्षा कानून की 38 वीं धारा के अंतर्गत हाथों में लोहे की जंजीरें पहनीं। इस आन्दोलन में समूचे देश में सरकारी आंकड़ों द्वारा मात्र 15000 आंदोलनकारी मारे गए; बताया गया।

स्वतंत्रता का इतिहास विकास की एक प्रक्रिया है, परिवर्तन का एक ऐसा क्रम जिसका अंत स्वतंत्रता है - इस क्रम में चाहे बुन्देला विद्रोह (1842) प्रथम स्वातंत्र्य समर (1857), असहयोग आंदोलन, नमक आंदोलन तथा भारत छोड़ो - सभी में बानपुर में आज़ादी के दीवाने, जिनका जन्म आग की लपटों से हुआ था। वे मिट्टी की काया वाले वीर अनेक रूपों में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य वीर के रूप में प्रकट हुए, जो बानपुर की बान को इतिहास में आज भी सुरक्षित रखे हैं। सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में भागीदार बानपुर के विद्रोही सेनानियों का वर्णन अधोप्रस्तुत है -

1. अयोध्या तनय परमोले - रिल्ली अगिया के नाम से पहचाने जाने वाले यह यादव वीर सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भाग लेकर एक वर्ष का कठोर सश्रम कारावास तथा एक सौ रुपए का अर्थदण्ड भारत प्रतिरक्षा कानून की 38वीं धारा के अंतर्गत भोगकर स्वनामधन्य हो गए

2. अयोध्या प्रसाद सेवारे - सन् 1941 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में सक्रिय भाग लेने के कारण एक वर्ष की कठोर कैद तथा एक सौ रुपए का अर्थदण्ड देकर जीवनपर्यन्त राष्ट्रीय गतिविधियों से जुड़े रहे।

3. अनंदी तनय बिन्दे यादव - उन दिनों बानपुर में क्रान्तिवीर पं0 विजयकृष्ण जी खेड़ापति मंदिर में रहा करते थे। ये अनंदी अगिया को दल का सभापति बनाकर बम बनाना एवं चलाना सिखाते थे। इस यादववीर ने 30 अगस्त 1942 को अपनी गिरफ्तारी देकर एक सौ रुपए अर्थदण्ड देकर एक वर्ष का सश्रम कारावास भोग बानपुर का नाम रोशन किया।

4. गंगा तनय हरप्रसाद खंगार - गुरिल्ला पद्धति से दुश्मनों पर आक्रमण करने के दुस्साहस और बहादुरी में प्रसिद्ध रही खंगार जाति का गौरव यह वीर भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण भारत प्रतिरक्षा कानून के अंतर्गत 30 अगस्त 1942 को जेल के सींखचों में बंद कर दिया गया। एक वर्ष 3 माह का कठोर सश्रम कारावास भोग अर्थदण्ड के रूप में भी सर्वाधिक दो सौ रुपए भी

[6] . प्रधानाध्यापक, जूनियर हाई स्कूल बानपुर

इन्हैं भोगने पड़े। जुर्माने की यह धनराशि चुकाने हेतु सोने की एक गुंज - लगभग 10 तोला, एक गुंवाई खेत तथा एक बैलगाड़ी बेचनी पड़ी। खाने-पीने और जीने का सहारा कुछ भी शेष न रहने पर मेहनत मजदूरी से अपना गुजारा करते हुए स्वनामधन्य हुए। इनका पौत्र मुन्नालाल राय आज अपनी देश भक्ति और ईमानदारी के लिए अपनी खानदानी मूंछ और पूंछ को बरकरार बनाए हुए हैं।

5. गजराज सिंह तनय बख्तावर सिंह - 1912 में जन्मा यह क्षत्रिय वीर अपनी मां का वात्सल्य पूरे पांच वर्ष भी नहीं पा सका। मां स्वर्ग सिधार गई। कुछ समय बाद पिताजी भी कालकवलित हो गए। तब ये अपने मामा के यहां टीकमगढ़ में रहे। वहां से जूना अखाड़े के संन्यासियों के साथ बाहर भाग गए। 12 वर्ष बाद 26 वर्ष की अवस्था में ये बानपुर लौटे। इनके अग्रजों - निरपत सिंह पूर्व प्रधान, भगवत सिंह नगर कांग्रेस अध्यक्ष, कैप्टन जोधा सिंह तथा मुंशी मंगलसिंह - ने इन्हें संन्यासियों में से पकड़ कर महरौनी में इनका विवाह करा दिया। परंपरागत शासकों की प्रवृत्तियों को छोड़ यह बांकुरा सच्चा गांधीवादी बन गया। इनकी पत्नी कक्षा 3 उत्तीर्ण कर महरौनी में अध्यापिका हो गईं थीं, ने भी हाथ में तिरंगा थामकर अपने पति के देशभक्ति पूर्ण कार्यों में कंधे से कंधा मिलाया। 30.8.1942 को श्री गजराजसिंह ने गिरफ्तार होकर एक वर्ष की कैद और एक सौ रुपए का अर्थदण्ड हंसते-हंसते स्वीकार किया।

6. गोरेलाल तनय उद्देत चड़ार - दिनांक 5.5.1918 को जन्म लेकर इस वीर ने पं0 जवाहरलाल नेहरू के भाषणों से प्रेरणा पा पं0 रामेश्वर प्रसाद शर्मा के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों को खाद्य सामग्री संदेश आदि भेजने में बहुरूपिये का कार्य किया। सन् 1942 के आंदोलन में अंग्रेजों के समक्ष फनपज प्दकपं की जगह 'कुच इण्डिया' कहते-कहते पकड़े गए। अंग्रेज इन पर के कारण 21 दिन बाद जेल से छुट्टी पाई। अर्थदण्ड न चुका पाने के कारण इनका मकान कुर्की हो गया हंसते-हंसते कोड़े बरसाते रहे। एक सौ रुपए का अर्थदण्ड भोगने के बाद सन् 1943 में पुनः अंग्रेजों द्वारा पकड़े गए। दो माह की सजा भुगत ही रहे थे कि कोड़ों की मार से अस्वस्थ हो जाने

सन् 1960 से बानपुर डाकघर में पोस्टमैन हो गए। यह देश भक्त अपनी निष्ठा और कर्तव्यपरायणता को अपने इकलौते पुत्र श्री मुन्नालाल वर्मा को अपनी विरासत सौंप स्वनामधन्य हो गए।

7. गोपाल प्रसाद - जन्म और जाति के परिचय से विहीन यह बहादुर भी सन् 42 के आन्दोलन में सश्रम कारावास अर्थदण्ड सहित भोग स्वतंत्रता की नींव का पत्थर बना।

8. घसीटे तनय कल्लू - 23.7.1942 को गिरफ्तार हुआ यह वीर जेल में दो माह तक कठिन यातनाएं भोगता रहा। अर्थदण्ड जमा न कर पाने पर माफी मांग कर घर वापिस लौट क्रान्तिकारियों का सहयोगी बना रहा।

9. पं0 गया प्रसाद दीक्षित - जालिमलाल दीक्षित का यह बांका बहादुर बेटा अपने प्राणों की बाजी लगाकर देश की आज़ादी में अपना सर्वस्व स्वाहा करते हुए भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय सहयोगी रहा। एक वर्ष की कैद एक सौ रुपए अर्थदण्ड सहित भोग देशसेवा के कार्यों में संलग्न रहे। लोक निर्माण विभाग में कार्यरत जमना प्रसाद दीक्षित को ऐसे क्रान्तिवीर के पुत्र होने का गौरव प्राप्त है।

10. जयराम तनय कन्हैयालाल - 22 वर्ष की युवावस्था में विद्रोह का बिगुल बजाने वाले सेहारे जी भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपने साथियों जेल गए। एक वर्ष का सश्रम कारावास तथा एक सौ रुपए अर्थदण्ड भोग देशभक्ति और आदर्श के लिए प्रसिद्ध हुए।

11. डमरू तनय गिट्ठे (गथायन) - भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भागीदार रहा यह वीर गंगा तनय हरप्रसाद खंगार (जमादार) के साथ 30.8.1942 को जेल गया तथा एक साल तीन माह की जेल दो सौ रुपयों के अर्थदण्ड सहित अनेक यातनाएं भोगीं।

12. त्यागी बाबा जी - मूलतः यह ग्राम चिगलौवा के निवासी थे। सन् 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय भागीदार रहते हुए आज़ादी की अलख गांव-गांव में जगाने के अपराध में जेल में डाल दिए गए। छः माह की कैद भोगने के बाद मुक्त हुए। बाबा के पास कोई मकान न होने के कारण अर्थदण्ड के एवज में अतिरिक्त सजा काटकर बानपुर में रहने लगे।

13. देवी सिंह तनय सरदार सिंह - मोद प्रहलाद की रिश्तेदारी करेरुवा जिला मिर्जापुर में थी मोद प्रहलाद के बुलाने पर गणेश जू परमार, सरदार सिंह परमार, जगन गोलंदाज, मौलवी भिन्ने नाई, नांगल एवं अगिया का परिवार करेरुवा से बानपुर आकर निवास करने लगे थे। गणेश जू परमार विरक्त होकर मंदिर में रहे। इनके भ्राता सरदार सिंह के यहां पुत्र रूप में वंश परंपरा का गौरव बढ़ाते हुए देवी सिंह ने क्रमशः नंदकिशोर किलेदार तत्पश्चात पं0 रामेश्वर प्रसाद शर्मा के नेतृत्व में आजीवन जनांदोलनों में भागीदारी करते रहे। वे भारत छोड़ो आंदोलन में 30.8.1942 को गिरफ्तार होकर एक सौ रुपए का अर्थदण्ड एवं एक वर्ष की कैद भोग सदैव आर्थिक अभावों से जूझते रहे। वाणी और विचारों की ओजस्विता के धनी देवी सिंह अपने पीछे तीन पुत्रों - राजेन्द्र सिंह, मनोहर सिंह एवं कृष्ण प्रताप सिंह - का भरा-पूरा परिवार अपने पीछे छोड़ गए हैं।

14. प्यारेलाल तनय शालिगराम - कांग्रेस आन्दोलनों के सिलसिले में इस क्रान्तिवीर ने सन् 1942 में एक वर्ष की सजा एक सौ रुपए के जुर्माने सहित भोगते हुए अपना नाम रोशन किया।

15. बल्देव सिंह तनय सोबत सिंह - भारत छोड़ो आन्दोलन की गतिविधियों में लिप्त पाए जाने के कारण एक सौ रुपए अर्थदण्ड सहित एक वर्ष की कैद यातना सही।

16. भगवान दास तनय कनई - क्विट इंडिया कहते-कहते कोड़ों की मार खाए भगवानदास ने एक वर्ष की सजा और एक सौ रुपए का जुर्माना भोग बानपुर की बान को बढ़ाया।

17. भगवान दास पुत्र कुन्नू लाल – यह वीर भी अपने साथियों सहित सन् 1942 की क्रान्ति में सबके साथ सजा भोगते हुए इतिहास के पृष्ठों पर अपना नाम लिखा गया।

18. भगवान दास पुत्र खुन्नी लाल ज्योतिषी – वस्तुतः ये कैलगवां के निवासी थे। देशी रियासतों में जन-जागृति के लिए समय-समय पर होने वाले सत्याग्रहों में भाग लिया करते थे। सन् 1942 में 25 वर्षीय यह युवक टीकमगढ़ में नुक्कड़ सभा करते हुए गिरफ्तार कर लिया गया। बारह माह की कैद तथा एक सौ रुपए जुर्माना भोगकर आजीवन देशभक्ति में तल्लीन रहे।

19. भूपत राम पुत्र जालम लाल झा – तोपों की ढलाई का काम करने में निपुण श्री राम सिंह निवासी श्रीनगर जिला महोबा से उनके दोनों पुत्र जालम और हरलाल को महाराजा मर्दनसिंह द्वारा बानपुर बुलाया गया था। उन दिनों बानपुर में अकेले जगन गोलंदाज इस विधा के कुशल कारीगर थे। जालम के ज्येष्ठ पुत्र भूपतराम थे। हरलाल के बड़े पुत्र छोटेलाल को द्वितीय विश्व युद्ध के चलते इंजीनियर बी. टी. टॉमस सन् 1942 में जापान ले गया, जो विभिन्न देशों की यात्रा करते हुए 17 वर्ष 8 माह तक जापान के एक पावर हाउस में काम करते रहे। भूपतराम सन् 1935 में 25 वर्ष की युवावस्था में राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। उदयपुरा के डाक बंगले में लगा जॉर्ज पंचम का चित्र जलाकर तिरंगा झंडा फहराने के फलस्वरूप पुलिस की छीनाझपटी में घायल हुए। उनका एक दांत टूट गया। इन्होंने जन-जागरण की गतिविधियों को चलाते हुए भारत छोड़ो आन्दोलन को 6-6 व्यक्तियों के दल सहित गांव-गांव अलख जगाई। 1942 में महरौनी में नुक्कड़ सभा करते हुए पुलिस की पिटाई सही। ये 30 अगस्त को गिरफ्तार हुए और एक सौ रुपए अर्थदण्ड एवं एक वर्ष की कैद भोग आजीवन देश भक्ति में संलग्न रहे। अपने पीछे एकमात्र पुत्र राममनोहर झा को अपनी निष्ठा विरासत में सौंप स्वनामधन्य हुए।

20. मंगलसिंह कटारिया तनय निहालसिंह सोलंकी – कलह के कारण इनके पूर्वज बड़ेगांव से बानपुर में परिहार, पिपरैया आदि स्वजातीय बंधुओं के साथ आए थे। पं0 रामेश्वर प्रसाद शर्मा झांसी – जो कुछ समय के लिए सरस्वती के संपादक(1915-1916) फिर बुन्देलखण्ड साप्ताहिक उरई के संपादक रहे, साइमन कमीशन के बहिष्कार, नमक आन्दोलन, सत्याग्रह आन्दोलन, फौजदारी, कानून संशोधन के विरुद्ध आदि विभिन्न आंदोलनों के सक्रिय संचालक जिनका कार्यक्षेत्र समूचा बुन्देलखण्ड था – के नेतृत्व में सन् 1934 से ही सक्रिय क्रान्तिकारी रहे सोलंकी जी सत्यमेव बानपुर की बान थे। उत्तरदायी शासन हेतु टीकमगढ़ नरेश से संघर्ष करने वाले मंडल कांग्रेस कमेटी के सदस्य, फिर अध्यक्ष रहे कटारिया जी (कटारी भाषण देने के कारण प्राप्त उपनाम) भारत छोड़ो आन्दोलन में एक साल कैद और एक सौ रुपए जुर्माना भोगने के बाद आजीवन समाज सेवा से जुड़े रहे।

21. मर्दन तनय सुकूं – किसान कार्यकर्ता के रूप में यह बांकुरा अंग्रेजों का मान मर्दन करता हुआ सुकूं अगिया के तीन सुयोग्य पुत्रों में सबसे बड़ा बहादुर बेटा था। भारत छोड़ो आंदोलन में अंग्रेजो भारत छोड़ो कहता हुआ 30 अगस्त 1942 को गिरफ्तार कर लिया गया। इन्होंने एक वर्ष की कैद तथा एक सौ रुपए जुर्माना हंसते-हंसते भरा।

22. रघुवीरसिंह तनय भगतसिंह गौर – सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के तहत एक वर्ष कठोर सश्रम कारावास भोग सदैव के लिए बानपुर के इतिहास को गौरवान्वित किया।

इनके अतिरिक्त बानपुर के निकटस्थ ग्रामों तथा जनपद ललितपुर के अनेक स्थानों में बलिदानी क्रान्तिवीर हुए हैं, जिनका वर्णन पुस्तक के लघु कलेवर में संभव नहीं है।

और कितउं नहिं पाई

नौनी सबकी सबै मताई हमें बुन्देली भाई।
बात हिए की करबे कों तौ हमकों जोई भाई।।
बोली बानी नौ बस बौई जामें ईसुरी गाई।
ऐसी सुगर मिठास 'भगौनी' और कितउं नहिं पाई।।

– भगवान दास माहौर

बानपुर की गढ़ी (किला)

अरविन्द नायक एड0[7]
मुरारी लाल जैन एड.[8]

बानपुर में गढ़ी का निर्माण चन्देरी नरेश दुर्जनशाल चन्देरी नरेश महाराज दुर्जनशाह (दुर्जनसिंह) ने अपने शासनकाल में कराया था। दुर्जनसिंह की तीन पत्नियां थीं । प्रथम पत्नी भौंरदा के धँधेरे कुशलसिंह की पुत्री मोहनकुमारी, जिनसे मानसिंह तथा जोरावरसिंह हुए थे। दूसरी पत्नी बामौर के धँधेरे हमीरसिंह की पुत्री अचलकुंवर, जिनके पुत्र धीरजसिंह तथा तीसरी पत्नी भावनी के धँधेरे शुभकरण की पुत्री नरेन्द्रकुंवर थीं, जिनके पुत्र बिशुनसिंह थे। अपने चारों पुत्रों को बँटवारा करते समय दुर्जनसिंह ने बड़े पुत्र मानसिंह, जिन्होंने महरौनी का किला बनवाया जो अधूरा रह गया था, को चन्देरी की गद्दी तथा जोरावरसिंह को पाली, बिशुनसिंह को गूड़र बामौर तथा धीरजसिंह को बानपुर की जागीर देकर उन्हें रहने हेतु यहां गढ़ी का निर्माण कराया। वंशानुक्रम से मानसिंह के बाद अनिरुद्धसिंह - रामचन्द्र, पश्चात मोदप्रहलाद चन्देरी के राजा बने। विलासिता में डूबे रहने, पारिवारिक कलह एवं कुशल प्रशासन के अभाव में राज्य में शत्रुओं की निगाहें लग गईं। अराजकता बढ़ने लगी। उस समय चन्देरी राज्य पर सागर के मराठों का प्रभाव बढ़ता देख ग्वालियर के सिंधिया चिंतित हो उठे अतः उन्होंने अपने फ्रेंच सेनापति जॉन वेप्टिस को सन् 1810 ई0 में ससैन्य चन्देरी पर आक्रमण हेतु भेजा। उसने चन्देरी राज्य के ज्योरा, बांसी, कोटरा, ननौरा, जवारा, जाखलौन तथा महरौनी के इलाकों को जीत लिया। तत्कालीन राजा मोद प्रहलाद दुश्मन का सामना न कर सके। उनके वंशज भाई बखत सिंह तथा उमराव सिंह ने गुरिल्ला पद्धति से तीन माह तक जॉन वेप्टिस का सामना किया, किन्तु वे जॉन वेप्टिस की मजबूत सेना के आगे ठहर न सके। सिंधिया से जरया की जागीर प्राप्त कर जॉन वेप्टिस जरया में निवास करने लगा। इस बीच उसने सिंदवाहा तथा बैरवारा ग्रामों के बीच बारादरी बैठक तथा बावरी का निर्माण कराया। सन् 1813 में जॉन वेप्टिस को सिंधिया ने ग्वालियर बुला लिया। इधर मोद प्रहलाद तालबेहट और चन्देरी के किले सिंधिया के अधिकार में चले जाने से झांसी में श्यामजी के चोपरा की हवेली में रहने लगे। जॉन वेप्टिस के वापस ग्वालियर चले जाने पर मोद प्रहलाद झांसी से लौटकर बार, बानपुर, कैलगवां आदि मात्र 30 गांवों की जागीरदारी में कैलगवां को राजधानी बनाकर रहने लगे इन्होंने अपना आवास रामनगर (कैलगवां के पास) रखा, इसे मोदप्रहलाद के पिताजी रामचन्द्र ने अपने नाम से बसाया था और यहां गढ़ी और एक हनुमान मंदिर का निर्माण कराया था। बाद में कैलगवां में मोदप्रहलाद ने किले का निर्माण कराया। उन्होंने इसी समय उदयपुरा में तालाब एवं एक गढ़ी का निर्माण अपनी बेटी सरोजकुंवर के लिये करा दिया। सरोजकुंवर मोद प्रहलाद की आठवीं विवाहिता पत्नी - गुरयाने के पंवार खेतसिंह की पुत्री - सामंत सिंह की नातिनी - राजकुंवर के गर्भ से उत्पन्न मर्दनसिंह की विमातृ बहन थीं। उस समय बानपुर में धीरजसिंह के वंशज भाई खेतसिंह रहा करते थे। तत्कालीन परिस्थितियों से जूझते हुए महाराज मोदप्रहलाद ने समझौते के आधार पर जागीर सहित गदयाने की स्वनिर्मित कराई गढ़ी उन्हें देकर बानपुर बदले में ले लिया। बाद में मर्दनसिंह द्वारा यहां की गढ़ी को किले का रूप दे दिया गया।

बुन्देलखण्ड को उसकी भौगोलिक स्थिति के भारत का हृदय और प्राकृतिक सुरम्यता के कारण भारत का स्विटजरलैण्ड माना जाता है। समूचे बुंदेलखण्ड में 20 महल 36 किले 21 गढ़ तथा 210 गढ़ियां दिखाई देती हैं। जो आज अधिकांशतः भग्नावशेषित हैं। डॉ रामसेवक रिछारिया ने बुन्देलखण्ड की गढ़ियों की कुल संख्या 338 मानी हैं इस आधार पर बुन्देलखण्ड को फोर्टलैण्ड - किलों की भूमि माना जाता है। आकृति भेद से किले वर्तुल, अण्ड, वर्ग एवं आयताकार रूप में कीलित तथा सुरक्षित स्थानों में बनाए जाते रहे हैं। स्थान भेद से किलों के विभिन्न प्रकार शास्त्रों में अभिवर्णित हैं। मानसार नामक ग्रंथ में गिरिदुर्ग, वनदुर्ग, सलिलदुर्ग, पंकदुर्ग, रथदुर्ग, देवदुर्ग तथा मिश्रदुर्ग यह सात भेद माने हैं। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में औदकदुर्ग (नदी, झील, तालाब आदि से घिरे हुए), पार्वतदुर्ग (ऊँचे शिखरों, उपत्यिकाओं पर, पहाड़ों से घिरे हुए), धान्वन दुर्ग (ऊबड़-खाबड़ मरु भूमि पर निर्मित) तथा वनदुर्ग (चारों ओर कांटेदार झाड़ियों से घिरे हुए) यह चार प्रकार बताए हैं। शुक्रनीतिसार में ऐरिण दुर्ग, पारिख दुर्ग, वन दुर्ग, गिरि दुर्ग तथा सैन्य दुर्ग यह पांच प्रभेद बताए हैं। हिन्दू राज-शास्त्र में धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, गिरि दुर्ग, मनुष्य दुर्ग, मृदु दुर्ग एवं वन दुर्ग यह छः भेद माने हैं। नीतिसिंधुकार चरखारी नरेश गंगासिंह ने इन्हीं छः भेदों की पुष्टि की हैं।

---

[7] नया बाजार, महरौनी ललितपुर

[8] अध्यक्ष, देवगढ़ समिति, ललितपुर

महीदुर्ग नरदुर्ग पुनि चाप दुर्ग तरु दुर्ग।
सलिल दुर्ग गिरि दुर्ग षट् दुर्ग कहत सुबुजुर्ग।। नीतिसिंधु 86।।

इस आधार पर ऊबड़-खाबड़ भूमि पर सामरिक सुरक्षा की दृष्टि से अपनी और प्रजा की भलाई हेतु राजा मर्दनसिंह द्वारा परिवर्धित बानपुर नगर के मध्य भाग में गढ़ी के ईशान कोण में सात खण्डों का मोती महल बनवाया गया । धान्वन दुर्ग (चाप दुर्ग) के आकार में निर्मित किले के भीतर तीन कूप, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, सभा स्थल, स्नानागार, रानी महल, रानी विहार, मारक छिद्रों से युक्त सुरक्षा भित्ति, चारों ओर गुर्जे, परिखा, सैनिकों, घोड़ों, हाथी, ऊँटों, तोपों और शस्त्रों के भण्डारण हेतु पृथक-पृथक कक्षों का निर्माण कराया। मजबूत लोहे की कीलों से युक्त पूर्वाभिमुख हाथी दरवाजा तथा वंश परंपरानुसार किले के अंदर ही मुरली मनोहर राधा कृष्ण एवं श्री राम दरबार के मंदिर स्थापित कराए गए। किले के पूर्व भाग में निर्मित मोती सागर कूप का जल संपूर्ण बानपुर नगर में सर्वाधिक स्वादिष्ट है। ऐसी भी अनुश्रुति है कि इस कुंएं के चारों पाटों का जल अलग-अलग स्वाद का है। इसी मोती सागर कूप के बगल में हनुमान जी का मंदिर स्थित है। किले का मैदान, जहां आज प्रतिवर्ष रामलीला का मंचन तथा अन्य सांस्कृतिक-राजनैतिक कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं।

सन्दर्भ-स्रोत

1. बुन्देलखण्ड का वृहद् इतिहास, डॉ काशीप्रसाद त्रिपाठी
2. नीति सिंधु, गंगासिंह
3. शुक्रनीतिसार
4. हिन्दू राज-शास्त्र, अंबिका प्रसाद बाजपेयी
5. बुन्देलखण्ड के किले, डॉ काशीप्रसाद त्रिपाठी
6. बुन्देलखण्ड के किले और गढ़ियां, डॉ रामसेवक रिछारिया
7. बुन्देली बसंत, वार्षिक संपादक डॉ बहादुर सिंह परमार सन् 2004
8. बुन्देलखण्ड : प्रकृति और पुरुष, सं0 डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी, अवस्थी जी एवं सत्यार्थी जी

बानपुर की शानः देशी पान

- डॉ ओमप्रकाश शास्त्री

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पान की खेती के लिए महोबा, महाराजपुर, कुसमा महाराजपुर, मलहरा, पनागर, पाली, जतारा, टेहरका, चंदेरा, बल्देवगढ़, पन्ना, छतरपुर, सागर, धामना, बरई, भानपुर आदि की भांति बानपुर अत्यंत प्रसिद्ध है। पान को तांबूल तथा इसका खेतों को बरेजे कहते हैं। पान के व्यवसायी तांबूलक (तमोली) तथा बरेजे धारकों को बरई कहते हैं। पान को संस्कृत में नागवल्ली दल, मराठी में नागरवल्ली, तेलगु में तमलकाकु, तमिल में बेट्टिटली, अरबी में कान, अंग्रेजी में बेटल तथा हिन्दी और बंगला भाषा में पान नाम से ही संबोधित करते हैं। पान का पत्ता नागवल्ली दल श्रेष्ठ माना जाता है। जैसे तुलसी के पत्ता को दल कहा जाता है। बिना तुलसी तथा पान के कोई भी देवपूजन नहीं होता। प्राचीन काल से ही मानव पान खाने का शौकीन रहा है। अतएव इसे भारत ही नहीं अपितु अखिल विश्व में पायी जाने वाली प्रमुख चर्व्य वनस्पति माना जाता है। आयुर्वेद में पान रुचिकारी, तीक्ष्ण, दस्तावर, वश्यकारक, चरपरा, हल्का बलदायक, श्रमहारी तथा मुख दुर्गंध नाशक बताते हुए स्त्री प्रसंग के समय, सोकर उठने पर, स्नान करके, भोजनोपरांत, वमन पश्चात् तथा युद्ध में पान चबाने का निर्देश किया गया है। धार्मिक अनुष्ठानों।पूजनादि में तो पान परमावश्यक है। बारात में सजन भेंट समय समधी-समधी मिलन में वक्ष के मध्य पान रखकर एक-दूसरे को खिलाकर मिलन की रीति-निर्वाह पूरा होता है, क्योंकि पान हृदय के आकार का होने से परस्पर दो हृदयों को एक करने में सहायक माना जाता है। धन्वंतरि निघंटु में पान के दो भेद माने गए हैं - श्वेत और श्यामल। किन्तु नरहरि निघण्टुकार ने एक श्रीवाटी, दो अम्लवाटी, तीन सतसा, चार गुहागिरि, पांच अम्लरस, छठा पटुलिका तथा सात बेसहनीया यह भेद माने हैं। देशकाल और जलवायु के आधार पर पान के कुल निम्नलिखित छः प्रकार माने जाते हैं -

1. बिलौवा या बिलहरी - श्वेत और चमक से भरपूर पक जाने पर तीन सप्ताह तथा टूट जाने पर एक माह तक खराब न होने वाला यह पान सभी प्रजातियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। बानपुर में यही पान उगाया जाता है। बंगला भाषा में कहावत है 'चान करे जेबानारी मुंह दे पान लक्ष्मी बोली सेउ नारी आमारि समान।'

2. कांकेर या कुलबा - यह रंग में सफेद तथा खाने में कड़ा होता है। इसके अधिक खाने से जिह्वा में कठोरता आती है।

3. बंगला या बंगली - यह चौड़ा, मीठा, कड़ा तथा गर्म प्रकृति का होता है।

4. कपूरी - यह पीताभ शिराओं से युक्त सुगंधित सुस्वादु होता है।

5. जैसबाग - स्वादहीन किन्तु उपज में अधिक होता है।

6. मीठी पत्ती - मद्रासी, महुबिया, लंकायी, मगही, बनारसी, महाराजपुरी आदि इसकी कई उपजातियां हैं। यह खाने में मीठे होता है।

पान की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न किंवदन्तियां प्रचलित हैं। भगवान शंकर के क्रीड़ा स्थल अंबिका वन के निकट नागर की पत्नी मंगली के क्रमशः पूगी, खदिरम्, चूर्णम तीन पुत्र तथा ऐला, लवंग यह दो पुत्रियां थीं। परस्पर प्रेम पूरित यह एक आदर्श परिवार था। अंबिका वन में बिना पार्वती की इच्छा के कोई भी जीवधारी अपने शरीर में नहीं रह सकता था। जो भी वहां भूलवश पहुंचता वह वृक्ष बन जाता। एक दिन खेलते-खेलते ऐला और लवंग उसी वन की सीमा में पहुंच वनस्पति बन गईं। उन्हें खोजते-खोजते पूगी, खदिरम, मंगली और नागर भी उसी स्थिति में पहुंच गए। छोटा पुत्र चूर्णम् भी पदचिन्हों के सहारे इधर-उधर देखता हुआ वन के पास की सीमा पर उपटा लगने से गिरकर रोते-रोते पत्थर बन गया। एक बार शिव पार्वती ने उस स्थान पर घूमते हुए देखा कि ये वनस्पतियां तो थी नहीं, यहां कहां से आ गईं। तभी वहां शिवाज्ञा से आए हुए नागराज इन वनस्पतियों के वार्तालाप को सुनने लगे। बेल में पत्र रूप के हृदयाकार नागर को देख नागराज शेष उस बेल को पाताल ले गए। शेष वनस्पतियां भगवान शिव की आज्ञा से पृथ्वी पर उत्पन्न हुईं। परस्पर पारिवारिक प्रेम के कारण उन्हें वरदान दिया कि तुम्हारे बिना कोई भी देवपूजन या मांगलिक कार्य संपन्न नहीं होंगे। पारिवारिक प्रेम की आवश्यकता को बल देते हुए नागर पान के रूप में पाताल लोक तथा मंगली (हल्दी), पूगी (सुपारी), खदिरम् (खैर), चूर्णम् (चूना), ऐला (इलायची) तथा लवंग के रूप में पृथ्वी पर जनकल्याण करने लगे। पूगी को सुपारी कहे जाने का कारण - पूगी चीन में कोरिया से शूर्पारक (सोपारा) बन्दरगाह से आती थी। इसलिए पूगी को सुपारी कहा जाने लगा। 18वीं शताब्दी में मानिक चंद्र नामक व्यापारी द्वारा लाए जाने के कारण पूगी के बड़े फलों को मानक चंदी तथा छोटे फलों को जहाजी कहा जाने लगा। पूगीफल सोपारा, सोपारी और अब सुपाड़ी हो गयी। बिना सुपाड़ी के पान अच्छा नहीं लगता।

बिना कंत की कामनी बिना मूंछ को ज्वान।
ये तीनों फीके लगें बिना सुपारी पान।।

पूगी के मन में ठसक, खेर में ऐंठ, चूना में जलन तथा लोंग में तिक्तता इन चारों के मिलने पर और/या इन चारों का एक रस बनाने पर चौरसिया शब्द निष्पन्न हुआ।

एक बार शुक्राचार्य के कनिष्ठ पुत्र संड ने पिता की आज्ञा से शेष को तपस्या से प्रसन्न कर लिया। संड को नागराज ने नागबेलि की एक ग्रंथि प्रदान की। संड ऋषि ने वैशाख शुक्ल पूर्णिमा से तपस्या प्रारंभ की थी। इन्हें 75 दिन की कठोर तपस्या के बाद श्रावण शुक्ल नागपंचमी के दिन नागराज द्वारा नागरबेलि प्राप्त हुई थी। जिससे आज भी पान बोने का समय वैशाख शुक्ल पूर्णिमा तक प्रशस्त

माना जाता है। पान के प्राकट्य दिवस नागपंचमी को इसका पत्ता तोड़े नहीं जाने की परंपरा है। शुक्राचार्य, संड, भारद्वाज और पंचमेह इन चार ऋषियों ने नागपंचमी को एक महोत्सव मनाया। पान की पहली पीक विष के तुल्य, दूसरी दस्तावर तथा तीसरी अमृत तुल्य मानी जाती है। कहते हैं पाण्डवों के यज्ञ में पान लाने हेतु युधिष्ठिर के दूत को वासुकि ने अपनी करांगुलि काटकर दी। उससे पान उत्पन्न हुआ। युधिष्ठिर ने पान से पूर्णाहुति दी। नाग से स्पर्शित करांगुलि रक्तज ग्रंथि नानादेई (नागवंशियों की कुलदेवी) हुई। आज भी पान के प्रयोग हेतु इसलिए पान का अग्रभाग तथा डण्ठल काटकर फेंकने का रिवाज है।

पान की खेती – पान को पाटियों में लगाया जाता है। एक-एक पाटी की क्यारी की चौड़ाई एक-डेढ़ हाथ (लगभग दो फुट) तथा लंबाई सुविधानुसार होती है। पाटियों में लगभग 50 से लेकर शताधिक कुरवा (7-7 फुट की बल्लियां), इनके ऊपर कमठी (बांस की पतली खपच्चियां), बकोंड़ों से बांधकर, गुनर से ढंक देते हैं। पाटियों के अगल-बगल में टटियां बांध देते हैं। ये बांस की कमठी, गन्ना की पत्तियां तथा सन के सनौरों से बनती हैं। बरेजों के मण्डप देखने में बड़े सुहाने
लगते हैं। पाटियों में पान की बौनी पर डला (लंबी टोकरियां) से मिट्टी डाल तिली की खली की खाद, उर्द की दाल, मीठा तेल, जौ का आटा, मट्ठा आदि उर्वरक के रूप में डालते हैं। बेलों के बड़े होने पर उन्हें नागरमोथा से कुरवा कमठियों से बांध देते हैं। लुटिया (एक विशेष प्रकार की गागर, जिसका पेट चौड़ा तथा मुंह संकरा होता है) से खपरिया के सहारे फुहारे की तरह गर्मियों में दिन में तीन बार तथा शरद ऋतु में 8-10 दिन में पानी देते हैं।

पान की खेती बहुत सुरक्षा तथा संभाल चाहती है। भौतिक सुरक्षा के अतिरिक्त आस्था स्वरूप प्रत्येक बरेजे के पास नानादेइ कुलदेवी का मंदिर तथा नाग का चीरा अथवा अन्य कोई प्रतीक होता है। बरेजों के पास मानक टीला नामक टीले पर स्थित स्थानिक नृत्यति रूप में खड़ी नानादेई (मैलावर माता) नागवंश के प्रभुत्व को स्मृति रूप में संजोए हुए हैं। नागौरी बरिया, नागसदम (नाग अंकित चीरा) आज भग्नावशेषित है। कहते हैं इस टीले के नीचे अन्य देवी देवताओं की प्रतिमा दबी पड़ी हैं। वासुकि नाग जैसी कुछ प्रतिमाएं झांसी के राजकीय संग्रहालय में अपनी शोभा को समेटे हुए हैं। "Maniktilla isA large mound, where isA collection of interesting sculptures of VasukiAnd other gods;A beautiful Narayana is half buried in the soil which is worth taking out and caring for."

संदर्भ ग्रंथ

1. धन्वंतरि अगस्त 1968 आलेख 'पान और रति कला'- लेखक पं0 बाबूलाल द्विवेदी
2. भावप्रकाश
3. धन्वंतरि निघण्टु
4. बुन्देलखण्ड : प्रकृति और पुरुष, सं0 डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी एवं अन्य
5. राजस्थानी जातियों की खोज, रमेश चन्द्र गुणार्थी
6. एंटिक्विटीज इन द डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर, डॉ पूर्णचन्द्र मुखर्जी।

-रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ललितपुर

बन्न-बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं

नारी की शोभा तथा पुरुषों के गाढ़े दिनों के साथी, जिन्हें श्रीमती ऐनीबेसेण्ट ने किसानों का परंपरागत 'सेविंग बैंक' माना है, उन बुन्देली आभूषणों की एक झलक जो अब लुप्तप्राय है -

हातन मांदी गुदना चुरियां दएं आंखन में काजर ।
मांगन बूंदा सेंदुर सोहत पांवन लगे महावर ।।
बेंदी, बीज, दावनी, टिकली, झूमर, केकर, पान,
सीसफूल, सिरबेज, रेखड़ी, सिर सुहाग पहचान ।
सिर की सोभा राखत, ढांकत रहत पिया खों पियारी ।
बन्न -बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं ।।

नाक में पैरें एगर्रा, नथ, डेमनकाठ, दुलरिया ।
दुर, कांटौ, बेसर, कसयाऊ, कोउ जड़ाऊ पुंगरिया ।।
कानन कन्नफुल उर झुमकी, कोउ कनौटी, ढारें ।
लोंग, तरकिया, मुरकी, बिजरी, ऐरन लाला धारें ।।
नाकन चना चबा लए दुसमन सुन इनकी ललकारें ।
बन्न-बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं ।।

चन्द्रहार, नौलखा, खंगौरिया, कोउ टकयावर संवारत ।
छुटिया, कठला, टुंसी, तबिजियां कितउं हमेल सुधारत ।।
गुलूबंद, दुलरी, तिलरी, पंचलरी, सतलरी धारत ।
सर, लल्लरी, तिधानौ, हंसली, बीजासेन विराजत ।।
सीतारामी, मोहनमाला, मटरी माल लखावत ।
हा, कंठी कोउ सांकर पैरें नंगो गरौ न राखत ।।
बनी गरी की हार पिया की घर की पत रखवारी ।
बन्न-बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं ।।

हांतन अमरस और सुरक्का पहर सुहागिन चुरियां ।
ककना, बघवां, बरा, बजुल्ला, बाजूबंद, बखुरियां ।।
गजरा, नुगरई, दौरी, डारैं, ऐंठीं, गुंजें गुजरिया ।
छन्नी, दस्तबंद, गुस्तानें, चूरा, चरीं, बगलियां ।।
कोउ पोंचियां, हांतपोस, कोउ छला, पटेला, छपिया ।
मुदरी, पेंती, कोउ अनंती, संतानसाती चुरियां ।।
हांतन-हांतन धरी रहत तीं दोउ कुल उजियारी ।
बन्न-बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं ।।

पायजेब, पैजना, टुड़रियां, गुलसन-पट्टे, छागल ।
घुंसी, चूरापंखी, बांकें, गच्छा, लच्छा, पायल ।।
जेरैं, तोड़ा, कोउ माड़र, झांझें, कड़ा, छिंगनियां ।
छैल-चूड़ियां, चौंरीं पट्टी, ऊपर पहर अनुखियां ।।
पांवपोस, बिरमदी, कटीला, कोऊ टालें, बिछिया ।
बोरनदार कितउं बिन बोरा चलतन बजत घुंघुरियां ।।
फूंक-फूंक कें पांव धरत जे निग रईं गैलें झारीं ।
बन्न-बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं ।।

कम्मर पेटी उर करधोना, पेटी, चलि, कड्डोरा ।
गुच्छा, डोरा, बिछुवा, बजरा, झालरदार, कदोरा ।।
नारी की सोभा पुरुसन की गाढ़े दिन की साथी ।
सेविंग बैंक किसानन की अब चीजें कितें दिखातीं ।।
सोनों, चांदी, तांबो, पीतर 'मधुप' गिलट कर डारी ।
बन्न-बन्न के गाने पैरत इतै सुहागिन नारीं ।।

- पं0 बाबूलाल द्विवेदी

श्री दिगंबर जैन अतिशय क्षेत्र बानपुर

- चौधरी विकास जैन 'शास्त्री'

बानपुर की शौर्यमयी माटी में संस्कृति, प्रकृति और आध्यात्म का शाश्वत सौन्दर्य अद्भुद रूप से समाहित है। पुरातत्व, ऐतिहासिकता और कला के सौरभ से सुवासित यह भूमि वंदनीया है। इस नगर के दक्षिणी भाग में श्री दिगंबर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर (क्षेत्रपाल जी) अवस्थित है। लगभग 300 ग 200 फीट के क्षेत्रीय प्रांगण में 10वीं शताब्दी के पूर्व तक की मूर्तियां विद्यमान हैं। श्री पाणाशाह द्वारा निर्मित प्राकृतिक छटा से परिपूर्ण पांच विशाल मंदिरों वाला यह क्षेत्र मुनि 108 श्री श्रुतसागर जी महाराज का साधना स्थल रहा है। यहां कई स्थानों पर जैन मूर्तियां आज भी खुदाई में निकलने की संभावना है। कला के कलंकी विधर्मी मूर्ति भंजकों की कुदृष्टि का यह क्षेत्र शिकार रहा है। मूर्तियों के संग्रहण हेतु एक विशाल संग्रहालय है, जिसमें भगवान महावीर के बाल्यकाल की मूर्ति गेंद लिए हुए स्थापित है।

प्रथम जिनालय - नागर शैली के शिखर वाले दूधियां संगमरमर से बनी श्री महावीर स्वामी की पद्मासन प्रतिमा तथा आदिनाथ की प्रतिमा एवं दूसरी ओर काले संगमरमर से बनी पार्श्वनाथ की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

द्वितीय जिनालय - इस मंदिर में देशी पाषाण से बनी आठ फीट ऊंची श्री शान्तिनाथ की प्रतिमा है एवं अंदर सस्मित मुद्रा में एक आठ फीट की पाषाण निर्मित शोभनीय प्रतिमा है। इस मूर्ति के चरण पाद के दोनों ओर छोटी-छोटी मूर्तियां तीर्थंकर एवं शासन देवियों की हैं, जिन पर कोई चिन्ह अंकित नहीं है।

तृतीय श्री चंदा प्रभु जिनालय - सफेद संगमरमर से बनी लगभग 2 फीट 6 इंच पद्मासन प्रतिमा श्री चंद्रप्रभु की है। यहीं श्री आदिनाथ भगवान की एक फुट छः इंच ऊंची संवत् 1142 में निर्मित प्रतिमा विराजमान है एवं आदिनाथ भगवान की एक अन्य प्रतिमा संवत् 1541 में निर्मित विराजमान है। मंदिर की बाह्य भित्तियों पर तीन ओर 19 स्थानों पर आलों के आकार में विभिन्न प्रकार की मूर्तियां जड़ित हैं। पौराणिक गाथाओं पर आधारित इन मूर्तियों में देवी-देवताओं के युगल, शासन देवियां आदि कला कृतियां खजुराहो शिल्प की तरह भव्य और लुहावनी लगती हैं।

चतुर्थ श्री शान्तिनाथ मंदिर - इस मनोज्ञ प्राचीन जिनालय को बड़े बाबा का मंदिर भी कहते हैं। नवनिर्मित इस प्राचीन मंदिर में देशी पत्थर से निर्मित 18 फीट ऊंची शान्तिनाथ की प्रतिमा जिस पर निर्माण काल संवत् 1001 लिखा है। आजानबाहु, नासिका पर रखे हुए गंभीर दृष्टि शांत मुद्रा में रचित यह मूर्ति यथार्थ में शान्तिदायक है। चरणपाद में दाएं-बाएं शिलालेख अंकित हैं। जहां कई छोटी-छोटी मूर्तियां उत्कीर्णित हैं। इस त्रिमूर्ति में बायीं ओर की मूर्ति आठ फीट ऊंची है, जिसके केश छाती, बाहु और घुटनों के नीचे तक बिखरे हुए हैं। यह प्रतिमा भगवान कुंथुनाथ की है। दायीं ओर आठ फीट ऊंची अरहनाथ भगवान की सुन्दर मूर्ति स्थापित है।

क्षेत्र की अतिशयता - भगवान श्री शान्तिनाथ की प्रतिमा इस दशक के पूर्व तक उत्तरोत्तर वृद्धि करती रही है। कई बार मड़िया के टूटने पर इसे बनवाया जाता रहा है। इसके संबंध में यह

घटना प्रसिद्ध है। एक बंजारा अपने बैलों (खांडू) पर चांदी लादकर क्षेत्र से गुजर रहा था कि अचानक उनका बैल क्षेत्र के पास बावड़ी में गिर गया। तब बंजारे ने कहा कि यदि हमारा बैल कुएं से सुरक्षित निकल आया तो मैं वहां पर एक सहस्रकूट चैन्यालय का निर्माण कराउंगा और ऐसा ही हुआ। उसकी हानि लाभ में बदल गई और उसने सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण कराया।

सहस्रकूट चैत्यालय - क्षेत्र के पूर्वी भाग में मध्ययुगीन भारतीय स्थापत्य कला का प्रतीक अद्भुद रमणीक लगभग 50 फीट चौड़े चहुंदिशि प्रवेश द्वार और विशिष्ट मूर्ति गढ़ने के कारण यह चैत्यालय अद्वितीय है। 10वीं शताब्दी में देवपाल द्वारा इसका निर्माण कराया गया था। यह रचना वास्तुकला विशेषज्ञ श्री पापट द्वारा निर्मित है। चैत्यालय में नीचे से ऊपर शिखर तक आकर्षक मूर्तियां चारों तरफ उत्कीर्ण हैं। सहस्रकूट वेदिका के मध्य में तीर्थंकर आदिनाथ का भव्य व्यक्तित्व मनोहारी है। पौराणिक गाथा पर आधारित इन मूर्तियों में आदिनाथ के अतिरिक्त द्वारपाल, दिक्पाल (दराजोपर) यक्ष-यक्षिणियों देवी-देवताओं के युगल नृत्यरत, हिंसक आयुध और अहिंसक भाव-मुद्रा का यह समन्वय दर्शनीय है। अन्तः भाग में आठ फीट गुणित चार फीट के शिलाखण्ड पर एक सहस्र आठ मूर्तियां नगीने की तरह जड़ी हुई हैं। जिनालय के मध्य गर्भगृह है, जिसमें चहुंदिशि द्वार हैं। बाहर की ओर चारों तरफ मण्डप हैं। शिखर पर मध्य से उत्तर की ओर एक चौबीसी का भी अंकन हैं। इसी समूह में सरस्वती, आम्र वृक्षाश्रिता देवी अंबिका जिसकी गोद में शिशु प्रियंकर और नीचे खिलौना लिए बालक शुभंकर का अंकन चक्रेश्वरी अप्सरा दर्पण देखती सुरसुन्दरी और नृत्यरत किन्नरिया शोभायमान है। यह चैत्यालय रेतीले पत्थरों द्वारा निर्मित खजुराहो शैली पर हैं।

इस क्षेत्र पर इन पंक्तियों के लेखक के पूज्य दादा स्व0 चौधरी श्री बाबूलाल जी जैन तथा जैन समाज के अन्य गणमान्य व्यक्तियों के सत्प्रयासों से एक वार्षिक मेला विगत 25 वर्षों से अद्यावधि पर्यन्त लग रहा है। जिसमें नेत्र तथा सामान्य रोग चिकित्सा शिविर आयोजित होता है । इसमें क्षेत्र के दूरदराज गांवों के सुविधाविहीन लोग अपनी चिकित्सा करा लाभान्वित होते हैं । सकल दिगंबर जैन समाज एवं प्रबंधकारिणी समिति के प्रबंध-कौशल से यह क्षेत्र उत्तरोत्तर प्रगति पर है।

-बानपुर, ललितपुर

लोक आस्था के प्रतीक - बानपुर के आराधनालय

पं0 बाबूलाल द्विवेदी
कु0रामकिशोरी गुप्ता [9]

दसवीं शताब्दी तक बानपुर मन्दिरों और आराधनालयों का गढ़ माना जाता रहा। यहां अनेक स्थलों पर शिव पंचायतन, विष्णु मंदिर, गणेश मंदिर, वाराह मंदिर, दुर्गा मंदिर, हनुमान मंदिर, जैन मंदिर, बौद्ध मठ, मस्जिद बनते-मिटते और बिगड़ते रहे। विनायक सिद्ध पीठ प्रसिद्ध गणपति पीठों में से एक था किन्तु कला के कलंकियों ने उसे पूर्णतः ध्वस्त कर दिया था। सन् 1687 में दुर्गसिंह की मृत्यु के बाद चन्देरी के राजा दुर्जनसिंह हुए, जिन्होंने अपने चारों बेटों में जागीरों का वितरण कर दिया सभी जगह किले तथा किलों में रामलला तथा मुरलीमनोहर के मंदिर और उनके पास हनुमान मंदिरों का निर्माण बुन्देली परंपरा के अनुसार कराया गया। दुर्जनसिंह ने यहां सर्वप्रथम एक गढ़ी का निर्माण कराया तथा गढ़ी में राम मंदिर और बाहर महिषासुरमर्दिनी दुर्गा मंदिर स्थापित कराए। कालांतर में मर्दनसिंह ने गढ़ी को किले का रूप दे बानपुर में सात मंजिला मोतीमहल, मोती सागर कूप तथा किले में मुरलीमनोहर का मंदिर रामलला मंदिर के बगल में बनवाया। बुन्देलखण्ड पर अकेले औरंगज़ेब ने 25 बार आक्रमण किए थे तथा मंदिर और मूर्तियां ध्वस्त कर दिए थे। बानपुर का प्रसिद्ध बराह मंदिर, जो किले के बगल में ही स्थित था, पूर्णतः ध्वस्त हो गया। वहां मात्र दो बराह मूर्तियां अवशिष्ट हैं। हमारी आस्था के प्रतीक आज भी कुछ मंदिर प्राचीन - अर्वाचीन रूप में दर्शकों की मनोभिलाषाओं की पूर्ति करते चले आ रहे हैं, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं -

1. बजरंगगढ़ मंदिर - मुखसुख के कारण इसे बजरंगढ़ के नाम से जाना जाता है। यह मंदिर अनुमानतः यहां के सभी मंदिरों में प्राचीन है। पुरातत्वविद इस मंदिर में स्थापित मूर्ति को संभवतः ईसा पूर्व का मानते हैं। दक्षिणाभिमुखी द्रोणाचल पर्वत हाथ पर रखे हुए यह मनोहारी मूर्ति संपूर्ण बानपुर क्षेत्र का आकर्षण एवं श्रद्धा का केन्द्रबिन्दु है। वैष्णव, वैरागी, संत-महात्माओं के ठहरने का यह एकमात्र आश्रय है। रामानंदी वैष्णवों की स्थापित परंपरा यहां मर्दनसिंह के शासनकाल से प्रारंभ होती है इससे पूर्व यह स्थान क्षत-विक्षत रूप में रहा। बाद में विद्याकुण्ड अयोध्या के श्री रघुवीरदासजी महाराज बानपुर में जामनी सरिता के किनारे मढ़ियाघाट पर रहने लगे थे। गांव की जनता और राजा की इच्छानुसार इनको बजरंगगढ़ मंदिर का महंत नियुक्त कर दिया गया। यहां की जनता सेवा-सहयोग करने लगी। बानपुर नरेश मर्दनसिंह ने चकोरा के जमींदारों को राज्य की ओर से बजरंगगढ़ मंदिर को पूजा व्यय देने हेतु एक लिखित आदेश पत्र दिया कि वे पांच रुपए मासिक महाराजजी को देते जाएं और इसे अपने लगान में मुजरा करें। चूंकि उस समय महाराज मर्दनसिंह अंग्रेजों से गुरिल्ला पद्धति से जूझ रहे थे। चन्देरी और ललितपुर मर्दनसिंह से छीन लेने का अंग्रेजों ने आदेश दे रखा था। अस्तु, मंदिर के निर्माण को चाहते हुए भी मर्दनसिंह न करा सके। किसी तरह पूजा की व्यवस्था बजरंगगढ़ की चलती रही। 10 मार्च 1858 को बानपुर किले को ध्वस्त कर ह्यूरोज ने अधिकार कर लिया, किले की रामलला की मूर्ति को बजरंगगढ़ मंदिर में सकुशल पहुंचा दिया गया। मुरलीमनोहर की मूर्ति दूसरे मंदिर में विराजमान करायी गई।

रघुवीरदासजी के बाद उनके शिष्य गनेशजू परमार मंदिर की सेवा संभाल करते रहे। कहीं से रमते-रमाते रणछोरदास जी बानपुर आए। गनेशजू परमार ने इन्हें पूजा सौंप दी। रणछोरदासजी भी रघुवीरदासजी के शिष्य थे। सवा लाख गौवों को प्रति गाय सवा सेर पूड़ी खिलाने का इनका व्रत था इन्होंने अपना गोयज्ञ पूरा करने के बाद अपने परम शिष्य रामायणी फलाहारी श्री हरिनामदासजी तपस्वी को पूजन कार्य सौंपा। अतिथि और संत सेवा चलती रही। हरिनामदासजी महाराज ने दिनांक 26 जुलाई 1895 को मझली बहू पत्नी खेतसिंह ठाकुर चकोरा से साढ़े सात आना में जमींदारी तथा कुछ और जमीन बानपुर में खरीदी। फिर इन्होंने अपने शिष्य मणिरामदासजी को महंत तथा रामशरणदासजी को अधिकारी तथा पुजारी कौशल्यादासजी को पूजा व्यवस्था सौंप ओरछा में बेतवा नदी में जलसमाधि ले ली। 24 दिसंबर 1935 को मणिरामदासीजी के साकेतवासी हो जाने पर अयोध्या के संत मण्डल के सभी महात्माओं ने मिलकर जमुनादासजी को महंत तथा गंगादासजी को अधिकारी बनाया।

महंत जमुनादासजी ने मंदिर का जीर्णोद्धार कराया तथा जानकीजी की मूर्ति मंगाकर सन् 1988 में प्रतिष्ठा कराई। जीर्णोद्धार में भग्नावशेषित बराह मंदिर के खंभा, श्री कैलाशनारायण श्रीवास्तव के खरउवा नामक खेत से उनकी उदार स्वीकृति से, लगाए गए हैं। वैरागिनी श्रीमती मुन्नीबाई कोठारीजी के समय से वैष्णव वैरागियों की संत सेवा होती चली आ रही है। वर्तमान में बजरंगगढ़ मंदिर समिति के तत्वावधान में मंदिर की व्यवस्था चल रही है। दर्शनीय मूर्ति के दर्शन से मनोभिलाषाएं पूर्ण होती हैं, ऐसी लोकमान्यता के कारण दक्षिणाभिमुखी हनुमान मूर्ति अथवा मंदिर का छायाचित्र प्राप्त नहीं हो सका है।

2. खेड़ापति मंदिर - अतिप्राचीन दक्षिणाभिमुखी हनुमानजी तथा शंकरजी का यह मंदिर ग्राम के पूर्व भाग में स्थित अगयाना मुहल्ला में है। मनः कामप्रद हनुमानजी के दर्शन के साथ यहां रह रहे परमहंस परिव्राजकाचार्य अवधूत नागाजी 'बुन्देलखण्ड का माहात्म्य' पुस्तक

[9] पुराने पोस्ट आफिस के पास, हवेली रोड, टीकमगढ़

के लेखक श्री रामकृष्णजी महाराज के दर्शन सत्संग का लाभ यहां सुलभ है। इसी मंदिर में बैठकर स्वराज्य आन्दोलन की गतिविधियों की योजनाओं का संचालन करने हेतु मंत्रणाएं हुआ करती थीं। जीर्णोद्धार की बाट जोहता यह मंदिर क्षेत्र के लोगों की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है।

3. कुटी के हनुमानजी – जामनी नदी के तट पर बाणाघाट के पास एक कुटी है। यहां यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान आयोजित होते रहे हैं। गिरनारी जी तपस्वी बाबा जैसे महात्मा यहां निवास करते रहे वर्तमान में अधिकारी जी श्री गंगादासजी के कृपापात्र शिष्य रामचरितमानस के विद्वान श्री रामचरणदासजी द्वारा इस स्थान का जीर्णोद्धार चल रहा है।

4. देवीजी का मंदिर – मुगल काल में मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा इस प्रसिद्ध मंदिर को नष्ट कर दिया गया था। यहां की मूर्तियां खण्डित कर दी गई थीं। आज पुनः गांव वालों के सहयोग से मंदिर का कायाकल्प जारी है।

5. जामा मस्जिद– इस्लाम धर्म के अनुयायियों का यह यहां का प्रमुख स्थान है। मुस्लिम पर्वों पर यहां जमा हुयी सभी जातियों के श्रृद्धालुओं की भीड़ बानपुर के हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द का जीवन्त निदर्शन है।

6. बौद्ध मठ (विहार)–बौद्ध मतानुसार इस जीवन के चार आर्य सत्य हैं दुख, दुख समुदय, दुख निरोध तथा दुख निरोधगामिनी प्रतिपद्या । संसार में व्याप्त समस्त दुखों का सामूहिक नाम जरामरण है । जरामरण के बारह क्रम हैं – जरामरण, जाति, भय, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार और उपादान । इनकी मुक्ति हेतु अष्टांगिक मार्ग – सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि – माने गए हैं ।

त्रिरत्नों – धर्म, संघ एवं बुद्ध – की सरण प्राप्ति और दुखनिवृत्ति हेतु अनुसावन स्थल अथवा चेतना गृहों का निर्माण – चैत्यालय, मठ, विहार, मंदिर, स्तूप आदि के रूप में चार प्रकार – शारीरिक, पारिभोगिक, उद्देशिक तथा पूजार्थक – से होता था । पूजार्थक चैत्यगृह भी दो प्रकार के होते थे –

1. संरचनात्मक चैत्यगृह (Structural Chaityas)
2. शैलकृत चैत्यगृह (Rock Cut Chaityas)

शैलकृत चैत्यालय बौद्ध धर्म की दोनों शाखाओं – हीनयान तथा महायान – में हुआ करते थे । बानपुर नगर के मध्य में वर्तमान में दयाचन्द्र गुप्ता के मकान के पास त्रिरत्न स्वरूप तीन शिखरों से युक्त एक मठ स्थित है । इसके गर्भगृह के ऊपरी भागों में सोलह कमलदलाकृतियां उत्कीर्णित हैं, जो चार आर्य सत्य तथा बारह जरामरण चक्र को मिलाकर सोलह तत्वों का निदर्शन करती हैं ।

इस मठ में आकर इस उदात्त विपश्यना का स्मरण सहज ही हो उठता है – ''मैं दूसरे की मैं को अपने सदृश स्वीकार करता हूं'' । यह पूर्वाभिमुख तीन द्वारों से युक्त चैत्यालय घोषित करता है – बुद्धं सरणं गच्छामि – धम्मं सरणं गच्छामि – संघं सरणं गच्छामि । इसकी भग्नावशेषित और उपेक्षित अवस्था अपने उद्धारक की प्रतीक्षा कर रही है ।

7. मुरली मनोहर मंदिर–सेवारे समाज द्वारा यह भग्नावशेषित अवस्था में कृष्णाश्रयी शाखा का यहां का अकेला मंदिर है । मंदिर के पूर्वभाग में एक खुले अहाते में विचित्र शिवलिंग भग्नित जलहरी में स्थित है । आस्तिकजनों ने इसे तुलसीघरा का रूप दे रखा है । इस पाषाण मूर्ति के मध्य में एकादश रुद्रों – रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपात, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान – की मूर्तियां उत्कीर्णित हैं। पूर्व में यहां के नंदी को संभवतः द्वाविंशबाहु विनायक सिद्धपीठ गनेशपुरा के पास रख दिया गया है । वहां तीन नंदी हैं । इस समूचे स्थान पर अन्यान्य देवों की विशाल मूर्तियां पुरानी स्मृतियों को ताजा बनाती हैं ।

8. श्री राधाकृष्ण मंदिर–स्वाधीनता की 50वीं वर्षगांठ पर तत्कालीन थानाध्यक्ष बानपुर श्री रामसुन्दर सिंह ने भगवत्प्रेरणा से जुगलकिशोर मंदिर बनवाने की इच्छा प्रकट की । इन पंक्तियों का लेखक भी वहां उपस्थित था । थाना से संलग्नित जमीन मंदिर हेतु श्री गजराज साहू ने अपनी सभी भाईयों की सहमति से प्रदान कर दी । 5.11.1997 को शिलान्यास किया गया । थाने के आरक्षियों तथा क्षेत्र के विभिन्न गणमान्य व्यक्तियों के सहयोग से 2.5.1998 को मंदिर बनकर तैयार हो गया जयपुर से जुगलकिशोर एवं हनुमानजी की मूर्ति को लाकर मंदिर में प्रतिष्ठित कराया गया। कालांतर में मंदिर के प्रांगण में शिव तथा नंदीश्वर की मूर्ति प्रतिष्ठापित कराई गई।

बानपुर के थाने के पास जुगलकिशोर मंदिर सर्वदा से रहता आया है । जिस समय थाना किले में था, तब वहां रामराजा की मूर्ति तथा जुगलकिशोर का मंदिर स्थित था । 1858 में किले को ध्वस्त करने के बाद अंग्रेजों ने जनमत का आदर करते हुए इन देवमूर्तियों को यथावत रहने दिया । बाद में राम जी की मूर्ति बजरंगगढ़ में स्थापित की गई । कृष्ण मूर्ति को साहू मुहल्ला में स्थापित करा दिया गया । 1861 में अंग्रेजों ने थाना कार्यालय किले से लाकर बजरंगगढ़ के पास स्थानांतरित कर दिया । यहां भी थाने के उत्तर की ओर रामजी तथा दक्षिण की ओर जुगलकिशोरजी का मंदिर रहा । इसके बाद स्वाधीन भारत की उत्तर प्रदेश सरकार ने 1964 में बानपुर से बार और ललितपुर रोड के तिराहे पर एक भवन तैयार कर परिवर्तित कर दिया । वर्तमान में थाने में एक मुख्य आरक्षी, दो उपनिरीक्षक तथा 14 आरक्षी हैं । थाना क्षेत्र में 48 गांव हैं । थाने के एक गांव कैलगुवां में एक पुलिस चौकी है, जिसमें एक निरीक्षक तथा 4 आरक्षी नियुक्त हैं।

इन मंदिरों के अतिरिक्त बानपुर के बाईस भुजी गणपति एवं जैन मंदिरों पर पुस्तक में स्वतंत्र रूप से दिए गए आलेख द्रष्टव्य हैं।

बानपुर के पौराणिक नरेश वाणासुर द्वारा पूजित

भगवान कुण्डेश्वर का जलाभिषेक करती जमड़ार

– पं0 हरिविष्णु अवस्थी[10]

सृष्टि का उद्‌भव जल से माना जाता है। इसीलिए विश्व के सभी धर्मों और संप्रदायों ने जल की महत्ता को स्वीकार करते हुए उसे प्राण तत्व की संज्ञा दी है। गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में लिखा है ''क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्व यह रचेउ समीरा।''

हमारे पूर्वजों – ऋषियों-मुनियों ने वरुण देव एवं जल की वन्दना का विधान किया। जल के प्रमुख स्रोत सरिताओं को मैया जैसे श्रेष्ठ श्रद्धास्पद विशेषणों से विभूषित किया। उनकी आरती उतारी और जयकारा लगाया, यथा –

नरबदा मैया ऐसैं तौ मिलीं रे
ऐसैं तौ मिलीं हैं जैसैं
मिल गए मताई उर बाप रे। नरबदा मैया हो।
उल्टीं तौ बहैं रे तिरबैनीं
बहैं रे सीधी धार रे। नरबदा मैया हो।

'हमारे देश में जल को जो मान्यता मिली हुई है, वह भले ही एक निष्प्राण कर्मकाण्ड में ढल गई हो; परंतु जल हाथ में लेकर संकल्प लेना अर्थात् जल को साक्षी मानना, जल छिड़ककर अपवित्रता के निवारण के लिए आश्वस्त होना, जल-कलश को मंगल विधायी मानना, किसी की मृत्यु के बाद जल भरा घड़ा फोड़ देह जल (आत्मा) को विराट सृष्टि में विलीन करना, पवित्र नदियों में स्नान, उनकी आरती उतारना आदि मूलतः केवल कर्मकाण्ड नहीं रहे होंगे। वे प्रतीक विधान रहे होंगे, जो जल में प्रिय, पूज्य, मंगल आस्था, साक्षी, व्रत, आत्मा आदि की प्रतीति के माध्यम रहे होगे।'[1]

जल की जीवन हेतु अनिवार्य आवश्यकता एवं उसकी आपूर्ति हेतु वर्षा ऋतु के जल का संग्रहण, संरक्षण एवं सदुपयोग का दायित्व हमारी भारतीय संस्कृति का अंग है। सहस्रों वर्षों से जल संरक्षण की परंपरा भारत में ही नहीं पूरे विश्व में विद्यमान है। वर्षा ऋतु के जल से ही सर, सरिताओं की जलापूर्ति होती है।

पर्यावरण के विनाश के फलस्वरूप आज संपूर्ण विश्व में जल की उपलब्धता में निरंतर गिरावट आती जा रही है। अवर्षा के कारण जल स्रोत सूखते चले जा रहे हैं। भू का जल स्तर क्रमशः नीचे की ओर चला जा रहा है। जलाभाव अनुभव किया जाने लगा है। ग्रीष्म ऋतु में तो जलापूर्ति उत्तरोत्तर एक भीषण समस्या का रूप लेती जा रही है। विश्व व्यापी जलाभाव की समस्या से कोई ग्राम भी अछूता नहीं रहा है। हम देखते हैं कि हमारे लिए जल का विकल्प जल के अतिरिक्त कुछ नहीं और यह पूर्ण रूप से प्राकृतिक स्रोतों पर निर्भर है। जल को विश्व का कोई देश अपने किसी कारखाने में तैयार नहीं कर सकता।

जल की इस अपरिहार्य आवश्यकता को देखते हुए बानपुर के पौराणिक नरेश वाणासुर द्वारा पूजित कुण्डेश्वर और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों की जलापूर्ति का साधन जमड़ार और जामिनी नामक सरिताओं के योगदान को रेखांकित करना इस आलेख का अभीष्ट है। इन दो सरिताओं के संगम पर ही बानपुर की वर्तमान सीमा अवस्थित है।

---

[10] टीकमगढ़ में सन् 1934 में जन्मे श्री अवस्थी साहित्यकार, पत्रकार और एक जाने माने पुरातत्ववेत्ता हैं । आपकी प्रमुख रचनाएं हैं – कहत कबीर सुनो भई साधो, संत कबीर तथा मधुघट (संपादन) । पं0 जी ने बुन्देली भाषा और साहित्य के साथ-साथ विभिन्न साहित्यकारों एवं समाज के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर रचित विभिन्न अभिनन्दन ग्रंथों का संपादन किया है । इन कार्यों से आपने दिखाया है कि इस प्रकार के बहुधा औपचारिकतापूर्ण आयोजनों में से किस प्रकार साहित्य और इतिहास के अनछुए प्रसंगों का अन्वेषणात्मक लेखन किया-कराया जा सकता है और साहित्य तथा संस्कृति-समीक्षकों के लिए उपयोगी ग्रंथ तैयार किए जा सकते हैं श्री अवस्थी द्वारा डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी तथा श्री गुणसागर 'सत्यार्थी' जी के साथ किए गए अनेक अभिनन्दन ग्रथों का संपादन बुन्देली साहित्य और समीक्षा के क्षेत्र में स्तुत्य एवं वरेण्य अवदान है ।

इसके अतिरिक्त अवस्थी जी ने अपनी लेखनी आध्यात्मिक प्रसंगों पर भी चलाई है । गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' में उनके विभिन्न आलेखों से बुन्देली ही नहीं अपितु देश-विदेश का जन-मानस भी प्रेरित-लाभान्वित हुआ है।

– संपादक

जमड़ार 'एक बड़ी नदी है। झांसी जिले के मड़ावरा नामक कस्बे के निकट से जमड़ार नदी का विकास होता है। यह नदी कुण्डेश्वर में रमणीक दृश्य दिखाती हुई कुछ मील उपर चलकर जामुने में मिल जाती है।'[2]

'Mandura - The head quarters of the pargana of the same name isA small villageAnd lies in Lal.24^0 23^0 N.And Long.78^{0}48^0 E----South of the fort there isAn old tank withAnArea of 27Acres.'[3]

ज्ञातव्य है कि 'मधुकर' पाक्षिक के संपादक के रूप में कुण्डेश्वर में उस समय निवासरत पं0 बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने जमड़ार के स्रोत की यात्रा की थी। अपनी इस यात्रा का वृतांत उन्होंने 'जमड़ार के स्रोत पर' शीर्षक से लिखा था। उन्होंने लिखा - 'सर्वथा स्वार्थभाव से मैंने अपने लिए एक कार्यक्रम सोचा। वह था नदियों के स्रोत पर जाना, उनके किनारे घूमना और यथासंभव उनके निकट रहना। यद्यपि सभी चौबे लोग जमना को मैया कहते हैं, पर जमना के निकट रहते हुए भी मैंने उसकी गोद में खेलना कभी नहीं सीखा। यह सौभाग्य मुझे जमड़ार में ही प्राप्त हुआ।.....

जमड़ार नदी चालीस मील से अधिक लंबी नहीं है। पर इस छोटी सी नदी ने कई अत्यन्त मनोहर स्थलों का निर्माण किया है। निस्संदेह कुण्डेश्वर इन सबमें शिरोमणि है। इसी कुण्डेश्वर पर स्थित राजभवन में तीन वर्ष पांच महीने रहने के बाद और अब उसे छोड़ते समय मैं जमड़ार की महिमा को भली-भली समझ सकता हूं।

15 नवंबर सन् 1939 का दिन था। प्रातःकाल 6 बजे के समय चाय पीकर और कैमरा लेकर मैं बंधुवर प्रयागनारायण त्रिपाठी के साथ जमड़ार नदी के स्रोत को देखने पैदल चल पड़ा।....लगभग तीन बजे हम लोग महरौनी से मोटर में मड़ावरा के लिए रवाना हुए और चार बजे वहां पहुंच गए। वहां से जमड़ार के स्रोत की खोज में निकले और डेढ़ मील की दूरी पर एक तालाब के किनारे जा पहुंचे। माता जमड़ार का यहीं मायका था। तालाब बिल्कुल सूखा हुआ पड़ा था, यद्यपि उसको उंची दीवारों ने एक ओर से बांध रक्खा था। तथापि किसी भले मानस ने उसमें खेती के लिए हल चला दिया था। नंसाल (ननिहाल) की यह निर्धनता मन में बड़ी खटकी।.... नदियों को हमारे यहां माता के नाम से पुकारा जाता है और हम लोग गौ को भी माता कहते हैं, पर इन दोनों माताओं की जो दुर्दशा हम लोगों ने कर रक्खी है, उसे देखकर रोना आता है।

जमड़ार के स्रोत पर खड़े होकर हम बड़ी देर तक यही सोचते रहे कि जिस नदी के द्वारा सैकड़ों-सहस्रों बीघे जमीन सींची जाती है और जिसने कुण्डेश्वर जैसे मनोहर स्थलों को अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया है, जहां साल में नौ-दस महीने जल-प्रपात की कलकल ध्वनि से समस्त वायुमंडल गुंजायमान रहता है, उस नदी के प्रति हम लोगों ने यह कृतघ्नता क्यों प्रदर्शित की है?'[4]

मड़ावरा जलाशय में स्थित अपने उद्गम से प्रवाहित हो जमड़ार उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले की महरौनी तहसील के धुरवारा, उल्दना और बारौन ग्रामों के निकट से बहती हुई मध्य प्रदेश के जिला टीकमगढ़ की सीमा में घाट खिरिया में प्रवेश कर धनवाहा, अस्तौन, नचनवारा एवं नीमखेरा के मध्य से बहती हुई कुण्डेश्वर में प्रवेश करती हुई दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है

जमड़ार नदी के निकट स्थित अस्तौन नामक एक प्राचीन कस्बा में निर्मित एक छोटे से दुर्ग को देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रामचंद्र पाण्डुरंग 'तात्या टोपे' को अक्टूबर 1858 ई0 में आश्रय देने का श्रेय एवं गौरव प्राप्त है। ज्ञातव्य है कि अस्तौन दुर्ग से प्राप्त 'तात्या टोपे' की तलवार एवं गुप्ती तात्या टोपे संग्रहालय शिवपुरी (म0प्र0) में सुरक्षित है।

'माता जमड़ार की गोदी में तो हम नित्य प्रति खेलते रहे हैं और जामनेर के प्रति भी न जाने कितनी बार अपनी भक्ति का प्रदर्शन कर चुके हैं। हम उस दिन की याद कभी नहीं भूल सकते हैं, जब टीकमगढ़ के 17-18 विद्यार्थियों के साथ भटकते-भटकते हमने उषा विहार का आविष्कार किया था। इसका नामकरण संस्कार उषा कुंज और उषा विहार अपने द्वारा ही किया गया था और जो कार्य कवि को करना चाहिए था, उसे हमने कर डाला। उषा विहार पर जामनेर के दोनों तटं की वृक्षावल्लियां बड़ी आकर्षक हैं। उन्हें देखकर इकबाल की ये पंक्तियां याद आ जाती हैं -

सफ़ बांधे दोनों जानिब बूटे हरे-हरे हों।
नदी का साफ पानी तस्वीर ले रहा हो।।
आग़ोश में जमीं के सोया हुआ हो सब्ज़ा।
पड़-पड़ के झाड़ियों में पानी चमक रहा हो।।
पानी को छू रही हो झुक-झुक के गुल की टहनी।
जैसे हसीन कोई आईना देखता हो।। [5]

'जमड़ार का सर्वोत्तम भाग है कुण्डेश्वर से जामनेर तक के संगम का। पग-पग पर कैसे मनोहर दृश्य बनाती हुई, छबीली छटा छिटकाती हुई, कहीं द्वीप तो कहीं सरोवर निर्माण करती हुई वृहदाकार चट्टानों से टकराती हुई, गोल मटोल, सैकड़ों शालिग्रामों की रचना करती हुई, बार-बार मुड़कर मानो अपने ही सौन्दर्य का पुनः-पुनः अवलोकन करती हुई कितनी अदा, कितनी गंभीरता के साथ जमड़ार अपनी बड़ी बहिन जामनेर से मिली है।'[6]

कुण्डेश्वर से लगभग तीन किलोमीटर आगे जमड़ार और जामिनी सरिताओं का संगम स्थल है। 'एक वर्ग का जो स्थान जमड़ार और जामनेर नदियों के बीच वृक्षों से आच्छादित दीख पड़ता है, इसे हम लोग मधुवन कहते हैं। वन तथा उपवन का यहां अद्भुद सम्मिश्रण है। यह एक द्वीप है और इसके किनारे के चारों ओर की वृत्ताकार सड़क पर सैर करने में अद्भुद आनंद आता है।'[7]

जामनेर तथा जमड़ार नदियों के संगम से बनी हुई वनस्थली का नाम हमने 'मधुवन' रख दिया है और हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि अपने सभी साहित्यकार बंधुओं को हम 'मधुवन' की यात्रा कराएं।'[8]

आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं0 सोहनलाल द्विवेदी, श्री श्रीराम शर्मा, श्री हरिशंकर शर्मा, श्री केदारनाथ भट्ट, श्री वृन्दावन लाल वर्मा, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री एवं श्रीमती हरि जी गोविल, श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री हरगोविन्द गुप्त (बेतवा सरिता यात्री), श्री सियारामशरण गुप्त एवं विष्णु प्रभाकर जी जैसे प्रभृति विद्वानों का आगमन कुण्डेश्वर में हुआ। सभी विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से इस स्थान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। शतायु की ओर अग्रसर राष्टपति एवं देश की विभिन्न श्रेष्ठतम साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित श्रद्धास्पद विष्णु प्रभाकर जी द्वारा कुण्डेश्वर की सुषमा का दिया गया विवरण दृष्टव्य है -

'कुण्डेश्वर एक सुन्दर स्थान है। नदी के किनारे भवन प्राकृतिक दृश्यों से घिरा, नाना प्रकार के पेड़-पौधे, वन में बंदर हैं तो चीतल भी। याद करते ही दूर वन में चीतल दिखाई दिए। उन स्वर्णमृगों को देखकर बहुत अच्छा लगा। बताया कि तेंदुआ आदि वन्य पशु भी हैं ... नदी किनारे पत्थरों पर बैठे प्रकृति की छटा निहारते रहे। वृक्षों के बीच में होकर नदी का घुमाव मन को बहुत भाता है। वैसे भी नदी किनारे बैठना मुझे बहुत अच्छा लगता है। सर्जक और योगी दोनों के लिए ही आदर्श स्थान है।... जामनेर और जमड़ार के संगम पर पहुंचे। दो नदियों का संगम मन को सदा तरंगित करता है। घूम-घूमकर घाट देखे। वन के नयनाभिराम दृश्य देखे। क्या बताएं क्या देखा और क्या न देखा ? (दिनांक 4 जनवरी 1941 को विष्णु प्रभाकर जी ने कुण्डेश्वर का अवलोकन किया था) [9]

श्री प्रयाग नारायण जी त्रिपाठी ने लिखा है 'कुण्डेश्वर के वर्णन के बिना टीकमगढ़ का वर्णन अधूरा ही रह जाएगा। कुण्डेश्वर में हमें प्रकृति के जितने निर्मल और मनोहर रूप का दर्शन मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यहां की प्रातः की अरुणिमा, मध्यान्ह की प्रखरता, संध्या का झुरमुटा और रात्रि की निस्तब्धता सभी का आकर्षण एक नवीनता लिए होता है। कविवर श्रीधर पाठक की निम्न पंक्तियां यहां के लिए बिल्कुल लागू होती हैं -

प्रकृति यहां एकांत बैठि निज रूप संवारति।
पल-पल-पल रति मेष छनक छन-छन छबि धारति।।

एक बार बंधुवर रामसेवक रावत किसी कनेडियन महानुभाव को कुण्डेश्वर दिखाने के लिए लाए थे। वह इस सुरम्य स्थल को देखकर मुग्ध हो गए और एक अंग्रेज मिलिट्री आफीसर ने कहा ' यह तो मुझे स्वदेश की सर्वोत्तम सीनरी की याद दिलाता है।'[11] इधर साढ़े चार वर्ष से हमे कुण्डेश्वर नामक रमणीक स्थल के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और इसे हम अपने तुच्छ जीवन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना मानते हैं। वर्षा में जमड़ार के गंभीर नाद को हमने सुना है और हेमंत में उसके जल प्रपात के कल-कल निनाद को। बसंत में उसके तट के प्रहरी वृक्षों की मनोहर सुषमा के दर्शन हमने किए हैं और ग्रीष्म में उसके शीतल जल में स्नान करके अद्भुद आनन्द प्राप्त किया है। सुना है कि आत्मा द्वितीय जन्म के लिए स्मृति के गहरे चित्रों को सुरक्षित करके ले जाती है। यदि बात ठीक है तो अगले जन्म में जमड़ार, जामनेर संगम, उषाकुंज और स्वर्णमृग सेवित मधुवन की अनेक मधुर स्मृतियां हमने अपने लिए रिजर्व कर ली हैं।[12]

इस प्रकार जहां एक ओर दूरस्थ क्षेत्र के निवासी स्वर्गीय दादा पं0 बनारसीदास जी चतुर्वेदी जहां वाणासुर द्वारा पूजित भगवान कुण्डेश्वर की रमणीयता पर मुग्ध होकर इसी स्थल पर पुनर्जन्म पाने की कामना करते हैं, वहां हमारे निकट होने के बाद भी जीवनदायिनी जमड़ार की जलधाराओं के अर्चन, वन्दन अथवा दर्शन का विचार हमारे नगरवासियों के मन में कभी आता है ?

संदर्भ-स्रोत

1. नया ज्ञानोदय, मार्च 2004 पृ0 9
2. ओरछा राज्य का भूगोल, पृष्ठ 36
3. झांसी जिला गजेटियर, पृ0 353-54
4. मधुकर पाक्षिक वर्ष 1 अंक 13, 1 अप्रैल 1941 पृ0 9-10
5. वही, वर्ष 2 अंक 15, 1 मई 1942, पृ0 6
6. वही, वर्ष 1 अंक 13, 1 अप्रैल 1941, पृ0 10
7. वही, वर्ष 1 अंक 1, 1 अक्टूबर 1940, पृ040
8. वही, वर्ष 2 अंक 6, 16 दिसंबर 1941, पृ0 1
9. प्रेरक साधक, सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली, पृ0 48-49
10. मधुकर पाक्षिक वर्ष 2 अंक 19, 1 जुलाई 1942
11. वही, वर्ष 2 अंक 12, 16 मार्च 1942, पृ0 2
12. वही, वर्ष 2 अंक 12, 16 मार्च 1942, पृ0 2

-अवस्थी चौक, किले का मैदान, टीकमगढ

बानपुर के बाइस भुजाधारी नृत्य गणपति

- आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

पौराणिक काल की जम्बुला और यमदंष्ट्रा तथा आज की जामनेर और जमड़ार नदियों के संगम पर बानपुर गांव कभी वाणपुर नगर हुआ करता था। आज उसी बानपुर के गणेशपुरी मुहल्ले में स्थित है - गणेश की अद्‌भुद बाइस भुजी मूर्ति। निदानशास्त्र द्वारा निर्देशित लक्षणों से संपन्न सर्वांगपूर्ण मूर्ति - गजानन, त्रिनेत्र, बालेन्दुमौलि शोभित, विकट और खर्व (स्थूल, वंकिम और नाटी) देह, लंबोदर, नाग यज्ञोपवीत, वक्रतुण्ड, सिंदूर शोभानिक रतन और बीस हस्त कमलों में शोभित दंत, पाश, अंकुश, वर, अभय, परशु, बीजपुर, मोदक, गदा, पुण्ड्रेक्षु, सुदर्शन, शंख, उत्पल, धान्यमंजरी, रत्नकलश, कार्मुक, शूल, आमोद विघ्न और प्रमोद मुद्राओं के बीस लांछन तथा शेष दो हाथों में नृत्य की मुद्राएं प्रदर्शित करते हुए थिरकन के लालित्य सहित बाईस भुजाओं की विशाल प्रतिमा। यह प्रतिमा मूक; पर मुखर और कुछ अनसुलझे रहस्य सुलझाने का संकेत दे रही है, पर सुनता कौन है ? यहां के लोगों ने विघ्नविनायक की इस प्रतिमा को चोरों की निगाह से बचाने के लिए उसे एक संकरे से कक्ष में दीवारों की कारा में कैद कर दिया है। भला हो यहां की उन ग्रामीण महिलाओं का, जो गांव से दूर अलग-थलग इस जगह पर आकर इन विघ्नेश्वर के एकांतवास को भंग करती हैं, मंगल गीत सुनाती हैं, तीज-त्योहारों पर आकर इनकी सुधि लेती हैं, अपने सुख-दुखों को निवेदित करती हैं और जीवने की सिद्धि हेतु याचना का आंचल फैलाकर विनय करती हैं। यह गणपति देव पूरे ताल पर नृत्य में रत हैं, वादक संगत कर रहे हैं और आसन के नीचे मूषक महाराज चकित चंचल दृष्टि से देखते हुए मोदकों का भोग लगा रहे हैं। आनंद से मन उमंग उठता है, दृश्य देखते ही बनता है। फिर प्रश्न उठते हैं, एक के बाद एक ?

प्रश्न उठता है, इस गैर आबाद से गांव के इस हिस्से में, गांव से दूर ऋद्धि-सिद्धि से सर्वथा वंचित ग़रीबों के मुहल्ले में, शुभ और लाभ के स्वरूप 'ऋद्धि सिद्धि मुद मंगल दाता' क्यों बसे हैं ? (जबकि वे अन्य देव, जिनकी पूजा इनके बगैर होती ही नहीं, मजे से गांव के बीच सुंदर भवनों में पूजा की सारी सेवाएं ग्रहण कर रहे हैं)। ये यहां कब से बसे हैं ? किसकी प्रार्थना पर ये विघ्नेश्वर यहां पधारे होंगे? क्या प्रयोजन रहा होगा उसका जिसने नृत्य करते हुए गणेश के इस सुंदर और विशाल विग्रह को यहां प्रतिष्ठित करवाया ? ऐसे ही और भी अनेक प्रश्न उठते हैं। येन-केन प्रकारेण आए इक्के-दुक्के विचारवान दर्शनार्थियों के मन में यह सब घटित होता है। दर्शन के बाद कुछ व्यक्ति इन प्रश्नों पर विचार करते हैं और प्रश्नों में उलझते हैं फिर सुलझाने का प्रयास करते हैं और कुछ व्यक्ति प्रश्नों को प्रयास द्वारा हटा देते हैं, दामन फटकार कर निजात पा लेते हैं। मैंने भी कुछ ऐसा ही किया था। दर्शन किए, प्रसाद ग्रहण किया और उठते हुए बलात् रोकर अपना रास्ता पकड़ लिया। पर यह इन गणपति महाराज की लीला ही कही जाएगी कि इतने दिनों बाद मेरे मित्र श्री अवस्थी हरिविष्णुस्वरूप ने इनके संबंध में 'बानपुर विविधा' के लिए लेख लिखने का आग्रह किया। बुन्देलखण्ड में प्राप्त गणपति की प्रतिमाओं से संबंधित अपने सुवाच्य नोट्स दिए और कुछ संदर्भ ग्रंथों को थमाते हुए मुस्करा कर कहा ''अब आप आराम से लिखिए''। यह लेख इसी पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित है।

गणेश आदि देव हैं। लोक में उनके बिना कोई काम बनता नहीं। किसी शुभ कार्य में प्रथम निमंत्रण गणपतिमहाराज को देने की प्राचीन परंपरा है। गणेश जी हमारे जीवन के हर मौके पर विघ्नों को दूर करने और मंगल विधान के साधन में सहायक रहा करते हैं। हमारे अंचल में यह तब से चला आ रहा है, जब इतिहास अपने अंधेरे में खुद डूबा हुआ था।

गणेश की पूजा गांवों, कस्बों और नगरों की सीमा में कभी बंधी नहीं। जहां भी कोई भारतीय पहुंचा, वहीं उसके देवता गणेश उसके साथ पहुंच गए। रामायण - महाभारत में गणेश, पुराणों और स्मृतियों में गणेश, गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों में गणेश, भारत की प्रत्येक प्रमुख भाषा के साहित्य में गणेश, उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक श्री गणेश महाराज की महत्ता और सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। पश्चिम के विद्वान जिस भारतीय विद्वान के भाष्य के आधार पर वेदों को समझ सके हैं, वे हैं 'सायणाचार्य'। इनका समय 16वीं शती ई0 है। ये भी गणेश को नमन करना नहीं भूलते हैं। पर पश्चिम के ये पंडित जो सायणाचार्य के आधार पर ही खड़े हैं। वे कहते हैं 'गणेश पूजा वैदिक नहीं है। वेद में गणपति है, वेद में ब्रह्मणस्पति हैं; पर वेद में गणेश शब्द नहीं है। अतः यह नहीं माना जा सकता कि गणेश की पूजा वैदिक है।' यहां इस पश्चिम के विचार पर बहस नहीं करनी है, केवल दो बातें कहनी हैं।

पहली बात तो यह कि आधुनिक काल में मूर्तिकला की समझ को सार्वदेशीय करने और सर्वजन सुग्राह्य बनाने का श्रेय जिस भारतीय विद्वान को जाता है, वे हैं - श्री गोपीनाथ राव। श्री राव ने 'एलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी' नामक वृहद् ग्रंथ का निर्माण किया है। इसमें विभिन्न भारतीय शिल्प ग्रंथों, निदान शास्त्रों, पुराणों और आगम ग्रंथों में वर्णित मूर्तियों के लक्षणों को एकत्र कर उनका व्यवस्थित सांगोपांग वर्णन किया है। मूर्ति की पहचान के लिए अच्छी दूसरी पुस्तक आज तक उपलब्ध नहीं है। यह पुस्तक पढ़े बिना कोई भी आधुनिक भारतीय मूर्तिकला का मर्म नहीं जान सकता। इसके लेखक का विचार है 'वेद के वृहस्पति ही गणेश का प्रथम रूप हैं वेद वर्णित वृहस्पति के हाथ में परशु का वर्णन है उन्हें एकश्रृंग कहा जाता है (श्रृंग का अर्थ दांत भी होता है)। साथ

ही वृहस्पति सप्तवर्ण हैं और अज्ञान अंधकार को दूर हरते हैं।' (एलीमेंट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी वॉल्यूम प्रथम पार्ट प्रथम पृष्ठ 45)

और दूसरी बात यह है कि मूर्ति-प्रतीकों के गूढ़ रहस्य सुलझाने वाले एक माहिर विद्वान हुए हैं 'कोमारस्वामी (Coomarswamy) (जिनके अंग्रेजी में लिखे लेखों के प्रकाश में ही आधुनिक भारतीय और पश्चिमी विद्वान भारतीय कला की अप्रतिम कृति 'नटराज शिव' के सौन्दर्य और शिल्प के छिपे गूढ़ अभिप्राय को समझकर सराहने में सक्षम हुए हैं। वे भी खुलकर श्री गणेश को वैदिक 'ब्रह्मस्पति' का पर्याय मानते हैं। वे मानते हैं कि श्रीगणेश का पूर्वरूप (वैदिक स्वरूप) ब्रह्मस्पति ही है।

"CoomarswamyAttributes his reputationAs 'Patron of Letters' to the double meaning of the word 'गण' which besides being the name of the followers of Shiva isAlsoA technical designation of early lists or collections of related works (गणेश) in bulletin of the Boston Musium of fineArts. Vol.XXVI page 30April 1928.

पर इन दोनों की भी बातें ये पश्चिमी पंडित सुनते नहीं हैं। वे यह समझने की भी कोशिश नहीं करते कि ब्राह्मण ग्रंथ घोषणा कर रहे हैं 'बृहस्पति ही ब्रह्मस्पति हैं, ब्रह्मणपति और बृहस्पति एक ही देव के दो नाम हैं।' जैसे - बृहस्पते ब्रह्मणस्पते (तै0 ब्रा0 3/11/4/2) और शतपथ ब्राह्मण कहता है - वाग्वै बृहती तस्या एष पतिः तस्माद् बृहस्पतिः (शत0 ब्रा0 14/4/1/25)अथात् वाक् ही ब्रह्म है, उसका पति है बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति। तैत्तिरीय ब्राह्मण फिर फिर दोहराता है - बृहस्पतिः (एवैनं) वाचां (सुवते) (तै0 1/7/4/1) और जैमिनीय ब्राह्मण का भाग जैमिनीय उपनिषद उच्च स्वर से घोषित करता है कि बृहस्पति प्राणस्वरूप है (2/2/5)। यह गणेश, गणपति या ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति एक ही देव के भिन्न-भिन्न नाम हैं। इसे हमारी परंपराएं - वैदिक और तांत्रिक - दोनों मानती हैं। अभिनवगुप्त ने अपने निज देहस्थ देवता चक्र पूजा में स्पष्ट वर्णन करते हुए गणेश को कहा है - प्राणतनु।

असुर सुर वृंदवन्दितं अभिमतवरवितरणे निरतम्।

दर्शन शताग्र पूज्यं, प्राणतनुं गणपतिं वन्दे।। (निजदेहस्थ देवताचक्रम् 1)

महर्षि अरविन्द अपने वेद रहस्य में बृहस्पति को समर्पित वामदेव ऋषि के मंत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं 'बृहस्पति रचना करता है शब्द द्वारा, अपनी आवाज द्वारा 'रवेण'; क्योंकि शब्द आत्मा की उस समय की आवाज ही है, जबकि वह सदा नवीन बोधों और निर्माणों के लिए जाग्रत होता है।'(वेद रहस्य प्रथम पृ0 407)। महर्षि वेद रहस्य के दूसरे भाग में पुनः दोहराते हैं - बृहस्पति सृष्टा हैं, वह शब्द के द्वारा, अपने रव के द्वारा सर्जन करता है - इसका अभिप्राय हुआ कि वह अभिव्यक्त करता है समस्त सत्ता को और सब सचेतन ज्ञान को तथा जीवने की गति को और अंतिम परिणत रूपों को; निश्चेतना के अंधकार से बाहर निकालकर प्रकट कर देता है।'(वेद रहस्य द्वितीय, पृ0 23)। यही गणपति - गणेश का हमारा पारंपरिक रूप है -

'....गणादीन पूर्व मुच्चार्य (अ क च ट त प...)वर्णार्दीस्तदनंतरम्, अनुस्वारः परतरः, अर्द्धेन्दुलसितम् (एपीग्लोटिस), तारेण (होकलकौर्ड्स) रुद्धम् एतत् तव अनुस्वरूपम्.....(गणेश अथर्वशीर्षम्) यहां गणपति को वर्णसमाम्नाय ध्वनितारों (होकलकौर्ड्स) में वायु कण्ठनली के अर्द्धेन्दु (एपीग्लोटिस) में अवरूद्ध रहने से जब वे झनझनाती हैं तब ही..अर्थात् गणेश शब्द ब्रह्म की ध्वनि होती है Hymns of R.V., Vol..II p.641] 1897 second edition में ग्रिफिथ ने भी बृहस्पति और ब्रह्मस्पति की एकता को स्वीकार किया है।

मूर्तिकला की दृष्टि से जब हम इस विंध्य प्रांगण में गणेश मूर्तियों की पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि इस देश की प्राचीनतम गणेश की मूर्ति इसी अंचल में मिली है। गुप्तयुग के प्रारंभकाल की गणेश की एक सुन्दर मूर्ति भूमरा (सतना) में प्राप्त होती है। यह आसनमूर्ति है। इसमें श्रीगणेश उदर-बंध पहने नागयज्ञोपवीत धारण किए शोभित हो रहे हैं। इसमें गणेश द्विभुज हैं। जानकारों का मानना है कि यह मूर्ति चौथी शती ई0 के पूर्वार्ध की रचना है। गुप्तयुग की ही एक दूसरी मूर्ति, जिसका रचनाकाल 5वीं शती ई0 का है, उदयगिरि (विदिशा) में देखी जा सकती है। इस मूर्ति की रचना में मूर्तिकार ने 'उर्ध्वरेतस्' भाव की अभिव्यक्ति को रूप दिया है (डॉ ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा, संरक्षक राष्टीय संग्रहालय, नई दिल्ली - कल्याण मासिक, वर्ष 48 गणेशांक पृ0 388)। यह मूर्ति उदयगिरि की गुफा क्रमांक 4 में है। उदयगिरि की ये शैलकृत गुफाएं गुप्तशासक चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में वीरसिंह ने निर्मित कराई थीं। डॉ शाह के अनुसार गुप्तकालीन गणेश मूर्तियां कालिंजर (बांदा) में स्थित नीलकण्ठेश्वर मंदिर के बगल में मौजूद हनुमान कुण्ड के किनारे शिव पार्वती की मूर्तियों के साथ भी प्राप्त हैं (Ancient Bundelkhand - K.K. Shah, Gyan Prakashan House, Delhi p.53।

इसी क्रम में 6ठीं शती ई0 की गणेश मूर्तियां देवगढ़ (ललितपुर) की नाहरघाटी और राजघाटी में प्राप्त हैं। नाहरघाटी में गणेश को सप्तमातृकाओं के साथ उकेरा गया है, वहीं राजघाटी के एक आले में गणेश की स्वतंत्र मूर्ति है (डॉ एस.डी. त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रकाशक राजकीय संग्रहालय झांसी पृ0 50)। दतिया से 8 कि.मी. दूर केवलारी ग्राम में 7वीं-8वीं शती ई0 की अनेक मूर्तियां मिली हैं। इनमें श्रीगणेश और कुबेर की भी सुन्दर मूर्तियां हैं। 8वीं शती ई0 की एक गणेश प्रतिमा लोखरी (बांदा) में प्रो0 कृष्णदत्त बाजपेयी को एक सर्वेक्षण के दौरान मिली (Anc.Bund.K.K.Shah P.53)। प्रारंभिक चन्देलकाल (8वीं-9वीं शती ई0) की एक विशाल गणेश मूर्ति रासिन गांव, जो बांदा कालिंजर रोड पर बांदा से 40 कि.मी. दूरी पर है, के पास गजानन नामक स्थान पर मिली है (Anc.Bund.K.K.Shah P.54)। उत्तर चंदेल काल (9वीं-10वीं शती ई0) की अनेक गणेश प्रतिमाएं खजुराहो के संग्रहालय, लक्ष्मण मंदिर और चित्रगुप्त मंदिर में मौजूद हैं (म0प्र0 का पु0सं0ग्रं0 पृ0 321)। रनेह (दमोह) में एक सुन्दर प्रतिमा (11वीं-12वीं शती ई0की) मातृकागणों के साथ गणेश की प्रतिमा प्राप्त है (Anc.Bund.K.K.Shah P.62)। इसी समय की गणेश मूर्तियां देवरदा-मड़खेरा के

मंदिरों में टीकमगढ़ में श्री हरिविष्णु अवस्थी के प्रयत्नों से मुझे ज्ञात हुई हैं। ये मूर्तियां अतिसुन्दर नृत्यगणेश के विग्रहरूप हैं। इसी प्रकार नोहटा (दमोह), जो दमोह से जबलपुर जाने वाले रोड पर दमोह से मात्र 20 कि.मी. पर है, में अनेक गणेश प्रतिमाएं हैं। नोहटा कभी गाणपत्य संप्रदाय का एक तीर्थ रहा है। वहां की प्रतिमाओं में से बहुसंख्यक प्रतिमाएं 12वीं शती ई0 के अंतिम चरण तक की रचनाएं हैं। बुन्देलखण्ड अंचल का यह भू-भाग प्राचीन चेदि गणराज्य का और बाद में चंदेल और कलचुरि शासन का अंग रहा है।

आदि शंकराचार्य के 14 प्रमुख शिष्यों में से एक आनंदगिरि ने अपने ग्रंथ 'शंकर दिग्विजय' में कहा है भगवान शंकराचार्य ने अपनी दिग्विजय यात्रा के दौरान गाणपत्य संप्रदाय के एक विद्वान को शास्त्रार्थ में हराया था। उस समय गणेश के 6 संप्रदायों का चलन था - 1. महागणपति संप्रदाय 2. हरिद्रागणपति संप्रदाय 3. उच्छिष्ट गणपति 4. नवनीत गणपति 5. स्वर्णगणपति संप्रदाय और 6...। विद्वान शंकर दिग्विजय को 9वीं शती ई0 की रचना मानते हैं। शंकराचार्य के 14 शिष्यों में से एक शिष्य और थे 'विष्णु शर्मा'। विष्णु शर्मा के शिष्य प्रगल्भाचार्य और उनके शिष्य विद्यारण्य हुए हैं। विद्यारण्य का समय 11वीं शती ई0 का है। इन्होंने एक विशाल ग्रंथ लिखा है 'श्री विद्यार्णव तंत्र'। इसमें प्रायः सभी संप्रदायों की गणेश उपासना के मंत्रों और विधियों का वर्णन मिलता है। अतः यह प्रमाणित है कि 9वीं शती ई0 में गणपति के अनेक संप्रदाय प्रचलित थे। आनंदगिरि (आनंदतीर्थ) के शंकर दिग्विजय से भी पूर्व की रचना है 'परशुरामकल्पसूत्र'। यह ग्रंथ श्रीविद्या के आचार्यों द्वारा स्वीकृत प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है। इसका उल्लेख शंकर के दादा गुरु गौड़पादाचार्य करते हैं। इस ग्रंथ में श्रीविद्या के उपासनाक्रम के अंग रूप में प्रथम महागणपति की उपासना 'प्रत्यूहापोहाय' अर्थात् विघ्नों को दूर करने के लिए करने का विधान है।

स्वयं गौड़पादाचार्य ने भी श्रीविद्यारत्नसूत्र ग्रंथ में लिखा है ''अष्टाविंशद्वर्णसमुच्चयो महाहेरंबस्यमनुः'' (सूत्र सं083)। इस प्रकार श्रीविद्या की उपासना के अंग-रूप में गणपति की उपासना मान्य रही है। श्रीविद्या की उपासना के साथ श्रीगणेश की उपासना शंकराचार्य के पूर्व में भी प्रचलित रही है, जिसे श्री शंकर ने अपने गुरु श्री गोविन्दपाद से प्राप्त की थी। बाद में श्रीशंकराचार्य के गृहस्थ शिष्य श्री मल्लिकार्जुन के शिष्यों ने विंध्यक्षेत्र में इसका प्रचार किया। उन्होंने ही शाक्त और शैव दोनों परंपराओं में समान रूप से स्वीकृत अद्वैत आधारित इस श्रीविद्या को विस्तार दिया है। इस परंपरा को कभी चंदेल शासकों की राजधानी में और कभी चेदि-हैहय वंशी राजाओं के राज्याश्रय में केन्द्र-स्थान प्राप्त हुआ। महागणपति व नृत्यगणपति की मूर्तियां सुखी समाज के सूचक के रूप में व्यक्त होती रही हैं। बानपुर की यह नृत्य गणपति की मूर्ति निश्चय ही यहां के विगत विचार और समृद्धि के वैभव का मूर्तरूप व्यक्त करती है।

अब प्रश्न उठता है कि इसकी बाईस भुजाओं का मूर्तिशास्त्रीय आधार क्या है? दो आधार मिलते हैं, जिन पर गणेश की बाईस भुजाओं की मूर्ति का कल्पन हो सकता है। प्रथम आधार है 'शिल्परत्न' और 'गणेशपुराण' और दूसरा आधार है 'परशुराम कल्पसूत्र'। शिल्परत्न के 25वें अध्याय में कहा गया है 'कृतयुग में गणेश का ध्यान होता था कश्यप के पुत्र के रूप में। वे सिंहारूढ़, तेजस्वरूप और दशभुजाधारी हैं। त्रेता में शिव के पुत्र के रूप में; जिनका मयूर वाहन था, शशिवर्ण और षट्भुजायुक्त थे। द्वापर में गणेश को वरेण्य पुत्र के रूप में, मूषक वाहन, रक्तवर्ण और चतुर्भुजी माना जाता था। इस कलियुग में श्री गणेश अश्वारूढ़, धूम्र-सित वर्ण और द्विभुज ध्यान करने की विधि है।' गणेश पुराण के क्रीड़ाखण्ड 1/18-21 में भी यही वर्णन आया है। इस प्रकार किसी विज्ञ मूर्तिकार ने इन समस्त रूपों को एकत्र दिखाने के लिए ही (10+6+4+2) कुल बाईस भुजा की गणेशमूर्ति की रचना की होगी। यही स्थापना आदिवासी लोककला अकादमी म0प्र0 संस्कृति परिषद् भोपाल द्वारा वर्ष 2005 में प्रकाशित ग्रंथ 'बुन्देली इतिहास और संस्कृति' में पं0 श्री बाबूलाल द्विवेदी के आलेख 'द्वाविंशबाहु विनायक सिद्ध क्षेत्र - बानपुर' में दी गई है।

दूसरे विचार का आधार 'परशुरामकल्पसूत्र' है। इसके महागणपतिक्रम के सूत्र 4 में महागणपति के हाथों की संख्या और उनमें धारण किए हुए लांछनों के साथ (एक ओर के) ग्यारह बताकर, ध्यान करने का निर्देश दिया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आदि शंकराचार्य के समय से पूर्व भी श्रीविद्या की उपासनाक्रम में बाईस भुजा के महागणपति के ध्यान और पूजन की परंपरा स्वीकृत थी

एक प्रश्न अब भी रह जाता है। कब स्थापित हुए हैं ये महागणपति बानपुर में? मूर्ति के रचना विधान को देखने के लिए तत्कालीन राजनैतिक वातावरण पर विचार करते हैं तो हमारे सामने समय के कुछ पन्ने खुलते हैं। यह वह समय है जब नर्मदा तट पर स्थित भेड़ाघाट (गोलकीमठ) शैव-शाक्त साधना का विशिष्ट केन्द्र था। दक्षिण में 'त्रिपुरान्तकम्' में पाए गए शिलालेख से यह बात स्पष्ट होती है। पते की बात यह है कि त्रिपुरी की मुद्रा पर शैव-शाक्त चिन्ह त्रिशूल, बौद्ध प्रतीक चैत्य तथा वैष्णव देवी लक्ष्मी की मूर्ति अंकित है, जो त्रिपुरी में बौद्ध और जैन संप्रदायों के प्रति उदारता की भावना को व्यक्त करता है। चेदि वंशीय हैहय गांगेय देव का पुत्र कर्णदेव 1041 ई0 में अपने पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा। उसने राज्य पाने के 10-11 वर्षों के भीतर ही भारतवर्ष भर का साम्राज्य प्राप्त कर लिया उसने त्रिपुरी से लेकर नेपाल, कन्याकुमारी, बंगाल की खाड़ी और अरब सागर तक अपनी विजय पताका फहराई। उसने त्रिपुरी के केन्द्र में बैठकर 136 विनत राजाओं के मस्तकों के प्रणाम अपने चरणों में स्वीकारे। कलचुरि वंश के सबसे बड़े इतिहास अन्वेषक रायबहादुर हीरालाल का यही मत है, जो रासमाला ग्रंथ से प्रमाणित होता है। यह समय वह भी है जब जनता के बीच ब्रह्मा, विष्णु और शिव को एक ही मूर्ति में एकत्र करने का प्रयत्न चल रहा था। त्रिपुरी में इस भावना के काफी

प्रमाण मिलते हैं। यह वह समय था जब पाशुपत और कालामुख संप्रदाय के लोग 'त्रिपुरांतक' शिव की उपासना का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। त्रिपुरी की पूजा लोकप्रियतर होती जा रही थी।

इसी समय ललितपुर के निकट धौर्रा स्टेशन से लगभग 6 कि.मी. दूर दूधई एक शाक्त साधना-केन्द्र के रूप में विकसित हो गया था। चन्देल राजा यशोवर्मन के पौत्र देवलब्धि ने यहां मन्दिर बनवाए थे। यहीं एक गणेश का मंदिर परिसर के एक भाग में मौजूद है। यह एक बात में भिन्न है। इसकी मूर्ति की प्रभावली में (प्रभामण्डल के शिरोभाग पर) शिव का अर्धनारीश्वर विग्रह मौजूद है और बगल में दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु अपनी शक्तियों से युक्त हैं। इसका अभिप्राय है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव का त्रिक् एक ही तत्व के तीन रूप हैं। वह तत्व रुद्र शिव है, वही तत्व यह गणेश हैं। गणेश ही अर्धनारीश्वर हैं। यह बात विस्तार से कभी 'गणपति अथर्वशीर्ष' में कही गई है। इसी बात को शिल्पी ने इस गणेश-मूर्ति में मूर्त कर दिया है यहां गणपति के 'ब्रह्मस्वरूप' को रूप देने का यत्न किया गया है। इस दृष्टि से यह मूर्ति एक ऐसी अद्वितीय रचना है, जो श्रीविद्या के मुख्य प्रतिपाद्य विषय शिव-शक्ति के अद्वय को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। दूधई की यह मूर्ति रचनाविधान में, शिल्प के संधान में और लालित्य की अभिव्यंजना में बानपुर के बाईस भुजाधारी गणेश की प्रतिमा के समान है। यही नहीं बल्देवगढ़ की त्रिपुरा माता की मूर्ति का शिल्प विधान और त्रिक् के एकत्व का विचार भी उसी क्षमता से अभिव्यक्ति में एक सा है, जो इनके समसामयिक सृजन की ओर संकेत करता है।

बानपुर के गणेश की प्रतिमा अपनी विशालता और बोल्ड अभिव्यक्ति के आधार पर उसी एकत्व विधान को मौन, पर पूर्णमुखरित उच्च स्वर से उद्भासित करती है। पूरे भारत में यह प्रतिमा अद्वितीय है। देश का अमूल्य धन है। शिल्प की महनीय निधि है, जो 11वीं शती ई0 में जन्म पाती है। आवश्यक नहीं कि यह किसी राजा या सामंत के द्वारा ही स्थापित कराई गई हो। अधिक संभावना यही है कि यहां के किसी श्रेष्ठी, गृहपति या व्यापारी ने अपने नगर-ग्राम की समृद्धि हेतु इसे स्थापित कराया हो। उस काल में - महाराज कर्णदेव के समृद्ध सुशासन काल में - जनता के बीच श्रीविद्या, शैव-शाक्त मत के एकत्व का बहुल प्रचार था; पूर्ण धार्मिक सद्भावना स्थापित थी; जैन, बौद्ध, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य सबका अपने ढंग से अस्तित्व था। बानपुर नगर में भी इसके अस्तित्व के प्रमाण ध्वंसावशेष रूप में आज भी मौजूद हैं। बानपुर विचार वैभव से संपन्न तब अतिमहत्वपूर्ण नगर रहा है। बानपुर का यह महान है कि इतनी महनीय पुरा समृद्धि का दायभाग वहां सुरक्षित है। सिद्धि और ऋद्धि के प्रदाता महागणपति अब भी वहां अपने नृत्य के बहाने वर्ण, छंद, गति और लय के साथ प्रणव के उद्गीथ से काल को अपने चरणतल द्वारा रौंदे जा रहे हैं हे बुद्धिदाता ! अब हम आप से ही प्रार्थना करते हैं कि इन बानपुरवासियों को ऐसी बुद्धि दें कि ये आपकी स्तुति करें और इतने प्रयत्नशील बनें कि पुराने गौरव से भी आगे बढ़कर दुनिया में बानपुर की यशपताका फहरा दें। वे एक साथ गाएं -

ऊँ कारमाद्यं प्रवदन्ति सन्तो, वाचः श्रुतीनामपि ये गृणन्ति।

गजाननं देवगणानतांघ्रि भजेहमर्धेन्दुकृतावतंसम्।। अर्थात् सन्त जन जिन्हें श्रुतियों एवं वाणी का आद्य ओंकार स्वरूप कहते हैं। देवता लोग जिनके चरणकमलों में प्रणत रहते हैं, जो अर्धचन्द्र धारण करते हैं; उन गजानन महाराज की अर्चा हम करते हैं।

-नूतन विहार कालोनी, टीकमगढ़

कैलगवां की लुप्त होती गौरा पत्थर की हस्तकला

-डा0 जवाहर लाल द्विवेदी

बुन्देलखण्ड की रत्न गर्भा धरती में बहुमूल्य खनिज सम्पदा की प्रचुर उपलब्धता है यह अंचल प्राकृतिक संसाधानों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध माना जाता है। प्रकृति और मानव का साहचर्य सृष्टि के विकास का मूल कारण है। प्रकृति मानव की सहृदय मित्र है जहां पर कृषि कर्म हेतु पर्याप्त उर्वर भूमि की उपलब्धता पायी जाती है। उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में मानव के जीवन यापन के लिए ऐसी प्राकृतिक खनिजों की अपार मात्रा विद्यमान है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के उपयोग से निर्जीव खनिज के छोटे छोटे टुकड़ों को सजीव बनाकर मनमोहक बना दिया। सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास की यात्रा में ऐसी हस्तकला को विकास का चरम बिन्दु भी मिला तो दूसरी ओर अन्य उत्पादों की तुलना में प्रतिस्पर्धा का दंश भी झेलना पड़ा। मानवीय श्रम की बढ़ती कीमतों और अविवेकपूर्ण सौन्दर्य बोध ने गौरा पत्थर की हस्तकला के समक्ष गंभीर चुनौती प्रस्तुत कर दी है। वर्तमान समय में गौरा पत्थर की ऐसी अनूठी कला अपने अस्तित्व को संघर्षरत है।

ग्राम कैलगवां जिला ललितपुर का एक ऐतिहासिक और चर्चित कस्बा है। जिसकी वर्तमान जनसंख्या अनुमानित दस हजार है। इस ग्राम में सभी जातियों एवं वर्गों के लोग अधिवास करते हैं। लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि, पशुपालन तथा मेहनत-मजदूरी है। शिक्षा की दृष्टि से मात्र जूनियर हाई स्कूल की सुविधा है। यातायात के साधन के बतौर बस सुविधा उपलब्ध है। दुखद पहलू यह है कि इस क्षेत्र में कोई रोजगार की सुविधा नहीं है। फलतः इस क्षेत्र का अधिकांश श्रमिक वर्ग दिल्ली, भोपाल तथा इन्दौर की ओर पलायन करने को मजबूर है। कथित पलायन की मानसिकता ने अंचल की सामाजिक तथा सांस्कृतिक शुचिता पर भी कुठाराघात किया है। कई वर्षों से अनावृष्टि की मार झेलता यह क्षेत्र बेवस, असहाय और बेचारा के संबोधन से लज्जित है। शासन के प्रयत्नों की भले प्रचार तंत्र दुहाई देता हो पर यथार्थ में कोई लाभकारी प्रभाव दिवा स्वप्न सा है।

कैलगवां के समीप बीजरी एवं पुरा धंधकुआ खदानों में डायस्फोर तथा पायरोफ्लाइट के अटूट भण्डार विद्यमान थे जिनके बल पर आंचलिक शिल्पकार अपने कौशल के उपयोग से गौरा की मूर्तियां बर्तन तथा सजावट सामग्री बनाकर उदरपूर्ति कर लेते थे। अब प्लास्टिक की बढ़ती आपूर्ति तथा मंहगाई की मार में गौरा पत्थर के उत्पाद अप्रांसगिक बन गये। दुखद सत्य यह है कि दोनों पर उद्योग पतियों का वर्चस्व है। डायस्फोर में ऐल्यूमिनियम के तत्व पाये जाते हैं। जिसका चूर्ण बनाने के संयंत्र भी जिले के भीतर न होकर झांसी में लगे हैं। आज दोनों खदानों में यांत्रिक खुदाई होने से मजदूरों की रोजी रोटी भी छिन गई है। सत्ता के दलालों और जन प्रतिनिधियों की सांठ गांठ से खनिज चोरी की घटनायें जन चर्चा के विषय बन गई है।

कैलगवां में गौरा पत्थर की हस्तकला में सिद्ध हस्त शिल्पी इमाम खां तथा सत्तार मोहम्मद ने इस कार्य को लगभग त्याग दिया है। केवल गौरा पत्थर की मूर्तियां बनाकर मौजूदा समय में परिवार चलाना असंभव हो गया है। गौरा पत्थर की मूर्तियां तथा बर्तन वजन में भारी होते हैं तथा यह कोमल प्रकृति का होने से टूट जाता है। जन सामान्य गौरा पत्थर की जगह प्लास्टिक के उत्पाद अधिक अपनाने लगा। गौरा पत्थर के बर्तन स्वास्थ्य की दृष्टि से निरापद माने जाते थे। शिव की मूर्तियां गढ़ने वाले हाथ आज अनाथ बनकर रोजी रोटी के लिए दर-दर भटकने को शापित है। कहीं न कहीं इस विषम दशा के लिए सरकार तो उत्तरदायी है ही क्षेत्रीय जनता की उदासीनता भी प्रमुख कारण है। वर्ष 1971-72 के आसपास गौरा पत्थर के ट्रक वाराणसी विक्रय हेतु स्थानीय लोग ले जाते थे और वहां पर विदेशी पर्यटकों के लिए मनभावन सामग्री बनाकर बेची जाती थी। विशेषकर विदेशी सैलानी गौरा पत्थर की चिलमें तथा सिगरेट केश बहुत पसंद करते हैं। अब यह सब कारोबार बन्द होने से गौरा पत्थर से जुड़े लोगों में अभाव की त्रासदी उपजी है। सरकार के स्तर के स्तर पर प्रयास नगण्य प्रकृति के रहे। शिल्पकारों के लिए खदानों से गौरा पत्थर आपूर्ति व्यवसाय तथा कष्ट साध्य है। जिसके कारण यह दुर्लभ परम्परागत शिल्प काल के गाल में समाने को विवश है।

बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी अमिट छाप छोड़ी थी। उनका यह मानना था कि विदेशी दासता में प्रजा का सुख संभव नहीं है। विदेशी शासक जन मानस की संवेदना की अनदेखी करता है। विदेशी शासकों द्वारा देश के करोड़ो लोगों के हाथों का रोजगार कठोर ओर लघु उद्योगों को समाप्त कर के छीन लिया गया था। आर्थिक पराबलम्बन की कोख में ही राजनीतिक पराधीनता का जन्म होता है। महात्मा गांधी ने कहाा था कि आर्थिक आजादी के बिना राजनैतिक आजादी बेमानी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण विकास की सुनहरी योजनाएं प्रभावशील की गई। कुछ हद तक आशाओं को बल भी मिला परन्तु के धरातल पर परिणाम शून्य ही रहा। सबसे अधिक दुष्प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में फैले लघु कुटीर उद्योगों के संजाल पर पड़ा। परम्परागत कौशल और वंशानुगत पेशेवर लोगों की बदहाली अनेक सवाल खड़े करती है। ऐसे हुनरमंद लोगों की कला कृतियां कभी कभार विकास प्रदर्शनियों में या जलसों में दिखाकर कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है। यह विषम स्थिति कोई सार्थक परिणाम का प्रदर्शन नहीं कर पाती। शिल्पकारों में बढ़ती निराशा एवं कुंठा एक अपार संभावना के क्षेत्र को समाप्त कर देने से नहीं चूकती।

आवश्यकता इस बात की है कि कैलगवां के गौरा पत्थर की हस्तकला की धरोहर को पर्याप्त संरक्षण देकर बचाया जाये। ताकि भावी पीढ़ियां इस शिल्प को जान सकें तथा उदर पोषण भी कर सके। यह क्षेत्र की सांस्कृतिक अस्मिता का भी एक कारक है। खनिज माफिया समृद्धि के कंगूरों पर बैठा इठलाता रहे और खनिज कर्म से जुड़ा मजदूर बेबश शहरों का नारकीय जीवन जीने को मजबूर हो; इस घोर बिडम्बना से मुक्ति मिलनी ही चाहिए। यह युगीन आवश्यकता है। वैश्वीकरण के दौर में विकास का क्षितिज सीमाहीन हो, श्रम की कीमतों में बढ़ोत्तरी हो तथा राष्ट्रीय अस्मिता को नवीन आयाम मिले। यह इस अवसर पर हुतात्मा राजा मर्दन सिंह के प्रति सच्ची भावांजलि होगी।

-प्राध्यापक (वाणिज्य), शासकीय महाविद्यालय, राधौगढ़ जिला-गुना (म0प्र0)

तालबेहट में अकती पर्व का वर्जन तथा मोद प्रहलाद का मान मर्दन

- श्रवण कुमार त्रिपाठी

सन् 1605 में रामशाह बुंदेला को चंदेरी की जागीर मिली थी। इसी वंश की ग्यारहवीं पीढ़ी के उत्तराधिकारी मोद प्रहलाद ने 1805 ई0 में चंदेरी का शासन संभाला। राजा मोद प्रहलाद ने 1830 में बानपुर की राजगद्दी भी संभाली। मोद प्रहलाद 1857 के संग्राम में लक्ष्मीबाई के सहयोगी बानपुर नरेश महाराजा मर्दनसिंह के पिता थे।

मोद प्रहलाद के राज्य का सबसे महत्वपूर्ण नगर तालबेहट ही था। तालबेहट का भारतगढ़ दुर्ग और उससे लगा मानसरोवर तालाब, उस पर स्थापित विशाल शिवलिंग हजारिया महादेव हैं पहाड़ पर दुर्ग है और उसका अलग से कोट बना है, जिसकी लंबाई 1.5 कि.मी. से भी अधिक है कोट के भीतर भी आबादी थी तथा बाहर विस्तृत नगर बसा था। सन् 1817 की बसंत ऋतु में मोद प्रहलाद तालबेहट के किले में आकर रुके थे। इसी समय अक्षय तृतीया (परशुराम जयंती) का पर्व होता है, जो समस्त भारत में मनाया जाता है। यह ब्राह्मणों का मुख्य पर्व है, क्योंकि भगवान परशुराम ब्राह्मण थे। तालबेहट नगर में प्रारंभ से ही ब्राह्मणों का बाहुल्य रहा है। दसवीं शताब्दी के आस-पास तालबेहट में बहेरिया ब्राह्मणों का आधिपत्य था। इन्हीं ब्राह्मणों ने मानसरोवर झील का निर्माण कराया था। यह झील बुंदेलखण्ड में प्रसिद्ध है, उस पर स्थापित जो हजारिया महादेव हैं, वह विश्व की अमूल्य धरोहर है। अक्षय तृतीया यहां की लोकभाषा में अकती कहलाती है। अकती का पर्व लड़कियों का पर्व है, जो विवाहिता हैं, वे अपने पति की सुखशान्ति और दीर्घायु की कामना में यह पर्व मनाती हैं, जो लड़कियां क्वारीं होती हैं, वे सुयोग्य और श्रेष्ठ वर प्राप्ति के लिए बरगद (बरिया) पूजन करती हैं। सन् 1817 की अकती को मनाने नगर तालबेहट की लड़कियां प्रतिवर्ष की भांति भीतरकोट गईं। मानसरोवर का यह घाट आज भी बरिया घाट कहा जाता है, क्योंकि इसके घाट पर पांच विशाल बरगद के पेड़ खड़े थे। इस समूह में विवाहिता और कुंवारी कन्याएं सभी थीं। वे पूजन की सामग्री लेकर तथा सोलह श्रृंगार कर समूह में चलकर जाती हुई गीत गा रही थीं -

अकती खेलन कैसे जाऊं री, बर तरैं मेले लिवउआ
पहिले लिबउआ नाऊ बामन आए,
उनके संग ना जाऊंगी।
दूजे लिबउआ ससुरा आए,
उनके संग ना जाऊंगी।
तीजे लिबउआ जेठा आए,
उनके संग ना जाऊंगी।
चौथे लिबउआ देवरा आए,
उनके संग ना जाऊंगी।
पांचवें लिबउआ राजा आए, सैंया आए,
उनके संग ही जाऊंगी।
अकती खेलन कैसे जाऊं री, बर तरैं मेले लिबउआ।

उस समय लड़की को लिवाने जो पाहुने या मेहमान आते थे, उन्हें बर की छांहों में ठहराया जाता था। जिसका चलन आज भी बुंदेलखण्ड के ग्रामों में है। संध्या को भीतर कोट जाकर उन कन्याओं ने वर पूजन किया। इसके उपरांत एक-दूसरे को सोन दिया। सोन में वर के फूल और पलाश के फूल-पत्तों का चूर्ण करके वह सभी को बांटा जाता है। यह शुभ और सगुन (सौभाग्य) लाता है, ऐसी मान्यता और लोकविश्वास है। भारतगढ़ दुर्ग से यह उत्सव मोद प्रहलाद देख रहे थे। उन्होंने संकेत से जिन लड़कियों का चयन किया, उन्हें अपने सेवकों से किले में उन्हें सोन देने के लिए बुलाया। राजा के आदमी सात लड़कियों को नरसिंह द्वार से किले में लिवा ले गए। किले में प्रवेश करने पर द्वार बंद कर दिया गया। शेष लड़कियां अपने घरों को लौट गयीं, जिनके घर लड़कियां नहीं पहुंची थीं, वह ढूंढ़ते भीतर कोट आए। तब सिपाहियों ने बताया कि राजा साहब ने सोन लेने के लिए किले में बुलाया है। आज की रात वह राजा की मेहमान हैं, आप चिंता न करें।

पारिवारिक जन उसांस खींचते हर्ष और विषाद में डूबे घर लौट आए।

अकती की वह रात भारतगढ़ दुर्ग में कालरात्रि बनकर उतरी। कामी मोद प्रहलाद ने परिवार की प्रतिष्ठा, समाज की नैतिकता, वर्ण-व्यवस्था की मर्यादा सभी मान्यताओं को ध्वस्त करके बुंदेलखण्ड में व्यभिचार और कामवासना का नया इतिहास रचा। जिसे कहने और सुनने में आज भी मानव मन कांपता है, अंतरात्मा कराह उठती है। रात बीती भोर में सिंहपौर के मार्ग से उन कन्याओं को किले के बाहर कर दिया गया। वे लड़कियां बिलखती, रोती, चीखतीं नीचे रानी घाट तक आयीं, तब तक प्रकाश फैल गया। उनके

सामने शिवालय की वाटिका थी, वे उसमें गईं। वहां पर काले धतूरे के पेड़ फलों से लदे थे। उन्होंने उन्हें तोड़कर उनके बीज खाए, एक-दो नहीं मुट्ठियों में भर-भरकर और अपने हाथों में खातीं, रोती रानी द्वार की ओर बढ़ीं, जो नगर का प्रवेश-द्वार है।

प्रवेश द्वार तक आते-आते वे बेहोश होकर वहीं गिरकर ढेर बन गयीं। मुंह और नाक से झार निकल आया। वे तड़प-तड़प कर शांत हो गयीं।

प्रतिदिन की भांति मानसरोवर में स्नान के लिए नागरिकों का आना प्रारंभ हुआ। नगर द्वार का दृश्य देखकर नागरिक चीख पड़े। उनकी चीख और चिल्लाहट से नागरिकों की भीड़ जुट गयी। लड़कियों के परिवारजन समाचार मिलने पर चीखते भागे आए। नगर में हाहाकार मच गया। सभी लड़कियां ब्राह्मण परिवारों की थीं।

नगर में विरोध और विद्रोह उभर आया। उसी नगर द्वार के सामने ही समूचे नगरवासियों ने उन बालिकाओं का अंतिम संस्कार किया। सिसकते-सिसकते नागरिक इस अनहोनी को झेलते घर लौट आए। तालबेहट नगर की इस क्रूर अनहोनी घटना का समाचार शनैः-शनैः समूचे चंदेरी राज्य और बुंदेलखण्ड में फैलता गया। मोद प्रहलाद अब जनता को मुंह दिखाने लायक नहीं रह गए थे। तालबेहट छोड़कर वे चंदेरी चले गए।

इस घटना के पश्चात् तालबेहट नगर की प्रत्येक जाति के पंच बालाजी मंदिर पर एकत्र हुए, जिनमें चंदेरी राज्य के विशेश-विशेश जन भी आए। जाखलौन के जागीरदार, चंदेरी के चौधरी साहब और अन्य विशिष्ट जन बिना बुलाए तालबेहट आए। बीती घटना पर कराहते-कराहते अंत में सर्वसम्मति से राजा मोद प्रहलाद को दण्ड देने और राज्य सत्ता से अलग करने का निर्णय किया गया। तय हुआ कि ग्वालियर के सिंधिया को बुलाया जाए इसके लिए 10 प्रतिनिधि चुने गए। इनके नेता बल्लभ तिवारी तालबेहट को बनाया गया। पंचों का यह दल अविलंब ग्वालियर के लिए चल दिया गया।

ग्वालियर पहुंचकर ग्वालियर नरेश से भेंट की तथा चंदेरी राज्य की दुर्दशा तथा राजा के चरित्र का चित्रण कर बताया। जिसे सुनकर ग्वालियर दरबार कांप गया। अविलंब ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया ने सरदार लक्ष्मणराव फालके व कर्नल जॉन वैप्टिस्ट फैलोज के नेतृत्व में अपनी पांच हजार सेना उसी समय तालबेहट के लिए रवाना कराई। ग्वालियर की सेना ने जैसे ही तालबेहट में प्रवेश किया, जनता जय-जयकार करने लगी। सेना ने दुर्ग घेर लिया। दुर्ग के सैनिक पूर्व से राजा के कुकर्म के साक्षी और अपरोक्ष रूप से सहयोगी रहे थे, जिसकी पीड़ा उन्हें भी थी। अतएव दिन के 12 बजे उन्होंने सिंह पौर का द्वार खोल दिया। उन्होंने बढ़कर सरदार लक्ष्मणराव फालके का स्वागत कर उन्हें किला सौंप दिया। सरदार फालके ने तालबेहट के भारतगढ़ दुर्ग पर सिंधिया का ध्वज फहरा दिया और उसी समय कर्नल जॉन वैप्टिस्ट फैलोज के नेतृत्व में सेना को चंदेरी भेज दिया। जैसे ही ग्वालियर की सेना चंदेरी पहुंची कि मोद प्रहलाद अपने प्राण बचाने अपने परिवार को लेकर झांसी भाग गए। चंदेरी की जनता ने स्वागत और जयकार करके सेना को लिया। फैलोज चंदेरी की व्यवस्था कर दूसरे दिन ललितपुर आए। ललितपुर में चंदेरी राज्य की व्यवस्था करने के लिए ग्वालियर की सेना ने स्थायी शिविर लगाया। वे वहीं से समूचे चंदेरी राज्य की व्यवस्था करते रहे। बुंदेलों का 253 वर्ष पुराना राज्य समाप्त हो गया

चंदेरी राज्य की विजय और व्यवस्था से प्रसन्न होकर ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया ने जॉन वैप्टिस्ट को जरया नामक ग्राम जागीर में दिया। फैलोज ने वहां जाकर एक विशाल गिरजाघर बनाया, जो अभी वहां स्थित है।

चंदेरी राज्य में मनोनुकूल स्थिति पाकर जनता में पुनः जीवन आ गया। तालबेहट में एक वर्ष बीतने पर भी नगर द्वार से कोई भी नगर का आदमी न आया और न गया। यह सब देखकर लक्ष्मणराव फालके ने रानीघाट पर स्थित महादेव के मंदिर पर शान्तियज्ञ कराया। इस यज्ञ को संपन्न कराने के लिए ग्वालियर, दतिया, तालबेहट, झांसी व चंदेरी के विद्वान ब्राह्मणों ने भागीदारी की। यह यज्ञ एक सप्ताह चला।

अक्षय तृतीया के दिन यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। यज्ञ की विशेष उल्लेखनीय घटना में सरदार फालके ने एक पत्थर पर दिवंगता हुई सात बलिदानी लड़कियों की उकेरी मूर्तियों के शिलाखंड का शास्त्रोक्त पूजन कराया। उन मूर्तियों का समूची जनता ने पूजन किया तथा श्रद्धा से साष्टांग प्रणाम किया। पुष्प अर्पित किए। उस शिलाखंड को नारी द्वार पर सरदार फालके ने ऊपरी हिस्से पर स्थापित कराया तथा द्वार का नया नाम कटीला द्वार घोषित किया। वह द्वार आज नगर का बच्चा-बच्चा भी कटीला द्वार के नाम से पुकारता है उन वीर बलिदानी बालिकाओं की स्मृति में तालबेहट में उसी समय से आज तक अकती नहीं मनाई जाती है। यही भी उन्हीं बालिकाओं की स्मृति में नगर की अक्षय परंपरा है। द्वार के ऊपर स्थित उन मूर्तियों को द्वार में प्रवेश करने वाला व्यक्ति स्वतः श्रद्धावनत् होकर उन्हें प्रणाम कर प्रवेश करता है। नगर का 'कटीला द्वार' श्रद्धा, स्मृति और बलिदान गाथा के साथ इतिहास का अमिट अध्याय बन गया है।

-तिवरयाना, तालबेहट

ललितपुर - महरौनी मार्ग पर

तात्या टोपे का युद्ध-पराक्रम

- भगवानदास श्रीवास्तव

राजगढ-ब्यौरा की लड़ाई के बाद तात्या टोपे की योजना बेतवा घाटी और बुन्देलखण्ड में प्रविष्ट होने की थी, जिसमें टेहरी पर भी आक्रमण करना भी शामिल था । बेतवा तथा जामने नदियों को पार करके टेहरी (टीकमगढ़ का प्राचीन नाम) रियासत के उत्तरी छोर से पृथ्वीपुर - दिगौड़ा मार्ग से टेहरी पर तात्या टोपे आसानी से आक्रमण कर सकता था । इस आशंका की वजह से टेहरी राज्य ब्रिटिश अधिकारियों से तात्या टोपे के ईसागढ़ पहुंचने पर गुहार करने लगा था । ब्रिटिश सैन्य अधिकारी कर्नल लिडिल पृथ्वीपुर में तैनात था । वह बेतवा नदी पर नजर रखे हुए था इस संबंध में झांसी के कमिश्नर ने ब्रिगेडियर ऑसले से प्रस्ताव किया कि कर्नल लिडिल को मिलिटरी पुलिस के काम को अंजाम दे सकेगा । फिर दोनों मिलकर टेहरी से सुरक्षा हेतु प्रस्थान करें । वह 14 अक्टूबर 1858 को टेहरी पहुंचा । इसके एक दिन पूर्व ही पृथ्वीपुर मुकाम पर संयोजित फोर्स की एक टुकड़ी पहुंच चुकी थी । 16 अक्टूबर को यह सम्मिलित फोर्स दिगौड़ा पहुंची । 17 अक्टूबर को स्वयं कमिश्नर 150 पुलिस सवारों के साथ टेहरी पहुंचा ।

अब तात्या टोपे ईसागढ़, चंदेरी, मंगरोली, जाखलौन, ललितपुर के पास से होते हुए खजुरिया, सिलावन, सिंदवाहा के मैदान तक आ गया, ताकि यहां से वह जामुने नदी के घाटों से पूर्व की ओर टेहरी पहुंच सके ।

जनरल माइकेल तो तात्या टोपे का पीछा कर ही रहा था । वह 18 अक्टूबर को बालाबेहट में था । वह वहां से नाराहट के लिए प्रस्थान करने ही वाला था कि उसे आधी रात को सूचना मिली कि तात्या टोपे सिंदवाहा तथा आस-पास के गांवों में अपने भारी दल-बल के साथ 18 अक्टूबर को आ पहुंचा है । जनरल माइकेल ने तात्या टोपे की इस योजना को ध्वस्त करने हेतु अपनी फोर्स को गठित किया और बढ़ता हुआ 19 अक्टूबर को सिंदवाहा के समीप खजुरिया मैदान पर प्रातः नौ बजे आया तो देखा कि महरौनी मार्ग पर कुछ आगे एक पहाड़ी पर तात्या टोपे के साथी जमा हैं वे करीब दस हजार होंगे, जिनमें बहुत से तो बाग़ी सिपाही थे जो संयोजित कंटिंजेंट से भागकर तात्या के दल में सम्मिलित हो गये थे । उनके पास चार तोपें भी थीं । यह दल पूर्व की ओर जाने का इरादा रखता था । अतः जनरल ने उन्हें बढ़ने से रोकने के मकसद से जल्दी कदम बढ़ाये । तात्या टोपे ने ब्रिटिश फोर्स को बढ़ते हुए देखा तो तात्या पहाड़ी से नीचे उतर आए । तात्या ने फुर्ती के साथ आठवीं केवलरी पर हमला बोल दिया । इस केवलरी में आठवीं हुसार तथा फर्स्ट बाम्बे लांसर्स के सवार थे । ब्रिटिश फोर्स ने विद्रोहियों को पीछे धकेल दिया। इतने में अश्व तोपखाना ;भ्वतेम ।तजपससमतलद्ध आ पहुंचा । उसने तात्या टोपे के दल पर गोलियां चला दीं । इतने में सातवीं तथा नवमी हाई लॉण्डर्स उनसे जा भिड़े । उनका साथ बंगाल तोपखाना तथा 19वीं बांबे इंफेण्ट्री दे रही थी । ब्रिटिश फोर्स ने क्रान्तिकारियों को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया । लडाई की भीषणता को देखते हुए 19वीं बांबे इंफेण्ट्री को आगे बुलाना पड़ा । ब्रिटिश फोर्स के पास अत्याधुनिक बम एवं आग्नेयास्त्र थे । ब्रिटिश फोर्स ने उनका भरपूर प्रयोग किया, जिससे क्रान्तिकारियों को पीछे हटना पड़ा । जनरल ने तात्या टोपे और उनके साथी क्रान्तिकारियों के हौसलों के मद्देनजर 92वीं एवं 71वीं इंफेण्ट्री का इस्तेमाल ब्रिटिश फौज को करना पड़ा। हैदराबाद कंटिण्जेण्ट के संयुक्त प्रयास से क्रान्तिकारियों की तोपें छीन ली गईं। जनरल माइकेल ने अपनी फौज को एक घंटे पहले उतार दिया था । तदनुसार केवलरी पल्टन के छोर पर आ लगी । उसका नेतृत्व कर्नल लाम्हर्ट कर रहा था । उसने क्रान्तिकारियों की बढ़ती लाइन को आधा तो काट ही डाला था और फिर दाहिनी ओर मुड़ गया । वह गुरिल्लों की तरह लुका-छिपी करते हुए आगे बढ़ा । इसने क्रान्तिकारियों की सेना को तितर-बितर कर दिया ।

ब्रिटिश फौज क्रान्तिकारियों का विभिन्न दिशाओं से पीछा कर रही थी। क्रान्तिकारी भी ऊँची-नीची पहाड़ियों, नदी-नालों तथा ऊबड़-खाबड़ जंगलों व झरनों-पोखरों से होकर भाग रही थी। कर्नल कीट्स भी ब्रिटिश फौज में सम्मिलित था किन्तु वह उस समय तक पहुंच नहीं सका था। उसके दाई ओर सवार भी थे। केप्टन सर डब्ल्यू गार्डन 17वीं लांसर्स तथा थर्ड केवलरी के साथ अपने 60 सवारों सहित पीछा कर रहा था। उसने 400 विद्रोहियों को मार गिराया। एक-डेढ़ घंटे तक घमासान युद्ध हुआ; क्रान्तिकारी परास्त हुए। पर क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश फौजों को 9 मील तक छकाया था।

खजुरिया के युद्ध में ब्रिटिश फौजों का बहुत नुकसान विद्रोहियों ने कर दिया था उनके मेजरों को क्रान्तिकारियों ने गंभीर रूप से घायल कर दिया। क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश फौज के दर्जनों घोड़े मारे अथवा घायल कर दिये। कम से कम दर्जन भर ब्रिटिश जवान मार दिये गये तथा दो दर्जन जवानों को घायल कर दिया। 19 अक्टूबर के खजुरिया-सिंदवाहा युद्ध में 10 हजार विद्रोही थे। उन्हें अपनी तीन तोपों से हाथ धोना पड़ा।

यह युद्ध समाप्त होने पर तात्या टोपे बानपुर की ओर भागा । जहां से वह ललितपुर पश्चात तालबेहट की ओर गया । राव साहब रजवारा ललितपुर में तात्या टोपे से मिलकर उसके साथ हो लिये थे । तात्या बेतवा नदी को पार करके दक्षिण की ओर जाना चाहता था । जब तात्या का दल मार्ग में बेतवा के झरर घाट पर पहुंचा तो उसे पुलिस ने आगे जाने से रोक दिया । मालूम हुआ कि केप्टन यहां है । उसी के आदेश से इन्हें रोका गया है । विवश होकर तात्या को जाखलौन की ओर भागना पड़ा यहां कुछ देर ठहर कर वे खुरई-खिमलासा की ओर भागे ।

इधर जनरल माइकेल 22 अक्टूबर को ललितपुर पहुंचा । वहां उसे क्रान्तिकारियों की भागदौड़ के बारे में पता लगा कि वे बैलगाड़ियों और घोड़ों के बिना घने जंगल, बीहड़ तथा पहाड़ों के बीच से नदी नालों को हिम्मत से पार करते हुए भागे जा रहे हैं । विद्रोही पाली, मालथोन होते हुए खुरई-खिमलासा की ओर बढ़े जा रहे हैं जनरल तात्या का पीछा करते हुए मालथोन चला गया ।

इस प्रकार बानपुर और उसके समीपस्थ गांवों के रणबांकुरे तात्या टोपे का साथ देकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपने जीवन-धन को न्यौछावर करते हुए अमर हो गए ।

- एच 25, बधीरा अपार्टमेण्ट्स, अरेरा कालोनी, भोपाल - 462016

ललितपुर : एक नजर

- डॉ रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

ललित का अर्थ सुन्दर है । जल की बहुलता, अन्न, साग-सब्जी की सुलभता के कारण कहावत प्रसिद्ध है 'ललितपुर कबहुं न छोड़िये जब तक मिलै उधार ।' ललितपुर जनपद 24 ॰11 -25॰ ॰13 अक्षांश तथा 78 ॰11-79॰ देशान्तर के मध्य है । इसका क्षेत्रफल 5039 वर्ग किमी. तथा जनसंख्या 7.52 लाख है । इसमें तीन तहसीलें - ललितपुर, तालबेहट, महरौनी तथा छः विकास खण्ड - बार, महरौनी, तालबेहट, जखौरा, विरधा, मड़ावरा - हैं । सन् 1844 में चंदेरी राज्य का मुख्यालय ललितपुर बना । सन् 1891 में इसे झांसी का उपजिला बनाया गया । सन् 1974 में पूर्ण स्वतंत्र जिला हो गया । जनपद का संस्थापक दकन का राजा सुमेरसिंह माना जाता है । इसमें प्रवाहित होने वाली नदियां बेतवा, धसान, जामनी, सहजाद, सजनाम हैं । वन का क्षेत्रफल 67 हजार हेक्टेयर है । कुओं से सिंचित क्षेत्र 93 प्रतिशत से घटकर नहर प्रणाली के विकास से इसमें कमी आती जा रही है । रोहिणी, सजनाम, सहजाद, गोविंद सागर, जामनी प्रमुख बांध हैं । ललितपुर झांसी - भोपाल रेलवे लाइन का एक स्टेशन है । इसका प्राचीन नाम पुरवाल (ताम्र पत्र में) प्राप्त है । यहां पर पूर्व पाषाण काल के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं । भगवान अभिनन्दन नाथ की दिगंबर मूर्ति पर विक्रमी सं0 1243 अंकित है । सन् 1993 में नगर में सात क्विंटल की अष्टधातु की प्रतिमा दिगंबर जैन पार्श्वनाथ मंदिर में प्रतिष्ठित की गई । ललितपुर पीतल की मूर्तियों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध है । चांदपुर, दूधई, बानपुर, सीरोनखुर्द आदि चंदेलकालीन कला के प्रसिद्ध स्थान हैं। यहां की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व की जानकारी के स्रोत इस प्रकार हैं -

1. बिहारी लाल बबेले - ललितपुर जनपद का प्राचीन इतिहास - मामुलिया अंक 2
2. कैलाश मड़बैया - बानपुर की शान - धर्मयुग, 26 जनवरी 1975
3. नीरज जैन - बानपुर का चतुर्मुख सहस्रकूट जिनालय - छुल्लक चिदानंद स्मृति ग्रंथ
4. पी.सी. मुखर्जी - रिपोर्ट आन दि ऐंटीक्विटीज इन डिस्ट्रिक्ट ललितपुर - वाराणसी विश्वविद्यालय 1972
5. ख्वाजा मोहम्मद जफर - हिस्ट्री आफ ललितपुर
6. हरग्रीव्ज - ऐंटीक्विटीज आफ चांदपुर दूधई - इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1911
7. महेन्द्र वर्मा - चांदपुर दूधई की चंदेल कला और संस्कृति - कानपुर विश्ववि. 1974
8. सुनीता गुलाटी - हिस्ट्री आफ इकोनामिक कंडीशन झांसी एंड ललितपुर (1862-1900)
9. महेन्द्र अवस्थी - ललितपुर जिले में भूमि विकास बैंक - झांसी विश्ववि0 1987
10. वन्दना जैन - सीरोनखुर्द से प्राप्त मंदिर वास्तु एवं मूर्ति कला का अध्ययन - सागर
11. अभय कुमार - स्टडी आफ आर्कीटेक्चर ऐंड आर्ट रिमेंस एट बानपुर - सागर 1982
12. रुचिरा श्रीवास्तव - जनपद ललितपुर में जैन मंदिरों का सांस्कृतिक अध्ययन - सागर 1994
13. अरुण कुमार गुप्त - ललितपुर जनपद में सेवाकेन्द्रों का अध्ययन - सागर वि0वि01995
14. महेन्द्र मोहन जोशी - ललितपुर जिले का सामाजिक आर्थिक विकास -(1886 - 1947) - सागर विश्वविद्यालय 1989
15. महेश प्रसाद शुक्ल - मदनपुर से प्राप्त पुरावशेषों का अध्ययन - सागर
16. अनीता जैन - मदनपुर की मूर्ति कला का अध्ययन - सागर विश्वविद्यालय

- बुन्देलखण्ड : साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव से साभार

इतिहास और जनश्रुतियों के आलोक में

नगर - ललितपुर

- पं. बाबूलाल द्विवेदी

पाली बालाबेहट मार्ग पर अपने वैभवशाली अतीत की स्मृतियों को संजोए भग्नावशेष शोध-जौहरियों की बाट जोहते हुए देवलब्धिपुर - दुग्धपुर - वर्तमान दूधई महोली में स्थित सुप्रसिद्ध चेदिकालीन तालाब की जलधारा से निकली सहजाद्रि - सहजाद - नदी के तट पर बसे नगर ललितपुर को उसकी प्राकृतिक सुरम्यता एवं शान्ति एवं क़ानून-व्यवस्था प्रिय होने के कारण प्रदेश भर का 'लालित्य' कहना अनुचित न होगा ।

विश्व में सृष्टि एवं सभ्यता का मूल स्थान भारतवर्ष रहा है । भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं अपितु अपनी विलक्षण एवं आधुनिकता से अनतिक्रांत पारंपरिकता के कारण बुन्देलखण्ड भारत का हृदय स्थल कहा जा सकता है । इस अंचल की सीमा में - 'इत नर्मदा उत यमुना इत सिंध उत सतना' के अनुसार नर्मदा से यमुना एवं सिंध से सतना तक के मध्य में स्थित विंध्य एवं इलावर्त प्रदेश का भूभाग - आता है । विंध्य एवं इला प्रदेश में प्रसरित भूभाग इसी कारण विंध्येल - बुंदेल खण्ड कहा गया, जिसमें वर्तमान मध्य प्रदेश के 11 एवं उत्तर प्रदेश के 7 जनपदों को मिलाकर 18 जनपदों को सम्मिलित किया जाता है । इसी बुन्देलखण्ड का तिलक स्थान ललितपुर को माना जा सकता है । इस जनपदीय अंचल में 754 ग्राम हैं ।

मनुष्य की आदिम ललक मृत्यु पर विजय पाना अथवा मरकर लोकमानस में जीवित बने रहने की रही है । इसी कारण जिस भूभाग पर जो रहा; रुका; शासन अथवा कोई निर्माण कार्य किया, उसे अपने अथवा अपने प्रिय के नाम पर नामित किया । जिस मानव जाति का जहां बाहुल्य रहा, उसी के नाम पर उस स्थान का नाम प्रचलित हुआ । शब्दों की हेरा-फेरी अथवा भाषा में आए अनेक परिवर्तनों के बावजूद अद्यावधि स्थान नामों में उनकी पहचान बनी हुई है । इनकी वर्तमान स्थिति को देखते हुए यद्यपि कुछ लोगों को इसका विश्वास कदाचित न हो । व्यक्तियों द्वारा बसाए ऐसे कुछ अभिधान हैं; आर्यप (यूरोप), आर्य रमण (ईरान), स्कन्द निवास (इस्केण्डोनेविया), आर्यलिंग (आयरलैण्ड), स्वधन (स्वीडन), धेनुमार्ग (डेनमार्क), मर्कुण्ड (समरकंद), ऋषि (रसा-रूस), परशुराम के शस्त्र गुरु चायमीन का स्थान (चायना - चीन), अस्त्र (आस्ट्रिया), हिरण्याक्ष का अस्त्रालय (आस्ट्रेलिया) एवं परशु परशिन (फारस) इत्यादि ।

भारतवर्ष में 1331 ई0 पूर्व तक महाभारत के लगभग 1771 वर्ष पश्चात - युधिष्ठिर की पश्चातवर्ती 30 पीढ़ियों के अंतिम शासक क्षेमक तक सार्वभौम शासन रहा। परंतु उसके प्रधान विश्रवा ने उसे मार स्वयं इन्द्रप्रस्थ का शासक बनकर सार्वभौम और अखण्ड शासन की इस परंपरा को सर्वप्रथम विच्छिन्न कर दिया । विश्रवा के बाद उसकी 14 पीढ़ियों का 500 वर्षों तक शासन रहा इस वंश के अंतिम शासक वीरसाल सेन को उसके प्रधान वीर महा ने मारकर राजसत्ता हथिया ली । अराजकता के इस वातावरण का प्रभाव संपूर्ण देश पर पड़ा । यह कालनिर्धारण पुलकेशिन द्वितीय द्वारा सप्तम् शताब्दी में लिखाए गए एहोल शिलालेख, जिसमें महाभारत युद्ध को 3102 ई0 पू0 में हुआ बताया गया है, के आधार पर किया गया है । इस शिलालेख को विख्यात ज्योतिर्विद आर्यभट्ट ने भी मान्यता दी है । लगभग 500 ई0 पू0 अराजकता एवं असंतोष के इसी प्रकार के दौरों में ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध दो नए संप्रदाय जैन एवं बौद्ध धर्मों का अभ्युदय हुआ । परिणामस्वरूप विखण्डित भारत षोडश महाजनपदों में विभक्त हो गए और समूचे देश में राजतंत्र की छोटी-छोटी इकाइयां यत्र-तत्र-सर्वत्र विकीर्णित होने लगीं ।

आज से लगभग 5140 वर्ष पूर्व निर्मित बानपुर राज्य तथा चंद्रवंशी क्षत्रियों का विकसित नगर चंद्रावती - सातवें महाजनपद चेदि[2] की राजधानी चंदेरी; जिसमें कभी चौदह हजार पत्थर के मकान, तीन सौ चौरासी बाजार तथा तीन सौ साठ कारेवान सराय थे - राजाओं की अराजकता एवं परस्पर द्वे:ा-भाव की अग्नि में भस्मसात होते गए । राज्य सत्ताएं और सीमाएं बनती और बिगड़ती गईं । कालान्तर में चेदि प्रांत - बुंदेलखण्ड - के प्रमुख सत्ता के केन्द्र नरवर, पवाया, कालिंजर, दुग्धपुर, चंदेरी, देवगढ़, धूवौन, कुण्डनपुर, ओरछा, छतरपुर, अजयगढ़, दतिया, समथर, झांसी एवं वेरछा मुख्य रहे हैं । अनंतर यहां कुरु, पुरु , मय (सर्प पूजक शिल्पी), कठ, जर, मर, भर (भारशिव), नाग, भोगनाग, यक्ष, मग (ईरान निवासी सूर्य पूजक), ब्राह्मण, सुंग, मौर्य, मेव (तुगलक कालीन एक आतंकवादी जाति), वाकाटक, गौड़, उच्छ कल्प, खड़परिका, प्रतिहार, पाताली, कल्चुरि, सेंगर आदि जातियों का शासन रहा । इनकी पहचान अपने जनपद के क्रमशः कुरौरा, पुरा, मैलवारा, कठवर, जरया एवं जरावली, मरौली, भारौनी, नगारा, भागनगर, जखौरा, मगरपुर, बम्हौरी, सिकरवाहा, मैरती (मौर्यती), मेवली, तालबेहट; बालाबेहट एवं भैरवबेहट, छिल्ला, खड़ोबरा, पहारी, पाली, कलौथरा, सिंगरवारा आदि गॉवों एवं स्थानों में भाषा की कतिपय ध्वनि परिवर्तनों के साथ सुरक्षित है । स्थान नामों के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से भी इस तथ्य का निदर्शन होता है ।

ग्वालियर और भिण्ड से लेकर छिंदवाड़ा और मण्डला तक का प्रान्त गौड़वाना कहा जाता रहा । गौड़ी बोली में गांव को बेहट कहते हैं । प्राचीन हिन्दी के विकास के क्रम में आए पड़ाव के रूप में अपभ्रंश एवं मुख-सुख के कारण एक छोटा-सा गॉव भैरवगढ़-भैरोंबेहट-वैरावट, जो कभी वहरावत के नाम से जाना जाता था । इस नाम का अस्तित्व आज अभिलेखों और जनश्रुतियों में

ही सुरक्षित रह पाया है। इस गांव के भग्नावशेष वर्तमान गोविन्दसागर बांध में जलनिमग्न हो गए हैं । वहरावत के अतिरिक्त एक गांव और चंदेरा आज की गल्ला मण्डी के पास स्थित था, जिसके भी मात्र खण्डहर अवशेष हैं ।

जनश्रुति यह है कि इसी चन्देरा के राजा चंद्रदेव की चार लड़कियां थीं । चंद्रदेव ने अपनी तीन पुत्रियों का विवाह हृष्ट-पुष्ट एवं सजातीय वरों के साथ कर दिया । राजा चंद्रदेव की ललिता नामक सबसे छोटी पुत्री देवी की परम भक्त थी, किन्तु गृह कार्य में वह नितांत उदासीन थी । इस कारण उसे अपने पिता के ताने सुनने पड़े । ललिता के पिता ने उसका विवाह गृहकार्य में रुचि न होने के कारण एक कृशकाय रुग्ण एवं अपरिचित बालक सुम्मेरा (सुमेर सिंह) के साथ कर दिया अपने भाग्य के सहारे ललिता अपने पति के साथ वहरावत (भैरोंबेहट) में रहने लगी । ललिता इतनी अभागी थी कि उसका साथ धूप के भय से मानो स्वयं की छाया ने भी छोड़ दिया हो । एक दिन आटविक प्रान्त में अपने पति के साथ भ्रमण करती हुई ललिता एक वटवृक्ष के नीचे विश्राम करने लगी । वट की सघन और शीतल छाया में बैठकर सुमेरा को नींद आ गई । वह मुंह खोलकर नींद में घुरकने लगा । कहते हैं खुले हुए मुख में सुप्तावस्था में इस युवक के पेट में एक सर्प चला गया था, जिससे सुमेरा नितांत रुग्ण एवं कृशकाय हो गया था । पति के बगल में बैठी ललिता पति की इस स्थिति को देखकर विषण्ण मन से सोचती हुई स्वप्न में थी कि एक सर्प उसके सोए हुए पति के अधखुले मुख से बाहर निकला । वहीं निकट की एक बलमीक (बामी) से एक अन्य सर्प निकलकर उसी समय बाहर आया और सुमेरा के मुंह से निकले सर्प से कहने लगा अरे! तू इस बेचारे को क्यों परेशान करता है । कुछ दिन इसे जीने दे, यदि जाग्रतावस्था में निर्भय रहते हुए मेरी इस बामी के पास लगी हुई लता के फल पीस कर खा ले तो तू मर जाएगा और यह युवक पूर्ण स्वस्थ और सुन्दर हो जाएगा । युवक सुमेरा के मुख-मार्ग में बैठे हुए सर्प ने क्रोधपूर्ण मुद्रा में कहा अरे! तू भी तो अपने बिल में अपार संपत्ति रखे हुए है, क्यों नहीं दूसरों को सदुपयोगार्थ दे देता है । यदि कोई तेरी बामी के पास लगे हुए पौधों के फलों को पीसकर अग्नि में जलाकर उस धुएं को तेरी बामी में भर दे तो तू भी मर सकता है और जो ऐसा करेगा वह अपार संपत्ति का मालिक बन जाएगा ।

स्वप्न से जागकर ललिता ने सर्पों के बताए अनुसार उपायों को अपनाया । चंदेरा एवं भैरोंबेहट के मध्य भाग में उक्त धन से एक देवी मंदिर एवं स्वयं के लिए मकान बनाकर अपने नाम पर ललितपुर नगर बसाया । दुर्भाग्य से सूर्यवंशी गौड़ क्षत्रिय कुमार सुम्मेरा अब सुम्मेरशाह तथा ललिता ललितकुंवर के नाम से लब्धप्रतिष्ठ हुए । एक समय जो राजा सुम्मेरशाह चर्म विकारों से संतप्त थे, एक साधु के निर्देश पर एक पोखर के जल में स्नानकर कालान्तर में वे चर्मरोग से मुक्त हो गए। उस स्थान पर राजा ने अपने नाम पर एक तालाब का निर्माण करा दिया । जिसकी प्रसिद्धि आज सुमेरा तालाब के नाम पर संपूर्ण जनपद में व्याप्त है ।

ललितपुर नगर की स्थापना के संबंध में उपर्युक्त जनश्रुति के अतिरिक्त यदि इतिहास के ग्रंथों का पारायण किया जाए तो विदित होता है नवम् शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चेदि में चंदेलवंशीय राहिलनंदन हर्ष के पुत्र यशोवर्मन (925-940 ई0) का शासन था । गौड़, खस, प्रतिहार, गुर्जर आदि उसके आधीन थे । यशोवर्मन कन्नौज नरेश देवपाल को जीत वहां से विष्णु की मूर्ति को बलात् छीनकर उसे खजुराहो में प्रतिष्ठित कराने में व्यस्त थे । इसी समय करकोटक नागवंशीय काश्मीर नरेश ललितादित्य सार्वभौम राजा बनने की ललक में उत्तर से जय करता हुआ दक्षिण की ओर सपादलक्षकर्णी रथ (पालकी), युग्मवाह (पालकी ढोने वाले) एवं द्विगुणित वेलावित्तों (सेवकों) के साथ आया ।

कर्नाटक की रानी रट्ठा देवी ने दक्षिण से विंध्याटवी तक का मार्ग निष्कंटक कराने में ललितादित्य का सहयोग किया । अपनी दिग्विजय के दौरान ललितादित्य ने जहां फल लिए; वहां फलपुर, जहां विश्राम करते हुए पत्ते लिए, वहां पर्णोत्स नगर बना दिया । जब वह दक्षिण में था तो उसके सेवकों ने उसके नाम पर यहां ललितपुर नगर बसा दिया । ललितादित्य ने यहां न केवल सिंह मंदिर का निर्माण कराया । उसने यहां एक सूर्यमंदिर की स्थापना भी की, जिसमें निराधार चुंबकीय सूर्य की मूर्ति प्रतिष्ठापित कराई गई । चंदेल शासक यशोवर्मन ने इस सूर्य मंदिर की पूजा करने हेतु अपने लिए मांगा । बदले में उसने ललितादित्य को अपने द्वारा कन्नौज के विजित ग्रामों को दान करने की बात कही । ललितादित्य मान गया। इस प्रकार दोनों के बीच संधि हो गई । यशोवर्मा के दरबारी कवि पंडित भवभूति एवं वाक्पति ने ललितादित्य की प्रशंसा में काव्य-सृजन किया । यहां की स्त्रियों ने ललितपुर राज्य में किसी प्रकार की क्षति या लूटमार न करने का ललितादित्य से वचन लिया । इससे यह नगर राजाओं की सामरिक छेड़खानियों से मुक्त बना रहा -

एकमूर्ध्वं नयद्रत्नमघः कर्षत्तथापरम् ।
बद्ध्वा व्यधान्निरालंबं स्त्रीराज्ये नृहरिं च सः ।। 185
दिगन्तरस्थे भूपाले तस्मिंस्तत्कर्मकृत्किल ।
पुरं विधाय तन्नाम्ना तत्कोपफलमन्वभूत ।। 186
ललिताख्ये पुरे तस्मिन्नादित्याय स भूपतिः ।
सग्रामां कान्यकुब्जोर्वीमभिमानोर्जितो ददौ ।। 187

राजतरंगिणी चतुर्थ तरंग

यह वर्णन काश्मीर नरेश कलशनंदन हर्ष (1089-1101ई0) के प्रधानमंत्री चंपक प्रभु के पुत्र - निष्पक्ष इतिहासकार महाकवि कल्हण द्वारा अपने आलंकारिक ग्रंथ राजतरंगिणी में दिया गया है, जो पूरी प्रामाणिकता से पक्षपात रहित होकर दो व:र्षों (1148 से

1150 ई0) तक अत्यंत अध्यवसाय पूर्ण लिखी गई अद्वितीय पुस्तक है । इस की स्पष्टवादिता की प्रशंसा अंग्रेज इतिहासविद् विल्सन, वूलर, स्टीन एवं शिकागो विश्वविद्यालय की संस्कृतज्ञ इतिहासवेत्ता प्रोफेसर एलेक्जेण्डर ने मुक्त कण्ठ से की है ।

झांसी जनपद के गजेटियर में ललितपुर नाम सुमेरशाह की पत्नी के नाम पर बताया गया है । इसका आधार उपरिवर्णित जनश्रुति ही है । वहीं ललितपुर के एक पत्रकार श्री संतोष शर्मा ललितपुर को सुमेर सिंह गौड़ की पुत्री के नाम पर बसा हुआ बताते हैं ।

इस प्रकार ललितपुर के नामकरण के संबंध में जनश्रुति और इतिहास में परस्पर विरोधाभास है । इतिहास के स्रोतों में ही अलग-अलग मत दिखाई देते हैं। जो भी हो; जब तक कोई अन्य स्पष्ट साक्ष्य और निष्कर्ष प्राप्त नहीं हो जाता, कल्हण की राजतरंगिणी में दिए गए उपर्युक्त विवरण को ही ललितपुर के नामकरण का आधार माना जाना अनुचित न होगा ।

संदर्भ-स्रोत

1 बुंदेलखण्ड का वृहद् इतिहास, डॉ काशी प्रसाद त्रिपाठी

2 प्राचीन भारतीय बौद्ध संस्कृति, डॉ राहुल शुक्ल

3 राजा श्री ललितादित्यः सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।
प्रादेशिकेश्वरस्रष्टुर्विधेर्बुद्धेरगोचरः ।। राजतरंगिणी 4 - 126

4 ललितपुर जनपद स्वर्ण जयंती स्मारिका '98 : 'हमारा ललितपुर'- संतोष शर्मा, पृ0 3

5 Jhansi District Gazetteer 1965, Chapter XIX, Place of Interest, p.351

- 'मानस मधुप', 'साहित्यायुर्वेद रत्न', ग्राम छिल्ला (बानपुर) जनपद : ललितपुर

संदर्भ : अट्ठारह सौ सत्तावन

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बुंदेलखण्ड का योगदान

– कैलाश मड़बैया[11]

गणराज्य बनने के पूर्व भारत आंचलिक खण्डों में विभाजित था। इससे इसकी आज़ादी का पूर्ण बिंब आंचलिक योग से ही बनता है। बुंदेलखण्ड ऐसा ही एक विशिष्ट भूभाग है जो अपने शौर्य के लिए पंजाब की भांति, पुरातत्व के लिए राजस्थान की भांति तथा संस्कृति के लिए महाराष्ट्र की भांति ख्यात है। बुंदेलखण्ड में आज़ादी की लड़ाई वस्तुतः 1857 से पूर्व 1842 में ही प्रारंभ हो चुकी थी। उत्तरी सागर के बुंदेला ठाकुर विशेष तौर से नाराहट के मधुकरशाह, हीरापुर के हृदयशाह और चंद्रपुर के जवाहर सिंह ने अंग्रेजों द्वारा लगाए मनमाने लगान का न केवल विरोध किया वरन् कथित कोर्ट की डिक्री वसूली करने आए ब्रिटिश सिपाहियों को मौत के घाट भी उतार दिया। आसपास के इलाकों में अंग्रेजों के विरोध में लोग खड़े होने लगे। मदनपुर के ढिल्लनशाह और नरसिंहपुर के जागीरदार आदि विरोध में उठ खड़े हुए और देवरी व चॉवरपाठा पर कब्जा कर लिया

उधर जैतपुर के राजा पारीछत ने भी क्षेत्रीय संगठन बनाकर विद्रोह कर दिया और कैथा की अंग्रेज-छावनी तक पर कब्जा कर लिया। बाद में अंग्रेजों ने सिपाही विद्रोह कहकर कुछ समय उपरांत इस विप्लव को दबा दिया और मधुकरशाह को सागर जेल के समक्ष फॉसी पर लटका दिया गया। पारीछत को पराजित अवश्य होना पड़ा, पर राजा पारीछत की बहादुरी के अनेक लोकगीत यहां आज भी गाए जाते हैं। 1842 का असफल विप्लव बुंदेलखण्डवासियों की आत्मा को नहीं कुचल सका और फिर 'विजय व्यपगमन', 1850 का धार्मिक अयोग्यता अधिनियम, 1856 का हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम आदि के अलावा पादरियों द्वारा हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन, लगान में कई गुना वृद्धि और ब्रिटेन के उत्पादों से भारतीय बाजारों के पटने से देशी हस्तशिल्प में निराशा, लघु उद्योगों का ह्रास आदि ऐसे विकट कारण उत्पन्न हुए कि जन-जन में अंग्रेजों का विरोध प्रारंभ हो गया। दूसरी ओर दत्तक पुत्र गोद न लेने-देने के कारण अंग्रेजों द्वारा राज्य हड़पने से राजे-महाराजे भी आग से उबल रहे थे। पेशवा बाजीराव द्वितीय को पदच्युत कर नानाजी को बिठूर में लक्ष्मीबाई को झांसी के किले से निकाल 27 फरवरी 1854 को झांसी हड़पने और चंदेरी का शासन अपने पिट्ठू ग्वालियर नरेश को सौंपने से मर्दनसिंह को बानपुर में विद्रोह के लिए आकण्ठ भर दिया था। 10 मई 1857 को मेरठ से आज़ादी की चिंगारी जैसे ही आग बनकर दिल्ली होते हुए 3 जून को झांसी में फैली कि यहां स्वराज्य के लिए आंदोलन भड़क उठा।

बुंदेलखण्ड में 'सत्तावनी क्रान्ति' तीन भागों में विभाजित हुई। एक - उत्तरी भाग; जिसमें झॉसी, बॉदा, हमीरपुर, जालौन आते थे और इनका शासन आगरा के उपराज्यपाल संभालते थे। दूसरा - दक्षिणी भाग; जिसमें सागर, जबलपुर, दमोह, बैतूल, होशंगाबाद, नरसिंहपुर, मण्डला, सिवनी आदि थे। यह अंचल 'सागर-नर्मदा टैरीटरी' के अंतर्गत प्रशासित होता था। तीसरा भाग इन दोनों के मध्य 'सेण्ट्रल इण्डिया' से संबद्ध छोटे-छोटे वे देशी 34 रियासती राज्यों से मिलकर बनता था। यह भाग नौगॉव के पोलिटिकल एजेण्ट के अधीन था और इनका 'एजेंट टू गवर्नर जनरल' इंदौर में रहता था।

सत्तावन की आग – मेरठ में सर्वप्रथम जब मंगल पाण्डे ने 29 मार्च 1857 को बैरकपुर में पहली गोली दागी। तत्समय क्रान्ति ने जन्म ले लिया था। इस दिन परेड मैदान में मंगल पाण्डे, ईश्वरी पाण्डे तथा शेख पलटू मौजूद थे। ये शेख पलटू बुंदेलखण्ड के हमीरपुर जिले के कम्हरिया गॉव के ही निवासी थे। यही क्रान्ति-बीज अंकुरित हुए 10 मई 1857 को। जहां से इतिहासकार सत्तावनी क्रान्ति का सूत्रपात हुआ मानते हैं। आज़ादी की आग लेकर दिल्ली से क्रांतिकारी झॉसी आए और लक्ष्मीबाई से सहयोग मांगा। दिल्ली में बहादुरशाह जफर की तरह झॉसी में भी लक्ष्मीबाई को पुनः राज्य संभालने को किले में पदस्थ किया गया। क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों की मारकाट शुरू कर दी झॉसी की डिप्टी कमिश्नर गार्डन इस युद्ध में मारा गया। 4 जून को कानपुर और 12-13 जून की रात्रि ललितपुर में क्रान्तिकारियों ने विप्लव किया। ललितपुर के खजाने और शस्त्रागार पर विद्राहियों ने कब्जा कर लिया निकटवर्ती बानपुर नरेश मर्दनसिंह ने कूटनीति से राष्ट्र धर्म और क्षत्रिय धर्म दोनों निभाए। बानपुर नरेश ने एक तरफ क्रान्तिकारियों को प्रोत्साहन दिया, देशी सिपाहियों को स्वराज का पाठ पढ़ाया और दूसरी ओर शरण में आए गोरों की महिलाओं और बच्चों को दूध-दवा की व्यवस्था की, जिससे अंग्रेजों की सहमति से ही ललितपुर का शासन प्रबंध उन्होंने अपने हाथों में ले लिया। उधर सागर में 1 जुलाई को शेख रमजान के नेतृत्व में 31वीं और 42वीं पलटन ने विद्रोह कर दिया। मर्दनसिंह और शाहगढ़ नरेश बखतबली में मंत्रणा हुई और 9 जुलाई 1857 को खुरई पर मर्दनसिंह एवं बखतबली ने बिनैका पर अपना कब्जा कर लिया। अंग्रेजों को जब वास्तविकता ज्ञात हुई तो 10 जुलाई को मर्दन सिंह से चंदेरी व ललितपुर का शासन छीनने का हुक्म जारी कर दिया। मर्दन और बखतबली ने 25 जुलाई

[11] लेखक का जन्म 25 जून 1944 को बानपुर में हुआ था। अखिल भारतीय बुन्देली साहित्य एवं सांस्कृतिक परिषद् भोपाल के संस्थापक एवं मध्य प्रदेश शासन के अवकाश प्राप्त उच्चाधिकारी श्री मड़बैया की अनेक बुन्देली रचनाएं हैं, जिनमें बुन्देलखण्ड का विस्मृत वैभव - बानपुर, बुन्देली के प्रतिनिधि कवि (संपादन), गद्य संकलन - बांके बोल बुंदेली के (संपादन), आंगन खिली जुन्दैया (काव्य), महक माटी की (संपादन), बुन्देलखण्ड के जैन तीर्थ, किसने न्योता है सूरज को, चेहरा समय का इत्यादि प्रमुख हैं। साहित्यिक सेवाएं देखते हुए आपको बुन्देल श्री, साहित्य शिरोमणि तथा 1999 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के 'सारस्वत वारिधि' सम्मान से अलंकृत किया गया है। – संपादक

1857 को सागर छावनी पर आक्रमण कर दिया, पर इसी समय ब्रिगेडियर सेज सेना सहित मदद को आ पहुँचा। इससे मर्दनसिंह को पीछे हटना पड़ा। अवसर पाकर पुनः 17 सितंबर 1857 को मर्दन ने सागर पर भारी आक्रमण कर दिया। इस बार कर्नल डैलेल की 42वीं आधुनिक सेना से टक्कर हुई। जैसे ही विशाल अंग्रेजी तोपों के कारण विद्रोहियों के पैर खिसके कि मर्दन ने सेना को पीछे हटाकर नरियावली पर मोर्चा साधा और अंग्रेजों के पीछा करते ही मर्दन ने गोरों को घेर कर तबाही मचा दी। गोरे काट डाले गए और कर्नल डैलेल मारा गया। मर्दन ने भोपाल भी कब्जे में कर लिया। दमोह में भी 52वीं सेना ने विद्रोह कर दिया।

जबलपुर में मण्डला की गौड़ रानी दुर्गावती के वंशज शंकरशाह स्वराज का आंदोलन तेज कर रहे थे कि उनकी रेजीमेण्ट सिपाहियों के साथ विद्रोह की योजना संबंधी जानकारी जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर को लग गई। 14 सितंबर को शंकरशाह के घर पर अंग्रेजों ने हमला बोल दिया, इससे 52वीं सेना के सिपाहियों में बगावत हो गई। पर 15 सितंबर को ही शंकरशाह को बेटे रघुनाथशाह सहित तोप के मुंह से बांधकर फांसी दे दी गई। अक्टूबर '57 में होशंगाबाद, मण्डला व नर्मदा के दक्षिणी भाग में भी विद्रोह फैल गया था। इधर शंकरशाह की फांसी से विजयराघवगढ़ के ठाकुर सरयूप्रसाद ने विद्रोह कर दिया और सशस्त्र व्यक्तियों के विशाल समूह ने जबलपुर-मिर्ज़ापुर मार्ग पर कब्जा कर लिया। 6 वर्ष तक सरयू प्रसाद ने विद्रोह की पताका फहराई। तब जाकर 1864 में अंग्रेज उन्हें गिरफ्तार कर जबलपुर जेल पहुंचा सके।

उत्तरी बुंदेलखण्ड में राजा/जागीरदारों के साथ जनभागीदारी प्रमुख रही। बाँदा के बाँदा के नवाबअली बहादुर द्वितीय, तिरौहा के माधवराव, जालौन की रानी ताई बाई तथा बिलायां के बरजोर सिंह तो थे ही; पर 14 जून '57 के बाँदा छावनी के सैनिक विद्रोह के पूर्व; 8 जून '57 को सैकड़ों लोगों द्वारा मऊ तहसील पर हुए क्रान्तिकारी आन्दोलन को कैसे विस्मृत किया जा सकता है? हमीरपुर के अंग्रेज अधिकारी लॉयड और ग्रॉड को गंगा, चैतुआ, कलुआ अहीर ने मौत के घाट उतारने के बाद उन्हें दी गई सजा को भी आज़ादी की कुर्बानी मानने से क्या इंकार किया जा सकता है? कालपी के महमूदपुरा वालों ने 3 अंग्रेजों को 2 औरतों सहित मार डाला था, जिस पर उन्हें 10 मार्च 1858 को आजीवन कारावास की सजा हुई। बिलायां के बरजोर सिंह ने जनसहयोग से अंग्रेजों की 'सप्लाई लाइन' काटकर बड़ा काम किया था। ककरबई के छत्तरसिंह बुंदेला ने 1860 तक अंग्रेजों की नाक में दम किया, जिससे उसे 23 जनवरी 1861 को मऊरानीपुर में फांसी पर लटकाया गया। लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त झांसी का पूरा गढ़बई गॉव क्रान्तिकारी हो गया था, जिससे मेजर मीड़ ने सारे गॉव को तोपों से उड़वा दिया था। ऐसी अनेक घटनाएं अंग्रेजी गजटों/फाइलों में दबी पड़ी हैं, जिन्हें अनावृत करने की आवश्यकता है।

इन छोटे किन्तु महत्वपूर्ण विद्रोहों का परिणाम यह हुआ कि अधिकांश बुंदेलखण्ड किसी न किसी विद्रोही के कब्जे में आ गया। पर हम यहां अपनों के धोखों के शिकार हुए। ओरछा महारानी लड़ई सरकार झाँसी में लक्ष्मीबाई को नहीं चाहती थी। अतः उन्होंने अपने सेनापति नत्थेखां से इसी बीच झाँसी पर आक्रमण करा दिया। रानी लक्ष्मीबाई को यद्यपि 22 अक्टूबर तक चले इस युद्ध में विजय मिली, पर अधकुचले नाग की तरह खार खाए नत्थे खां इंदौर जाकर सर ह्यूरोज से जा मिला इससे बुंदेलखण्ड के भेद जानकर वह एक विशाल सुसज्जित सेना ले, बुंदेलखण्ड की 'सत्तावनी क्रान्ति' को कुचलने के लिए 6 जनवरी '58 को इंदौर से चल पड़ा।

1857 की क्रान्ति का दमन - सत्तावन की क्रान्ति के बदले में अंग्रेजों द्वारा किए गये विनाश का जितना दुःखद हाल बुंदेलखण्ड ने भोगा, उतना अन्य किसी अंचल ने नहीं। 1858 में सर ह्यूरोज इंदौर से चलकर विशाल सेना सहित बुंदेलखंड में प्रथम बार 24 जनवरी '58 को राहतगढ़ में बुंदेलियों से टकराया। तब क्रान्तिकारियों के हौसले देखते ही बनते थे, पर लड़ाई तो आंधी और तूफान की थी। अतः विद्रोही किले में अंततः घिर गए। लेकिन मर्दनसिंह ने योजनाबद्ध तरीके से पीछे से अंग्रेजी सेना पर यकायक इतना जोरदार आक्रमण किया कि ब्रिटिश सेना बिखर गई और क्रांतिकारी सुरक्षित निकल सके। इस युद्ध में किले पर रहे आमापानी के एक नवाब का सिर काटकर अंग्रेजों ने मुख्य द्वार पर लटकवा दिया और अवशेष सैनिकों के सिर काटकर पेड़ों पर टांग दिए गए। यह निर्दयता की चरम सीमा थी। इस पर मर्दनसिंह ने भी अपने सैनिकों को अंग्रेजों को देखते ही मार डालने के आदेश दे दिए। हालांकि बरोदिया, गढ़ाकोटा आदि में छुटपुट अवरोध पार कर ह्यूरोज सागर जा पहुंचा।

ह्यूरोज का उद्देश्य अब मार्ग के विद्रोहियों को जीतते हुए झाँसी विजय का था दूसरी ओर मर्दनसिंह और बखतबली के नेतृत्व में क्रान्तिकारी अंग्रेजों को झाँसी न पहुंचने देने के लिए कटिबद्ध थे। मर्दन आदि ने संगठित हो मार्ग की नाराहट घाटी पर अंग्रेजों को तबाह करने की योजना बनाई, पर ह्यूरोज ने मदनपुर की घाटी के दूसरे रास्ते से झाँसी जाना तय किया। मर्दनसिंह ने यह जान मदनपुर के घाट पर लौटना चाहा तो अंग्रेजों ने मर्दन के एक कामदार से यह प्रचारित कराया कि ह्यूरोज तो नाराहट घाटी से ही जा रहा है। मर्दन पुनः नाराहट घाटी लौटे, लेकिन अंग्रेज छल से मदनपुर की घाटी पर बखतबली की छोटी सेना से निपटते हुए झाँसी की ओर बढ़ गए और मर्दनसिंह की चाह अधूरी ही रही आई। यह एक भारी ऐतिहासिक अवसर की चूक थी। ह्यूरोज की सेना मड़ावरा, मदनपुर आदि मार्ग के किले व गढ़ियां जीतते हुए बानपुर पहुंची और मर्दनसिंह की अनुपस्थिति में 10 मार्च 1858 को किला ध्वस्त किया। राज्य में मारकाट कर बानपुर जीतती हुई गोरों की सेना तालबेहट, चंदेरी आदि पर कब्जा कर, सुरक्षित झाँसी के निकट ऐतिहासिक विजय को जा पहुंची। 23 मार्च 1858 को उसने झाँसी के किले को घेर लिया। दोनों ओर से तोपें गरज उठीं। रावसाहब ने खबर लगते ही तात्याटोपे के नेतृत्व में एक बड़ी सेना लक्ष्मीबाई की मदद को झाँसी भेजी। अंग्रेजी सेना पर किले के अंदर से

लक्ष्मीबाई के प्रहार और बाहर से तात्याटोपे की तोपें आक्रमण करने लगीं। ह्यूरोज परेशान हो उठा, पर रानी के कुछ गद्दार सरदारों की सलाह के कारण, अंदर-बाहर की सेनाओं का समन्वय दो दिनों तक न हो सकने के कारण तात्या की सेना के पैर उखड़ने लगे और उन्हें वापस लौटना पड़ा। रानी की स्त्री सेना आदि सभी जोशो-खरोश से युद्ध कर रहे थे, पर एक रात्रि ह्यूरोज ने झाँसी के एक सेनानायक दूल्हासिंह परदेशी को अपनी ओर मिला लिया। दूल्हासिंह ने 'नगरगेट' के पिछले दरवाजे को खोल दिया, जिससे अंग्रेजी सेना शहर में प्रवेश कर गई। बस यही एक धोखे का क्षण झाँसी की पराजय के लिए निर्णायक सिद्ध हुआ। पेशवा, तात्याटोपे, लक्ष्मीबाई, मर्दनसिंह व बखतबली आदि ने भांति-भांति से अनेक युद्ध झाँसी बचाने के लिए अंग्रेजों से लड़े। कालपी और ग्वालियर के युद्ध इतिहास के स्मरणीय अध्याय हैं। वीरांगना लक्ष्मीबाई ने रणबांकुरे मर्दों की तरह अभूतपूर्व युद्ध लड़ा, पर अंततः 18 जून 1858 को महारानी वीरगति को प्राप्त हुईं। उधर मर्दनसिंह व बखतबली भी मुरार के रास्ते में गिरफ्तार कर लिए गए।

इस तरह अंग्रेजों ने अपनी आधुनिक सैनिक शक्ति और 'फूट डालो और राज करो' की चालों पर 1857 की क्रान्ति को बुंदेलखण्ड में निर्दयतापूर्वक दबा दिया। पर यह ऐसी असफलता थी, जो अनेक सफलताओं से ज्यादा महत्वपूर्ण थी; क्योंकि 1947 में भारत को प्राप्त आज़ादी के लिए इन्हीं कुर्बानियों ने नींव का कार्य किया।

- मड़बैया सदन, 75 चित्रगुप्त नगर कोटरा,
भोपाल (म0प्र0) पिन-462003

बुन्देली लोक कथाएं : रूढ़ियां और उद्देश्य

- डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी[12]

बुन्देली लोक साहित्य में किसा (किस्सा), गाथाएं, गीत, अहाने, टऊका या टहूका, पटतरें, बुझउअल पहेलियां, अटका, लोकोक्तियां और मुहावरों की गद्य विधाएं पायी जाती हैं, परन्तु अधिक समय तक जमकर मनोरंजन करने के लिए दो ही विधाओं का उपयोग होता है और दूसरा किसा कहना-सुनना ।

बरसात की भीगती रातों में घंटे दो घंटे के मनोरंजन के लिए किसी की छपरी में बैठकर झेला, ढोल, मजीरों के साथ गाथाओं का गायन किया जाता है । इन गाथाओं में अधिकांश आल्हा की कथाएं गाई जाती हैं । इनके अतिरिक्त ढोला-मारू, ढोला-पण्डवा, धनसींग को पंवारौ आदि गाए जाते हैं । प्रायः लोग अपने यहां ऐसी बैठकें जमाने के लिए समाजियों (गाथा गायन में कुशल लोगों) को आमंत्रित करते हैं । सुनने के लिए आस-पास बुलउवा दिया जाता है । बुलाने वाला चिलम-तमाखू का इंतजाम भी करता है ।

इसी तरह जाड़े की ठण्डी रातों में गैया-गोसली और बियारी से फुरसत होकर किसी कोंड़े (अलाव) के पास बैठकर घंटे दो घंटे मनोरंजन करने का किसा कहना-सुनना सबसे सर्वसुलभ साधन था । लोककथाओं का उद्देश्य लोकरंजन के साथ-साथ लोकशिक्षण भी होता था । यद्यपि इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा रात-दिन की जाने वाली मनोरंजन की वर्षा की बाढ़ में जन-मनोरंजन के लगभग सभी स्थानीय साधन बह गए हैं । तो भी कभी-कभार गांव के किसी कोंड़े या अथाई (चौपाल) पर किसा कही भी जाती हैं तो उनके पहले कहे जाने वाले अटपटे मुहावरे, जिन्हें 'साखी' लगाना कहा जाता है, अब लगभग छूट गए हैं या बहुत कम प्रयुक्त होते हैं । कहानी कहने के पहले निम्नलिखित मुहावरों या साखियों का प्रयोग किया जाता था -

''किसा सी झूंठी, बातन सी मींठी, घरी-घरी के बिसराम जाने सीताराम (कहीं-कहीं 'बोलो सीताराम' भी सुना गया है) सक्कर कौ घोड़ा, सकलपारे की लगाम, छोड़ दो दरयाव में, चलो जाय छमा-छम-छमा-छम । ई पार घोड़ा ऊ पार घांस, न घांस घोड़ा खों खाय, न घोड़ा घांस खाय । इतने के बीच में दो लगाईं घींच में, तौऊ न आए रीत में सो धर कड़ोरे कीच में, सोई झट्टइं आ गए रीत में। हंसिया सी सूदी, तकुआ सी टेड़ी, पाला (पहला, रुई) सौ करौं, पथरा सौ कौंरो । जरिया कौ कांटौ अठारा हांत लांचौ, आदौ छिरिया ने चर लव, आदे पै बसे तीन गांव । एक ऊजर, एक खूजर, एक में मान्सई नइंयां । जी में मान्सई नइंयां, ऊ पै बसे तीन कुमार; एक डूंठा, एक लूला, एक के हांतई नइंयां । जी के हांतई नइंयां ऊ ने बनाई तीन हंड़ियां एक के ओंगू, एक बोंगू, एक के ओंठई नइंयां, जी में ओंठइ नइंयां, ऊ में चुराए तीन चांउर । एक अच्चौ, एक कच्चौ, एक पै आंचइनइयां । जी में न्योते तीन बामन; एक अफरौ, एक डफरौ, एक खों भूंकई नइंयां । पोंनी कौ डंका, बतेसा कौ नगाड़ौ, जब बजे जब किड़ी-धुम-किड़ी-धुम । जो इन बातन खौं झूंटी माने तौ राज खों डांड़ औ जात खों रोटी देनें परै । कहता तो कहता, सुनता खों सावधान चाहिए । न कहवे बारे खों दोस, न सुनवे बारे खों दोस । दोस तौ ऊ कौ जी ने किसा रच कें खड़ी करी ।''

ये मुहावरे (साखियां) सुनने में भले ही अटपटे लगते हैं, परंतु इनकी उपयोगिता थी । लोककथाओं में पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधे मनुष्य के रूप में बोलते हैं । कुछ सिद्धहस्त किस्सागो तो पात्रों में अनुकूल भाव और परिस्थितियों का ऐसा सजीव और हृदयग्राही चित्र उपस्थित करते थे कि उनके बिंब मन में उतर आते थे । बीच-बीच में गीतों के बोल भी गाए जाते थे । इससे कहानी और भी

---

[12] 1. 11 अगस्त 1930 को बानपुर में जन्मे डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी को प्यार और आदर के साथ हम सब 'दद्दा' कहते हैं । 'बुन्देली की शब्द संपदा' विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि से विभूषित दद्दा की अमर कृतियां हैं-, बुन्देली शब्द कोश एवं बुन्देली लोक साहित्य में लोकोक्तियां एवं मुहावरे । श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् टीकमगढ़ द्वारा उनके जन्म की हीरक जयन्ती पर उनके कृतित्व का सम्मान करते हुए 'अमृत महोत्सव' मनाया गया था । इस अवसर पर इस पुस्तक के प्रधान संपादक के संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में समर्पित अभिनंदन को यहां अपने पाठकों को उसका संस्कृत पाठ देना अनुपयुक्त न होगा - संपादक

उद्देश्य उद्देश प्रियंभ विष्णुः गुणस्य सागर हरिविष्णु को वा ।
क्लिशित्-क्लिष्टः क्लिश-क्लान्ति कैलास केलिक खलु एव दद्दा ।। 1 ।।
प्रणये-प्रणोदः प्रतत-प्रणेता, प्रवेक विंध्येली शब्दकोशः ।
प्रशत्वरी हित साहित्य कूले विभाति केलिक केलास दद्दा ।। 2 ।।
आलुंचनं मुंचन आलभन् यो करोति आकुंचन शंक पंकः ।
यो पंचसप्तति बसंत दृष्टा स एव खल्वेव वरेण्य दद्दा ।। 3 ।।
आकल्प शब्दं यो आकषिकमिव आलंब मादृश कैंकर्य कांक्षी ।
विभूषिता डाक्टर इत्युपाधिः 'मधुप'स्य इष्टो खलु एव दद्दा ।। 4 ।।
ललित गति विलासः वल्गु हासः सदैव जिष्णुश्च धिष्णुश्च रूपः ।
साहित्य सिंधुः शब्दार्णव स्यात् अभिनंदनं वंदनं एष दद्दा ।। 5 ।।

मनोरंजक और प्रभावपूर्ण हो जाती थी । ऐसी स्थिति में कोई बालक, किशोर या अपरिपक्व बुद्धि का युवक गुलबकावली, स्वर्ण कमल या गड़े हुए खजाने की खोज में न निकल पड़े या कहानी की कल्पना-सुन्दरियों के मोह में फंसकर घर-थर की परवाह छोड़कर न भटकने लगे इसलिए कहानी कहने के पहले ही इन मुहावरों को कह दिया जाता था, जिनमें स्पष्ट संकेत रहता था कि कहानी झूठ-सच के घालमेल की ही रचना है, किन्तु पहले से ही झूठ मानकर चलोगे तो कहानी का रस ही जाता रहेगा । इसलिए यह भी कह दिया जाता था कि जो इन बातन खों झूंटी मानै तो राज खों डांड़, जात खों रोटी देनें परै । कहानी कहने के पूर्व कितनी साखियां लगाई गई हैं, यह कहानी कहने वाले की स्मरण शक्ति या कहानी कहने के कौशल पर निर्भर करता था । इन साखियों का सुनना भी मनोरंजक और हास्य का उद्रेक करता था, क्योंकि इनमें जबरदस्त विसंगतियां और उलटबांसियां होती थीं । इनका एक उद्देश्य कहानी कहने का माहौल बनाना और श्रोताओं की उत्सुकता को तीव्र करना भी हो सकता था ।

साखियों को कहने के बाद कहानी कहने का प्रारंभ 'ऐसें ऐसें एक राजा हते आदि शब्दों से किया जाता था । ये शब्द भी महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य हैं, इनमें इस बात का स्पष्ट संकेत है कि यह कहानी मानवीय जीवन की तरह होने-अनहोने तंतुओं से बुनी हुई है । मानवीय मूल्यों और नैतिकता की शिक्षा का अंतःसूत्र कहानी के संपूर्ण घटनाक्रम को अपने आप में पिरोए रहता था साखियों के अभाव में ''ऐसें ऐसें..'' आदि शब्द निरुद्देश्य और निरर्थक रूढ़ि बन गए हैं । कहानी समाप्त होने पर कहने के भी कुछ मुहावरे थे । जैसे ''बाड़ई ने बनाई टिकटी, हमाई किसा हती सो निपटी'' या ''अब हमाई किसा लेत बिसराम, सब सुनबे बारन खों सीताराम'' आदि । इन कहानियों को दिन में कहना निषिद्ध माना जाता था । ऐसी मान्यता थी कि दिन में किसा कहने से मामा गैल (रास्ता) भूल जाएगा । इस मान्यता का स्पष्ट संकेत है कि फुरसत के समय ही मनोरंजन करना चाहिए । काम-काज के समय मनोरंजन में समय गंवाने के परिणाम हानिकारक हो सकते हैं ।

बुन्देली लोक साहित्य में विषय-वस्तु, रूढ़ियों और उद्देश्यों की दृष्टि से मुख्यतः चार प्रकार की कहानियां पाई जाती हैं । एक लोकरंजन के लिए; इनमें प्रायः लोक-शिक्षा की अंतःसलिला प्रवाहित होती रहती है, जो मानवीय रागों को नीति के जल से पखारकर परिमार्जित करती हुई चलती है । साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि यही कहानियां श्रेष्ठ होती हैं । वाचिक परंपरा के कारण इनका स्वरूप सुस्थिर और समान रूप से सुन्दर नहीं रह पाता है । कहानी कहने वाले की बौद्धिक क्षमता, भाषाज्ञान, कल्पनाशीलता, संवेदनशीलता और भावुकता आदि गुणों के कारण कहानी का साहित्यिक सौन्दर्य और श्रोताओं का आनंद घटता-बढ़ता रहता है । कहानी के पूर्व साखियों का प्रयोग और अंत में समापन वाक्यों का प्रयोग इसी प्रकार की कहानियों के साथ होता है ।

बुन्देली लोक कथाओं का दूसरा रूप तीज-त्यौहारों के अवसरों पर कही जाने वाली देवी-देवताओं से संबंधित कहानियां हैं; जैसे दसारानी, हरछट (हल षष्ठी), रिक पांचें (ऋषि पंचमी), मां लच्छमी (महालक्ष्मी), भइयादोज, करवा चौथ, बरा बरसात (बट सावित्री), संतान सातें, गड़ा लेनी आठें, सरमन द्वासती (श्रवण द्वादशी), पट पूजन, बाराजीत (द्वादश आदित्य), पाटौ भरवौ, समाई और रक्कस आदि के व्रत या पूजन के समय कही जाने वाली कहानियां । इन कहानियों में देवता तो पौराणिक होते हैं किन्तु व्रत कथा में वर्णित उनका चरित्र लोक-प्रणीत होता है । किसी धर्म-ग्रंथ में उसे खोजना व्यर्थ है । यहां यह प्रश्न विचारणीय है कि ये कहानियां पौराणिक आख्यानों के लौकिक संस्करण हैं या पौराणिक आख्यानों की आधार भूमि? शायद दोनों के पारस्परिक संघातों ने एक दूसरे को प्रभावित किया हो ।

इन कहानियों को कहने के पूर्व साखियां नहीं लगाई जाती हैं । इनके अंत में कहने और सुनने वाले सभी लोग संबंधित देवी-देवता को प्रणाम करते हुए कहते हैं । ''हे महादे बाबा, हे मइया (जैसा प्रसंग हो) जैसे अमुक (कथा नायक या नायिका) के दिन फेरे ऐसई सबके फेरियौ, जैसे अमुक पै कृपा करी ऐसई सब पै करियौ ।'' इस प्रकार की लोक-कथाएं सुखांत होती हैं । उनका उद्देश्य देवी-देवताओं के प्रति लोक-आस्था तथा नैतिक मूल्यों को समाज में सतत प्रवाही बनाए रखना है इनके समापन वाक्यों में लोक-मंगल की कामना स्पष्ट लक्षित होती है ।

तीसरी कहानियां प्राकृतिक क्रिया-कलापों के प्रति जिज्ञासा के समाधान के लिए हैं; जैसे सूर्य के ताप, प्रखरता और गति की निरंतरता तथा चंद्रमा की शीतलता, सुन्दरता तथा उसके उदय के पाक्षिक अंतराल को लेकर रची गई यह लोक कथा ''सूरज और चंदा दो सगे भाई थे । एक दिन उन्हें कहीं निमंत्रण में भोजन करने जाना था । उनकी मां ने कहा कि कुछ मि-ठान्न और पकवान मेरे लिए भी लेते आना । सूरज ने मना कर दिया । चंदा ने स्वीकार कर लिया । इस पर मां ने सूरज को शाप दे दिया कि ''जरते जइयो, बरते अइयो, चेंन कभउं न पइयो'' तथा चंदा को वरदान दिया कि ''सीतल रइयो, सीतल करियो, सदा चेन सें रइयो'' ।

चौथे प्रकार की लोककथाएं व्याख्यावादी हैं । इनमें सामाजिक विधानों, रीति-रिवाजों, वस्तुओं के गुणों-अवगुणों आदि की कहानी के माध्यम से लौकिक व्याख्या होती है; जैसे लहसुन के गुणों और इलाहाबाद के अमरूदों के मधुर स्वाद के कारणों को प्रतिपादित करने के लिए कहा जाता है कि जब समुद्र मंथन में भगवान धन्वंतरि अमृत-कलश हाथ में लेकर निकले तो उन्होंने वह देवताओं को दे दिया । यह देखकर दानव उसे छीनने को झपटे । इस छीना-झपटी में कलश से छलककर कुछ बूंदें धरती पर आ गिरीं । कलश जब देवताओं के हाथ में था, उस समय जो बूंदें छलकीं उनमें देवताओं के स्वभाव का माधुर्य सम्मिलित हो गया और उनसे इलाहाबाद में मधुर स्वादवाले और गुणकारी अमरूद पैदा हो गए तथा कलश जब दानवों के हाथ में था उस समय जो बूंदें छलकीं उनमें दानवों

के स्वभाव की तीक्ष्णता शामिल हो गई और धरती पर गिरकर उनसे लहसुन पैदा हो गया । यद्यपि दोनों के स्वाद और गंध में विपरीत अंतर है तो भी दोनों में अमृत के गुण हैं ।

उपर्युक्त अंतिम दोनों प्रकार की लोक कथाओं में साहित्यिक सौन्दर्य की कमी रहती है ।

पांचवां प्रकार उन लघु लोक कथाओं का माना जा सकता है, जो किसी मुहावरे या लोकोक्ति की पृष्ठभूमि में अथवा उनकी व्याख्या करने के लिए गढीं जाती हैं । अहाने और टऊका भी कुछ इसी कोटि में आते हैं । जैसे एक मुहावरा है 'चमर सोंसन' जब कभी व्यक्ति ऐसी स्थिति में फंस जाता है कि होड़ा-हिचकी के कारण काम ही पूरा नहीं हो पाता है और समय अलग बर्बाद होता है इस मुहावरे का टहूका यह है -

'एक पण्डित जी और एक चमार एक ही समय एक किनारे शौच को बैठे । दोनों एक ही साथ पानी लेने को उठे । वे दोनों एक दूसरे को देख रहे थे । चमार देर तक यह सोचकर सोंसता (पानी लेता) रहा कि अगर मैं पहले उठता हूं तो पंडित सोचेगा कि चमार बहुत गंदे होते हैं । दो चुल्लू पानी लेकर उठ जाते हैं । पंडित जी भी यह सोचकर देर तक सोंसते रहे कि यदि मैं चमार से पहले उठूंगा तो वह सोचेगा कि पंडित ऊपर से तो बड़े साफ-सुथरे और पवित्र बने रहते हैं परंतु सोंसते हमसे भी कम हैं । काफी देर की होड़ के बाद पंडित जी पहले उठे और मन ही मन कहा कि अच्छे चमर सोंसन में फंसे ।' वास्तव में इस टहूका को जाने बिना इस मुहावरे का अर्थ भली-भांति व्यंजित नहीं होता है ।

इसी तरह एक लोकोक्ति है - ''पानी कौ धन पानी में, नाक छिनी बेईमानी में''। इसकी अंतर्कथा यह है कि एक दूध बेचने वाली ने दूध में पानी मिला-मिला कर बेचने से काफी धन इकट्ठा कर लिया । उस धन से उसने अपने लिए सोने की एक नथ बनवाई । बाजार से जब वह नथ पहन कर अपने गांव लौट रही थी तो उसे नथ पहने हुए अपने चेहरे की सुन्दरता देखने की इतनी उत्सुकता थी कि रास्ते में एक कुएं में झांककर अपना प्रतिबिंब देखने लगी । जब वह चेहरे को हिला-डुला कर नथ का दोलन देख रही थी, उसी समय एक पक्षी बगल से उड़कर उसकी नाक से टकराया । उसकी नथ पानी में गिर गई और नाक भी फट गई। वस्तुतः यह लघुकथा उक्त लोकोक्ति की व्याख्यात्मक प्रस्तुति है । इस प्रकार की लघुकथाओं को अहाने कहा जाता है

लघु लोककथाओं का एक प्रकार पटतरें हैं । ये तुलनामूलक लघुकथाएं होती हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य किसी प्रसंग पर समानांतर कथा गढ़कर कटाक्ष करना होता है। जैसे कुछ ही समय पहले बने अफसर से उसके स्वास्थ्य वर्द्धन के रहस्य के विषय में उसके एक मित्र ने पूछा । वह टालने की दृष्टि से ऐसा-वैसा कुछ उत्तर देने लगा कि तीसरे ने बात काटकर कहा कि 'एक बार मैंने डाक्टर से मोटे होने का उपाय पूछा तो उसने कहा तुम अफसर बन जाओ ।' इस तरह के चुटकुले कथा साहित्य में स्थापित विधा के रूप में नहीं है । इनके प्रयोग की न्यूनाधिकता व्यक्ति की वाक्पटुता और मस्तिष्क की उर्वरता पर निर्भर करती है।

कुछ कथा तत्वों की समानता के कारण 'पटतर' की यहां चर्चा हो गई है । प्रथम और द्वितीय वर्ग की लोककथाओं का ताना-बाना नैतिकता और नीति, आध्यात्मिकता और लोकमंगल की कामनाओं से बुना रहता है । इस कारण ये अधिकांश सुखान्त होती हैं । तृतीय वर्ग की अनेक कहानियां दुखान्त होती हैं । ऐसी कहानियों का आधार किसी पशु-पक्षी की बोली या अन्य कोई प्राकृतिक विशेषता होती है । जैसे एक पक्षी की आवाज़ कुछ इस तरह होती है जैसे वह 'तिल बऊं कै कंकड़' कहता हो। इसके आधार पर गढ़ी गई कथा यह है कि

एक किसान की जिबचटू (चटोरी) पत्नी ने बीज के लिए रखे हुए तिल चोरी से बेच खाए और कुठिया में कंकड़ भर दिए । किसान ने आषाढ़ में बोने के लिए तिल निकालने को कुठिया खोली तो उसमें से तिलों की बजाय कंकड़ निकले । पूछने पर पत्नी ने कहा मैं क्या जानूं, तिल कैसे कंकड़ हो गए ? बेबसी के इस आकस्मिक आघात को किसान सह न सका और यह कहते हुआ मर गया कि 'हाय! अब मै। क्या करूं ? तिल बऊं कै कंकड़ ?' आज भी पक्षी बनकर उसकी भटकती हुई आत्मा करुण स्वरों में रटती रहती है कि 'तिल बऊं कै कंकड़?'

बुन्देली लोक साहित्य में इस तरह की अनेक मार्मिक लोककथाएं प्रचलित थीं, परंतु परिस्थितियों के तीव्र परिवर्तन ओर कृषि में जहरीले रसायनों के प्रयोग तथा प्रदूषण की मार से पक्षियों की अनेक प्रजातियां या तो नष्ट हो गईं या दुर्लभ हो गई हैं । अब न तो तरह-तरह के पक्षी घर के मगरों (छप्पर का ऊपरी कोणाकार भाग) और मुड़ेरों पर बैठकर बोलते हैं और न ही; यदि पक्षी बोलें भी तो; सुनकर किसी को कल्पनाएं करने की फुरसत नहीं है ।

बुन्देली लोक साहित्य की विधाओं में लोक कथाओं और बुझौअल पहेलियों की सर्वाधिक क्षति हुई है । इन्हें रिकार्ड भी बहुत किया जा सका है । जबकि नैतिक और सामाजिक मूल्यों की बहुत बड़ी धरोहर लोक-कथा साहित्य में ही निहित थी।

- पुरानी नझाई, टीकमगढ

बुन्देली कहावतों में स्वास्थ्य विज्ञान

- मदन मोहन वैद्य[13]

भारत के ग्रामीणों में नीति, धर्म, सदाचार, स्वास्थ्य, ज्योतिष, कृषि, वर्षा आदि अनेक विषयों पर लोकोक्तियों अर्थात् कहावतों का अक्षय अनमोल भण्डार कण्ठों में मौखिक साहित्य के रूप में रक्षित चला आ रहा है । इन कहावतों की रचना अनुभव रूपी ज्ञान के आधार पर हुई होगी । जो भी विषय अनुभव से लाभदायक सिद्ध हुआ, उसे उन्होंने अपनी सीधी-सादी भाषा में तुकबंदी के सहारे बांध लिया । यह मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते सूत्र हैं । इनकी महत्ता इसी से स्पष्ट है कि इनमें वर्णित एक-एक तत्व सुवर्ण की भांति कसौटी पर कसने पर खरा उतरता है ।

कहावतें भारत के हर जनपद में प्रचलित हैं । कहावतें प्रकृति ज्ञान की भांति सार्वभौमिक हैं, फिर भी उन पर जनपद विशेष की बोली, रीति-रिवाज, संस्कार, परिस्थिति और जलवायु का प्रभाव पड़ता है । बुंदेलखण्ड एक प्राचीन जनपद (अंचल) है । यहां की कहावतों में हर तरह का अनुभवगम्य लोकोपयोगी ज्ञान भरा पड़ा है, जो मानव मात्र के लिए लाभदायक है और स्वास्थ्य संवर्द्धक प्रमाणित होगीं। स्वास्थ्य संबंधी कहावतों को यहां उदाहरण स्वरूप दिया जाता है -

भोजन और स्वास्थ्य

सावन ब्यारू जब तब कीजै । भादों बाको नाम न लीजै ।
कुंवार मास के दो पाख । जतन जतन जिय राख ।
आधे कातिक होय दिवारी । फिर मन मानी करो ब्यारी ।

सावन, भादों और कुंवार महीनों में वर्षा खूब होती है । पृथ्वी की उष्णता निकलने और परिश्रम न करने से मंदाग्नि हो जाती है । फलतः भोजन के भली प्रकार न पचने से तमाम रोगों और दोषों का जन्म होता है । इसी सिद्धांत को देखते हुए कहा गया है कि सावन मास में रात्रि में भोजन (ब्यालू) कभी-कभी करे किन्तु भादों मास में रात्रि भोजन का नाम ही न ले अर्थात् रात्रि भोजन बिल्कुल न करें । कुंवार के महीने को बड़ी सावधानी से बिना रात्रि भोजन के बिता दें । कार्तिक मास में दिवाली के बाद इच्छा पूर्ण रात्रि भोजन से कोई हानि नहीं होगी ।

अघने जीरो, फूसे चना, माओ मिसरी, फागुन धना ।
चैतै गुर बैसाखे तेल, जेठ महुआ, असाड़े बेर ।
सावन दूध उर भादों दही कुवांर करेला कातिक मई ।
जो इतनी नहीं माने कही मर है नई तौ परहै सई ।

उपर्युक्त कहावत में बताया गया है कि वर्ष के 12 महीनों कोई न कोई वस्तु हर माह में दोषकारक या कुपथ्य है । इनका सेवन स्वास्थ्य के लिए घातक-कुप्रभाव कारक है । अतः इनका त्याग उस विशिष्ट मास में कर देना चाहिए । अगहन (मार्गशीर्ष) में जीरा, पौष में चना, माघ में मिश्री, फाल्गुन में धना, चैत्र में गुड़, ज्येष्ठ में महुआ (मधुफूल), आषाढ़ में बेर (बद्रीफल), श्रावण में दूध, भाद्रपद में दही, आश्विन (कुंवार) में करेला और कार्तिक मास में मठा (मही) ग्रहण करना शरीर के लिए अत्यंत हानिकारक है । यदि कोई व्यक्ति इन महीनों में उपर्युक्त निषिद्ध वस्तुओं का सेवन करेगा तो मृत्यु भले ही न हो उसका बीमार पड़ना निश्चित है ।

इस कहावत के सृजनकर्ता का मत आयुर्वेद के सिद्धांत पर आधारित है । मार्गशीर्ष और पौष माह से हेमंत ऋतु का प्रभाव होता है, जिसके फलस्वरूप वात-पित्त कुपित हो जाता है । जीरा और चना शीतल होने से वात-पित्त को अधिक कुपित कर देते हैं । माघ और फाल्गुन में शिशिर ऋतु का प्रभाव रहता है। अतः मिश्री और धना वात और कफ को सबल बनाकर शरीर में रोग वृद्धि करते हैं। चैत्र और वैशाख में ऋतुराज बसंत का प्रभाव रहता है, इससे देह में कफ कुपित हो जाता है । गुड़ और तेल कफकारक हैं । इसके प्रयोग से इन महीनों में कफ वृद्धि मानव को रुग्ण बना देती है । ज्येष्ठ और आषाढ़ में ग्रीष्म का प्रभाव होता है, जो पित्त कफ को प्रबल करता है । महुआ और बद्रीफल पित्त-कफ के पोषक बनकर रोग वृद्धि में सहायक होते हैं । श्रावण और भाद्रपद वर्षा ऋतु के अधीन है। दूध और दही दोनों वातकारक है, अतः इनके सेवन से वात-व्याधि घेर लेती है । आश्विन और कार्तिक में शरद ऋतु का राज रहता है । यह पित्त कुपित कारक है, इसमें करेला और मठा ग्रहण करना हानिकारक है । अच्छे स्वास्थ्य के लिए इन माहों में वर्जित पदार्थों का त्याग ही लाभप्रद है ।

कुंवार करेला, चेत गुड़, भादों मूली खाय ।
पैसा जावें गांठ का, रोग ग्रस्त पड़ जाय ।।

कुंवार में करेला, चैत में गुड़ और भाद्रपद में मूली खाने वाले का पैसा तो नष्ट होगा ही, वह बीमार भी पड़ जाएगा । अतः यह वस्तुएं इन महीनों में नहीं खानी चाहिए ।

पहले ताप तलईन बसी ।

---

[13] संपादक 'हनुमत साधना' होरीपुरा, चिरगांव (झांसी)

खीरा देखें खिल खिल हंसी ।।
जो सुन पाओ फूट को नांव ।
दै रमतूला घेरो गांव ।।

वर्षा ऋतु में उपर्युक्त वस्तुओं का उपभोग ज्वर को आमंत्रित करता है । ज्वर वर्षा के पानी के रूप में पहले छोटे-छोटे गंदे तालाबों में छिपा रहता है । इस पानी में स्नान करने या यह पानी पीने से वह ज्वर शरीर में प्रवेश करता है । खीरा खाने से इसको और अधिक मौका मिलता है । एक प्रकार के बरसाती फल 'फूट' का सेवन करने से यह उन प्राणियों को गाजे-बाजे के साथ धर दबाता है ।

जाको मारा चाहिए बिन मारे बिन घाव ।
ताको यही बताइए भइया घुइंयां पूरी खाव ।।

यदि आप किसी की मृत्यु, उस पर बिना आक्रमण किए और बिना शारीरिक घाव पहुंचाए चाहते हैं, तो उस व्यक्ति को सलाह दीजिए 'हे भाई ! तू अरबी (घुइंयां) की सब्जी का सेवन पूड़ियों के साथ कर ।' तात्पर्य यह है कि अरबी और पूड़ी का सेवन इतना हानिकारक होता है कि इनको खाने वाला व्यक्ति रोगग्रस्त होकर स्वर्ग सिधार सकता है । स्वास्थ्य प्रेमियों को इनके एक साथ खाने से बचना चाहिए ।

गया मर्द जो खाए खटाई ।
गई नार जो खाय मिठाई ।।

खट्टी वस्तुएं खाने से धातु दौर्बल्य हो जाता है । इससे पुरुष का पौरुष नष्ट हो जाता है अतः बलवान बने रहने के लिए पुरुष को खट्टी वस्तुएं खाने से बचना चाहिए । मिठाई गरिष्ठ और सौन्दर्यनाशक होती है । साथ ही जिह्वा को चटोरपन इसके खाने से लग जाता है । अतः महिलाओं को मिष्ठान्न सेवन से यथाशक्ति बचना चाहिए ।

आंत भारी
तो माथ भारी ।

पेट में अपच होने से सिर दर्द होता है । मस्तिष्क दर्द से मुक्ति हेतु अपच, कब्ज आदि से बचना चाहिए ।

भोजन करके पड़ै उतान ।
आठ सांस ताको परमान ।
सोलह दाहिने बत्तीस बाएं ।
तब कल परे अन्न के खाएं ।

भोजन कर के आठ श्वास लेने के समय तक सीधे चित्त, सोलह श्वास लेने तक दाहिने करवट और बत्तीस श्वास लेने तक बाईं करवट लेटना चाहिए । यह क्रम पालन करने से भोजन ठीक से पच जाता है और मन को बड़ी शान्ति मिलती है ।

रहे निरोगी जो कम खाय ।
बिगरे काम न जो गम खाय ।

जो मनुष्य अपनी भूख से कम भोजन करता है, वह सदैव निरोगी रहता है । जो गमखोर होते हैं, उनकी सहनशीलता से काम नहीं बिगड़ता है ।

खाय के मूते सूते बाय ।
नाहक बैद बसावे गांव ।।

भोजन करने के बाद मूत्रत्याग कर लिया जाय और बायीं करवट सोने की आदत डाली जाय तो व्यक्ति स्वस्थ रहेगा ।

खाय कै पर रैये ।
मार कै भग जैये ।।

यदि स्वस्थ रहना है तो भोजन के बाद कुछ समय लेटे रहना आवश्यक है । जीवन रक्षा जरूरी है तो मारपीट करने के बाद भाग जाना चाहिए ।

ब्यारू कबहुं न छोड़िए बिन ब्यारू बल जाए ।
जो ब्यारू औगुन करे दिन में थोरो खाय ।।

रात्रिकालीन भोजन (ब्यालू) करना नहीं छोड़ना चाहिए । रात्रि भोजन न करने से बल का क्षय होता है । रात्रि भोजन से कोई विकार उत्पन्न होता हो तो दिन का भोजन कम कर दें । कम मात्रा में ही सही, रात को भोजन करते रहने की शक्ति बनी रहेगी ।

औषधि और स्वास्थ्य

गुड़, गूगर चूना औ राई ।
जासों खता नाश हो जाई ।।

फोड़ों पर गुड़, गूगल, चना और राई को पीसकर एकसार करके बांध दिया जाए तो फोड़ा या बैठ जाएगा या फूटकर ठीक हो जाएगा ।

निन्नें पानी जे पिएं हर्र भूंज नित खांय ।
दूध ब्यारू जे करें उन घर बैद न जाएं ।।

जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर बिना कुछ खाए-पिए पानी पीता है, प्रतिदिन दोपहर को भूंजी हुई हर्र का सेवन करता है और रात्रि को सिर्फ दूध पीकर रहता है; वह निरोगी रहता है ,उसे कभी वैद्य की आवश्यकता नहीं होगी ।

आंखों में हर्रै दांतों में नोंन भूखा राखे चीथा कौन ।
ताजा खाए बायां सोए ताके बैद पिछारी राए ।।

हर्र, बहेड़ा, आंवला (त्रिफला) को कूटकर थोड़ी मात्रा में मिट्टी के बर्तन में रात को भिगोकर सबेरे उसी के पानी से जो आंख धोता है । कपड़छन सेंधा नमक ओर सरसों का तेल मिलाकर नित्य जो दांत को साफ करता है; पेट के चौथाई भाग को खाली रखकर जो ताजा भोजन करता है, उसके पीछे वैद्य सदा रोता रहता है, अर्थात् वह व्यक्ति कभी रोगी नहीं होता ।

हर्र बहेड़ा आंवला घी सक्कर सों खाय ।
हाथी दाबे कांख में तीन पैंड़ लों जाय ।।

त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आंवला) का जो मनुष्य घी शक्कर के साथ सेवन करता है, वह इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह हाथी को बगल में दाबकर तीन कदम तक ले जा सकता है ।

आंखें बंधन ।
तापे लंघन ।।

आंखें आ जाने पर उन्हें बांधना चाहिए । ज्वर आने पर निराहार रहना चाहिए। इससे दोनों ठीक हो जाते हैं ।

जल और स्वास्थ्य

भुंसारे खटिया से उठिके पिए तुरत ही पानी ।
कबहूं घर में बैद न आवे बात सबई की जाने ।।

प्रातः पलंग त्यागकर रात का रखा हुआ पानी शीघ्र पेटभर पिए। इस जल के पीने से आंतें मल को शीघ्र छोड़ देती हैं। इस कारण अनेक व्याधियों का नाश होता है। मनुष्य स्वस्थ रहता है। उसके घर कभी वैद्य नहीं आता, यह बात सभी जानते हैं।

पानी पीजे छान के ।
गुरू कीजे जान के ।।

पानी सदैव छानकर पीने से उसमें पड़े हुए सभी दूषित तत्व पृथक हो जाते हैं। इससे व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक रहता है । गुरू ज्ञान का दाता होता है । सच्चा ज्ञान पाने के लिए गुरू
का परिचय पूर्ण रूप से जान लेना चाहिए ।

पहले पीवे जोगी ।
बीच में पीवे भोगी ।
पीछे पीवे रोगी ।

योगी जन भोजन के पूर्व पानी पी लेते हैं अर्थात् भोजन पूर्व पानी पीना बुद्धिमानी का कार्य है और स्वास्थ्य के लिए सर्वश्रेष्ठ है । भोगी गृहस्थ जन पानी भोजन के बीच में पीते हैं । यह पानी
पीना पूर्ण लाभकारी नहीं है, किंतु मध्यम होने से कुछ ठीक है । जो रोगी हैं या होना चाहते हैं, वे लोग ही पानी भोजन के बाद पीते हैं । यह स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर नहीं है ।

सावन बेला ।
माघ तबेला ।
जेठे पीजे ओक ।

सावन मास में हरएक को सिर्फ एक कटोरा पानी पीना चाहिए । माघ में एक तबेला (बड़ा बर्तन) भर पानी पीना चाहिए ज्येष्ठ मास में भर पेट पानी पीना ठीक है । आशय यह है कि सावन यानि वर्षा ऋतु में थोड़ा पानी, माघ अर्थात् बसंत ऋतु में कुछ अधिक पानी तथा ज्येष्ठ की ग्रीष्म ऋतु में अधिक मात्रा में पानी पीना लाभदायक है ।

यह है बुन्देली की कहावतों के कुछ स्वास्थ्य संबंधी रत्न । कहावतों का अनंत भण्डार भरा हुआ है हमारे जनपदीय ग्राम्य जनों के हृदयों में । यदि हमें निरोगी रहकर स्वास्थ्य सुख का लाभ उठाना है तो अपने-अपने जनपदों के ग्रामीण जनों में प्रचलित कहावतों का संग्रह कर उनके अनुभवों को जीवन में उतारना चाहिए । इससे हमें वे सूत्र मिलेंगे जो सहजता और सरलता से सुखी जीवन की राह दिखाएंगे।

बुंदेली गद्य

बुन्देलखण्ड कौ सांस्कृतिक सरूप

– डॉ दुर्गेश दीक्षित[14]

अपनौ बुन्देलखण्ड हर तरा सैं भरो परो उर हरो भरो रऔ है। कजन इयै भारतवर्ष कौ हिरदय-स्थल कई जाय तौ कौनऊ बेजां बात नईं हुइयै। ई धरनी कौ पानी इतनौ ताकतवर उर शक्ति दैबे वारौ है कै इतै के वीरन नें अपनी तलवारन के बल पै दुश्मनन के छक्के छुड़ा दये ते आला ऊदल कौर नॉव तौ सारे संसार में जाहर होइ गऔ तौ। बानपुर के राजा मर्दनसिंह खौं को नईं जानत। जिनकी हांकैं सुनकैं गोरा जरियंन छेवलियंन में दुकन लगत ते। और तौ और महारानी बाई साब लक्ष्मीबाई जू सैं उनकौ बैन भइया कौर रिस्तौ निभत रऔ। उन्नें पछारी पांव नईं धरो सुतंत्रता संग्राम में। समय-समय पै पत्र लिख-लिख कैं वे बाई साब खौं नेक सलाह देत रये। बुन्देली में लिखे गये उनके वे पत्र अपनें बुन्देलखण्ड की क़ीमती धरोहर हैं।

चंपतराय, छत्रसाल उर वीरसिंह के तलवारन के वार देख-देख कैं गोरा जंग छोड़ कैं भग जात ते। उनके डरन के मारैं कोनउं दुश्मन बुन्देलखण्ड की सीमा खौं पार नईं कर पाव। और तौ और वे अगल-बगल के जनपदन पै धावा बोलकैं अपनौ अधिकार जमाऊत रये। अपनें वीर बांकुरे छत्रसाल कौ जीतौ अबै-अबै नौ रीवां में बुन्देला दरवाजौ बनों है। उन्नें बघेलखण्ड नौ अपनी जीत को डंका बजाव तौ। इतै के हरे भरे जंगल, नदियां, नरवा, तला-तलइयां, कुआ-बावरी, पहर-पहरियां सबई सुहानें उर निराले हैं। जां देखौ जां सोबा कौ भण्डार भरो दिखा रऔ है। इतै की मड़ियां मंदिर किले उर गढ़ियन के कलसा देखकैं अचंभौ होंन लगत। इतै के महलन के मेहराव, कंगूरा उर उनके बारीक कटाव में बुन्देली कला निखर रई है।

मंदिरन उर महलन की भींटन पै बने चित्र लोगन कौ मन मोह लेत है। इतै कौ खाबौ पीबौ, रैबौ, पैरवौ, ओढ़वौ, सोसवौ-समजवौ सबई औरई तरा कौ है। इतै के तीज त्यौहार, समइया धरम-करम, आचार-विचार उर लोकमान्यताएं औरई तरा की हैं इतै के देई-देवता, इतै के तीरथ जादांतर नदियंन के संगम पै बने हैं। चित्रकूट, ओरछा, खजुराहौ, पन्ना, जटाशंकर, कुण्डेश्वर, देवगढ़, कालपी कौ व्यास मंदिर इतै पवित्तर तीरथ हैं। वनवास के समय भगवान रामई धरनी पै घूम-घूम कै ई धरनी खौं पुनीत करत रये। भगवान श्रीकृष्ण के फुफेरे भइया शिशुपाल की रजधानी चंदेरी ऐई बुन्देलखण्ड में है। गौतम की नार अहिल्या कौ उद्धार ऐई धरनी पै भओ तो। अठारा पुरान उर महाभारत के रचवे वारे महर्षि वेदव्यास कालपी में जमुना के टापू पै पैदा भये ते बिहारी, भूषन, गोरेलाल, केशवदास, ईसुरी उर गंगाधर व्यास की जा करम भूम है। आला-ऊदल की वीरता कौ जस गावे वारे कविवर 'जगनिक' ऐई भूम पै भये पजे ते।

ई धरनी पै भये पजे साहित्यकार उर कवि तौ ईकी सोबा पै हमेसई रीजे रये। मऊरानीपुरवासी पं0 घासीराम जू व्यास नें तौ इयै दुनियां भर सैं अलग मानकै लिखो है

''चित्रकूट, ओरछौ, कलिंजर उनाव तीर्थ
पन्नो, खजुराहो जहां कीर्ति झुकि झूमी है।
जमुन पहूज, सिंध, बेतवा, धसान, केन,
मंदाकिनी पयस्विनी प्रेम पाय घूमी है।
पंचम, नृसिंह राव चंपतराय, छत्रसाल
लाला हरदौल भाव चाव चित चूमी है।
अमर अनंदनीय, असुर निकंदनीय,
वंदनीय विश्व में बुन्देलखण्ड भूमी है।

इतै के कवि ईकी सोबा पै हमेसई न्यौछावर बने रये। घासीराम जू व्यास की तौ कनईं का है? उनकी नजर में तौर सारे संसार में इत्ती अच्छी भूम और कितउँ नइयां। जो ई धरनी पै एक दार आ जात वौ इतई कौ होकैं रै जात। ब्रजभूम पै भये पजे पं0 बनारसीदास जू चतुर्वेदी ई धरनी पै साढ़े चउदा बरस रैकें इयै समारबे सजाबे में लगे रये। पं0 जगदीश चतुर्वेदी, यशपाल जैन उर जैनेंद्र कुमार इतै ऐसे रमे कै वे इतई के होकैं रै गये। देश उर विदेश के बड़े-बड़े कवि उर साहित्यकार ई धरनी की धूरा खौं छान-छान कैं रतनन की खोज करत रये।

[14] 12 जून 1936 को कुण्डेश्वर में जन्मे डॉ दीक्षित बुन्देली लोकगाथाओं पर डी.लिट्. उपाधि से विभूषित हैं। आपने बुन्देली में विपुल साहित्य-सृजन किया है, इनमें हैं – बुन्देली काव्य, बलिदान (खण्ड काव्य), ऋतु संहार (बुन्देली काव्यानुवाद), गांधी गौरव, ज्ञान की गुरिया, गांव की गलियां, अध्यापको जागो, खुली किवरियां, तकी तकाईं गैलें, रंग-बिरंगी चिरइया, गवइयन के गांधी, बुंदेली का ठाठ (काव्य संग्रह), गल्लन बातें, रानी अवंती बाई कुण्डेश्वर में रहते हुए आप संप्रति लोकसाहित्य सृजन-संकलन रत हैं। – संपादक

कित्ती भाव भक्ति भरी है इतै के नर-नारियन में रानी गनेशकुंवरि उर पं0 हरिराम व्यास की भक्ति भावना सैं तौ पूरौ बुन्देलखण्ड धन्न हो गऔ है। इतै के लोकगीत, लोककथान, लोकगाथान उर लोकविश्वासन में बुन्देली संस्कृति की झांकी दिखाई दै रई है। इतै के व्रत उपसा उर परवन की कैऊ तरा की लोककथाएं हैं। जिनमें तीज त्योहार कौ महत्व, लोकमान्यताएं उर लोकविश्वास के दर्शन होत हैं। इतै के संस्कारन, परवन उर ऋतुवन के हजारन लोकगीत हैं। जिनमें इतै की लोककथन में परोपकार, लोकमंगल भावना, करुना, दया उर प्रेम के दर्शन होत हैं। लोककथन में परोपकार उर लोकमंगल की भावना भरी दिखात है। उनमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के भाव भरे दिखात रत। ईको परमान है कै हर लोककथा के अंत में कथाकार जा बात जरूर दुहरान लगत कै ''जैसे उनके दिन फिरे, ऊसई सबके दिन फेरियौ।'' अंत में जा बात जरूरई दुहराई जात ''कै राजा भये उर वे रानी भईं हमेसई सबके दिन एक से नई रत। कभउं ना कभउं तौ आदमी के दिन फिरतई हैं। जौ सब रती कौ फेर है''

इतै की हर लोककथा में कोनऊ ना कोनऊ भलो सौ संदेसौ दऔ जात। हर बुन्देली किसा-कानियां कौ अंत भलोई होत है। और तौ और कोऊ कजन मंदिर में दर्शन करबे जात तौ इतै की औरतें कन लगतीं हैं ''हे भगवान सबखौं खुशी राखियौ, पछाई कैं हमन पै किरपा करियौ सबके मौड़ा खुशी रयें फिर हमाये बच्चन पै पंजा राखें रइयौ।'' जा है हमाई बुन्देली संस्कृति।

इतै की लोकगाथाएं वीरता, भक्ति भावना, आदर्श उर सद्गुनन सैं भरी परी हैं। जगदेव कौ पमारौ, अमानसिंह कौ राछरौ, कारसदेव, नौरता, ढोला-मारू उर लाला हरदौल की लोककथाएं उर लोकगाथाएं बुन्देली संस्कृति की क़ीमती धरोहर हैं। राजा जगदेव तौ मां हिंगलाज के परम भक्त हते उन्नें अपनौं सिर काटकैं देवी जू के चरनन पै अर्पित कर दओ तो उर माताकी किरपा सैं उनके धड़ में सैं औरओ सिर पैदा हो गओ तो। जौ पमारौ नवरातन के अवसर पै गाव जात है। ''राजा जगत से मां भले हो माय।'' जौ पमारौ नोई दिना नो भजनया भाव भक्ति सैं गाऊत रत। भौतई भाव भक्ति कौ वातावरन रत इन नोंई रातन में। इन भजनन में सैं एक देखवे लाख हैं

''कैसे कैं दर्शन पाऊँरी। माई तोरी सकरी दुअरियां
संकरी दुअरियां तोरी ऊँची अटरियां। कैसे कैं...।
माई के दुआरैं इक बांझा पुकारे, देव लालन घर जाऊँरी। माई..।
माई के दुआरै इक अंधा पुकारे, देव नैना घर जाऊँरी। माई..।
माई के दुआरै इक कोढ़ी पुकारे, देव काया घर जाऊँरी। माई..।''

सांसउं कित्तौ नौनौ लगत इन नौरातन में। लाल हरदौल के त्याग उर तपस्या के कारन उनें इतै के गॉवन में देवता की घांई पूजो जात। इतै के हर गॉव में उनके चबूतरा उर मड़ियां बनी हैं। हरदौल की मड़िया के लिंगा जाए बिना कोंनऊ कौ ब्याव-काज पूरौ नईं मानो जात। इतै की औरतें लाला हरदौल कौ जस गा गाकैं हमेशई उनकौ नॉव अमर बनायें रतीं हैं। वे इतै के जन उर जनियंन के लाला हूते। औरतें गाउन लगती हैं -

''नजरिया के सामनें तुम हरदम लाला रइयौ।
जैसी लाला अबै निभाई। ऊसई सदा निबइयौ।
जे भइया भइया खौं मारें। उनपै गाज पर जइयौ।''

ऐसेइ इतै ओरछा के राजा मधुकरशाह की रानी गनेशकुंवरि की लोकगाथा भौतई जानी पैचानी है। वे भगवान राम खौं अयोध्या सैं ओरछा ल्याई तीं। उन्नें अपनी भक्ति भावना कौ परिचय सारे संसार के सामैं दओ तो। एक लोकगीत में जा बात कित्ती अच्छी तरा सैं कई गई है

''राजा राम खौं लै आइ गनेशबाई। धन्न पूरब की कमाई। ''

अमानसिंह के राछरे में राजा अमानसिंह की वीरता कौ बरनन करो गओ है। अकोड़ी के राज अमानसिंह लर-लर कैं सुर्ग सिधार गये ते। अबै-अबै नौ लोग एक ख्याल गा गाकैं उनकी खबर करत हैं -

''अरे, कां गये राजा अमान जिन खौ रो रई चिरइयां।''

इतै कौ त्याग, बलिदान, परोपकार, भक्ति-भावना, प्रेम उर वीरता लोक संस्कृति के सरूपई हैं संस्कारन, ऋतुवन, परवन उर त्योहारन के लोकगीतन की इतै कोनऊ कमी नइयां। जिनमें बुन्देली लोक संस्कृति की झांकी दिखा रई है। इतै कातक कौ मईना सबसैं जादां पुनीत मानों जात है। इतै कीं बैनें, बिटियां, बहुएं मईना भर कातक अस्नान करकैं बाल किसन की लालाएं गा गाकैं गोपियंन के रूप में चारई तरपै भक्ति भावना कौ प्रसार करत रतीं हैं। उनके मीठे-मीठे गीतन के सुर सैं गांवन की गलियां गूंजत रती हैं। ऊ बेरां उनन में कितनी जादां भक्ति भावना जागरित हो जात ? उनें अपनीं घर गिरस्ती की खबरई नईं रत। बड़े भुन्सरां कुकरा के बोल्तनई जौ सुर लोगन के कानन में गूंजन लगत -

''सखी री मैं तौ भई न बिरज की मोर।
बन में रैती बन फल खाती, बनई में करती किलोर।
उड़-उड़ पंख गिरें धरनी पै, बीनें जुगलकिशोर।
उन पंखन कौ मुकुट बनाकैं, बांधें जुगलकिशोर।

'चंद्रसखी' भज बालकृस्न छबि, चरन कमल चितचोर।''

इतै कैऊ तरा के कृस्न लीलन के गीत गाए जात हैं। एक कातक कौ गीत और देखबे लाख है -

''दईरा लैकैं आ जाऊं री बड़े भोर।
ना मानों कुनरी धर राखों, लाख टका कौ मोल।
ना मानों मटकी धर राखों, मुतियां जड़े अमोल।''

उर कभउं कभउं वे बाल किसन खौं पलना में झुला-झुला कैं गाउन लगती हैं-

''झुला दो माई स्याम परे पलना।
जो मोरे ललना कौ पलना झुलाबै, उयै गढ़ाऊं ककना।
काऊ गुजरिया की नजर लगी है, दुखी भये ललना।
राई-नोंन उतारें जसोदा, सुखी भये ललना।''

जा राई-नोंन उतारबे की प्रथा भौतई पुरानी है। इतै की बड़ी-बूढ़ी औरतें कन लगती हैं कै राई-नोंन उतारे सें बाल-बच्चन की नजर-डीठ दूर हो जात। बच्चन की मूंड़ पै हुन तीन दार राई उर नोंन घुमाकैं आगी में डार दओ जात। ईसैं बच्चन की नजर अपने-आप उतर जात। ऐसे कैऊ तरा के टोटका इतै बुन्देलखण्ड में चलत रत हैं। बाल-बच्चन के गरे में हा, चंदा-सूरज, बघनखा उर कितऊं हाती दांत पैराव जात। कितऊं डबुलिया आगी में लाल करकैं नजर उतारी जात। कितऊं चुरियन के टुकड़ा टोरकैं उर कितऊं छेवले के बिल्ला टोरकैं सगनौंटी सादी जात भरी खेप खौं सगुन उर रीती खेप खौं असगुन मानो जात। कजन बिलइया गैल काट जात तौ लोग लुगाई गैल में ठांढ़े होकैं रै जात। ऐसई करिया कौ गैल काटबौ खराब मानों जात। ऐसई एक कानात और कई जात कै ''गैल में मिलें काना, तौ लौटकर घर आना।'' ऐसई मंगलवार खौं कितऊं कौ जाबौ अच्छौ नई मानो जात। कन लगत कै ''मंगल गये न बाउरे, फिर घर लौट न आय।'' उर कउं-कउं मंगल के लानें जा सोऊ कई जात कै ''सवा पार मना लै माय, सोने तौल तुला दउं तोय।'' ऐसइ नये उन्ना पैरबे के काजैं एक कानात कई जात ''इतवा जरैं सोमा बरें मंगलवा पीरा करें। सुक्र सनीचर गैरे वार कपड़ा पैरो बारंबार।'' ऐसई बुन्देलखण्ड में छींक कौ विचार करो जात। कन लगत कै छींकत कोनऊ काम करो नई जात। सामैं की छींक खराब उर पीठ की छींक अच्छी मानी जात। ऐसई दांयनी उर डेरी छींक कौ अलग-अलग विचार मानों जात। ऐसे तमाम टोनुवा उर टोटका बुन्देलखण्ड में अबै-अबै नौ चल रये हैं। नौंरातन में भक्तें, कातक में कातक के गीत, दिवारी खौं दिवारी, सैरे उर ख्याल गाये जात हैं। फसल काटत में बिलवारी उर तीरथ-जात्रा करतन में लमटेरा, बम्बुलिया और बाबा के गीत गाये जात। फागुन में फागें उर दिवारी के दूसरे दिना चांचर खेलत में सैरे गाये जात। ई मौके पै रंग उर गुलाल की बौछारन के संगै खूब फागें उर ख्याल गाये जात। कछु ख्यालन की पंक्तियां देखबे लाख हैं -

1 ''जिन घालो गुलेल, बारी में डोंकिया बीद मरी रे।''
2 ''राजा चढ़ गये पहार, लैकैं दुनाली सेर मार गये।''

इतै कौ सबसैं प्यारौ लोकनांच 'राई' मानों जात। गांव भर के लोग-लुगाईं रात-रात भर जग-जग कैं ईकौ आनंद लेत रत। बेड़िनी कौ नांच उर तरा-तरा के स्वांग देख-देख कैं अच्छौ-खासौ मनोरंजन गांव के लोगन कौ होत। ढोलक, नगरिया के सुर सैं पूरौ कौ पूरौ गांव गूंज उठत।

फागुन में लोग पगलया-से जात उर ब्यावन में औरतें लाज-सरम छोड़कैं अपने मौ सें सामी सूदी बकन लगती हैं। ऐसई होरी पै लोगन के मौ पै लगाम नई होत। उल्टे सूदे कबीर उर ख्याल गा-गाकैं पूरे वातावरन खौं रसमय कर देत। औरतें ब्यावन में खूब खुलकैं गाउन लगती हैं -

''कुत्ता पाल लो समदी जजमान, कुत्ता पाल लो।
कुत्ता की पूंछ जैसें समदी की मूंछ, हत्ता फेर लो।
कुत्ता के कान जैसें मुहबे के पान, बीस चाब लो।
कुत्ता की खुरी जैसें मोंन दई पुरी, एक और लो।''

कैऊ तरा के भद्दे-भद्दे गीतन सैं खूब मनोरंजन बरतयन कौ होंन लगत। और तौ और लुगाइयंन खौं गारियन तक कौ सामान दओ जात।

इतै फाग के समइया पै भौतई आनंद मिलत रत। राम उर कृस्न कौ नांव लै-लै कै खूबई फागें गाई जात हैं। एक फाग सुनबे लाख है -

''रामा लला गोबिन्दा लला, जा होरी खेल गये रामा लला।''

राधा किसन की होरी के कैऊ ठौवा चित्र फागन में देखबे मिलत रत। ऐसई एक फाग कौ उदाहरन -

''हम पै रंगा ना डारौ सामरिया।
मैं तौ ऊसई अतर में भींजी लला। हम पै रंगा.
भर पिचकारी सम्मुख मारी, भींज गई पचरंग सारी लला। हम पै रंगा.

बुन्देलखण्ड में कैऊ तरा के गीतन की भरमार है। आज के समय में उनमें भौत मिलावट हो गई है। लोकगीतन कौ असली रूप तौ हिलबिलानई हो गओ। फिल्मी धुनन के मेल सैं कैऊ तरा के लोकगीत गाये जान लगे। देशराज पटैरिया उर निरंजन शर्मा जैसे लोकगीत गायक मंचन पै वाहवाही लूट कैं खूब रुपइया बटोरन लगे। जिनमें बुन्देली संस्कृति कौ नांवई-निशान नई दिखात। जो मन में आई सो मटक-मटक कैं मंचन पै गा दओ। बताव ई में लोक-संस्कृति कां धरी? एक लोकगीत गायक एक दार मंच पै गा रये ते -

''बने रइयौ जीजाजू तुमें कौल है
आज मंगौरन कौ डौल है।''

अब बताव ई में लोकगीत की आत्मा कां धरी? कउं-कउं जौ दादरौ सोऊ सुनबे मिलत रत -

''रेडीमेंटल की दिला दो सलवार
बनूंगी तोरी घरवाली।''

एक दार हमने जौ लोकगीत सोऊ सुनो तो -

''साइकिल कौ मिजाज स्याम छोरौ करो
अपनी टोपी उतार हिंडल पै धरो।''

जा है लोकगीतन की दुर्गति। अब सोसौ कै इनमें लोक-संस्कृति कां सैं आई? ऐसऊ पैरबे-ओढ़बे उर खाबे-पीबे में भौतई अंतर आ गओ। पैलउं तौ घूंघट के भीतरैं सोबा छिपी रत्ती अकेलैं आज की सोबा तौ बगरी-बगरी फिर रई सड़कन पै। पैलां तो -

''लाल गुलाबी अगरई कंचई धुतिया रंग-बिरंगी।
लगा कछोटा फेंटा कसकैं सबईं दिखा रईं चंगी। ''

उर आज की बाई हरें तौ पैंट-शर्ट पैर कैं लोगन की घाईं बार कटाकैं मोटर-साइकिल चला रई हैं। गाने-गुस्ते की तौ चरचई का करने है? आदे पेट सैं उन कौ ब्लाउज उन नंगे हात-पांव लयें लोगन की नाईं बमकत फिर रईं। बेंदा, शीशफूल, टकयावर, गुलूबंद, तिदानौ, ठुसी, बाजूबंद, बखुरियां, गजरियां, चूरा-पटैला, करदौना, पैजना, आयलें-पायलें, रूलें उर टोड़ा कुजाने कितै बिल गये ? अब तौ अकेले सब्दई बचे हैं सब्दकोसन में। ऐसई त्योहार उर परवन की हालत खराब होत जा रई है। त्योहारन के मौका पै कोनऊ उमंग उर उत्साह नईं दिखात लोगन के मन में। कबै कौन परब कड़ गओ, पतोई नईं चलत। ऊसें तौ हर मईना कोनऊ ना कोनऊ परब आऊतई रत चैत सैं लैकैं फागुन के मईना नौ त्योहारई त्योहार मनाये जात। चैत उर क्वांर की नौदुरगां, रामनवमी, अकती, बरसात, गंगा दशहरा, सावन तीज, राखी, कनइया आठें, संतान सातें, मां लक्ष्मी, अनंत चौदस, मौराई छठ, दुरगा आठें, देव उठायनी ग्यारस, निर्जला ग्यारस, दसरओ, दिवारी, भइया दूज, तीजा, होरी, बसंत पाचें, सिवरात्रि चौदस, सकरांत, ब्याव पांचें, हरछठ नांव के कैऊ ठौवा त्योहार इतै मनाये जात। इतै की तिरियां अमावस, पूनें, सोमवार उर सुक्रवार के उपसा तौ करतई रतीं। ऐसें लगत कै अब जे उपास-परब तौ अकेली औरतनई नौ रै गये। पुरुस तौ इत्ते बिबूचे रत कैं उनें उन कुदाऊं देखबे की फुरसतई नइयां। कोट, कमीच, बासकट, धोती, कुर्ता उर स्वापा तौ देखबे खौं मिलतई नईयां। इतै के मजूर तक पैंट-शर्ट पैरन लगे। ऐसई खाबे की चीजन में अंतर आ चलो। कड़ी, बरा, मगौरा, पकौरी, खीर, मालपुआ, तसमई, लप्सी, लपटा, महेरी, लुचईं, ठडूला, सेव, बतियां, गुजियां, खुरमा-खुरमी, कालौनी, सन्नाटौ उर गकरियन कौ तौ अकेलौ नांव रै गओ। अब तौ इडली, डोसा, पीजा, छोले-भटूरे, चाऊमीन उर जानें का-का बिंजन बनन लगे हम अपनीं जलेबीं, इमरतीं, बालूसाई, दईबरा, बुंदी उर मैंदा की गुजियां तौ भूलतई जा रये। ऐसें लगत कै हरां-हरां अपनी ई लोक-संस्कृति कौ लोपई हो जैय। ऐसऊ आवभगत उर ब्योहारन में सोऊ अंतर आ चलो। पैलां तौ कित्ती खुसी होत ती पई पावनन के आये की ? आदर-सत्कार में कोनऊं कमी नईं रत्ती। आऊतनईं जलपान करात जात तो। फिर अच्छे-अच्छे पकवानन सैं सत्कार होत तो उर पावनें आठ दिनां नौ मेले रत्ते। ऐई सैं इतै अब जा कानान कई जान लगी -

''एक दिना कौ पावनौ उर दो दिना कौ पई
उर तीसरे दिना रुके तौ पूरे बेशरम सई।''

अब जे कानातें कैबे भर खौं रै गईं। अब तौ कोनऊ पांवने खौं इतनी फुरसतई नइयां कै वौ रिस्तेदारी में चार दिना नौ परो रये उर रिस्तेदारन की सेवा-खुशामद खौं सोऊ काउएं फुरसत नइयां। अब तौ लोग चाय-नाश्ता कराकैं रिस्तेदारन सैं सुस्ते हो जात। अब तौ पूरई मापदण्ड बदल गये। अपनी लोक-संस्कृति कौ सरूप हरां-हरां हिलबिलान होत जा रओ। आज तौ घरई कौ भइया अपने सरो भइया सैं दुश्मनी मानन लगो। एक दूसरे खौं पानी में हुन हेरन लगे अब सोसौ कै संस्कृति कौ वौ सरूप अब कितै धरो ?

- कुण्डेश्वर, टीकमगढ़

भैया अपने गांव में

कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में।
सोरा गोटी खेलत ते जब बैठे बर की छांव में।।
बूंदे गिरीं झलैयन खेलत सबखों संग सकेलत।
रेता में घरघोला बनरए कोउ मिटा रए ठेलत।।
काम करत ते राम भजत ते रतते अपने भाव में।
कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में।।

समा लठारा की रोटी संग खा भाजी औलैया।
कनकी लसुवा बारामासी कनकउवा बौलैया।।
चौंलइ चेंच कैरुवा बथुवा चंदूली ललफूला।
पुंवार ककोरा त्योरा-त्योरी डुगरू और करेला।।
रोटी भाजी नौन की डरिया खा रए बिना तनाव में
कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में।।

लपटा, लटा, गुलगुला, चीला, अदरैनूं बसकारें तिलकूचा,
रसखीर, इंदरसे, मुरका खा जड़कारें।।
जेठ मास में डुबरी, सतुवा, भूंजा मयरी खा रए खुरमा,
पुवा, ठडूला, बतियां सपनन आज दिखा रए
गलगल पच्चे खूब उड़त तें रै गए बिसरे नांव में।
कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में

आईं बरातें नचे कांड़रा कंसाउरी बजाकें।
रवला में रमतूला बजरए फाग राई में गाकें।।
कउं खसिया कउं नचें बेड़नी ढिमरयांउं कउं हो रई।
बन्नागीत बइयरें गा रईं दलदल घोड़ी नच रईं।।
सबई बराती और घराती झूमें अपने भाव में।
कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में।।

गिल्ली डंडा कोउ खेल रए कोउ खेल रए सैरौ।
कितउं दिवारी गा रए मौनी लएं रत हैं सब ऐरौ
लगा डठूला काजर मौनी मौंगें मौंगें नच रए।
कितउं ग्वाल ब्रजवासी गारए कितउं दादरे हो रए।।
कोउ गा रए और कोउ बजारए अपने-अपने दाव में।
कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में।।

डिड़ खुरयाउ, चौकड़ी, टहुका, झूमर और सखियाउ।
झूला झुलना, डेड़ पदी ढप खड़ी फाग छंदयाउ।।
दलबंदी, फड़बंदी गा रए बुंदेली की फागें।
कितउं कहरवा, बिरहा, ठुमरी, बारामासी सुन रए।।
कोउ गा रए उर कोउ बजा रए धुन में पनै लगाव में।
कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में।।

डौरू, ढांक, नगरिया, मम्बुई, झींका, ढोल, मजीरा।
सारंगी, करताल, बांसुरी, गागर, गनी, कंजीरा
सूर्य पिरई और चंद्र पिरई, ढप, डड़ा खंजरी बज रईं।
कितउं चमीटा, डुग्गी, गिलबईं, चुटकी, सीटीं चल रईं
टुकुर मुकुर अब 'मधुप' देख रए मोंगे मोंगे छांव में।
कितै हिरा गए वे नौनें दिन भैया अपने गॉव में।।

– पं0 बाबूलाल द्विवेदी

बीच किले में मूक हूक श्री मर्दनसिंह महाराज की

– अजय शंकर भार्गव

भीतर ताल औ बाहर बेहट बात बड़े है नाज़ की ।
बीच किले में मूक हूक श्री मर्दनसिंह महाराज की ।।
किला कंगूरा, बैठ लंगूरा, मोरें नाच दिखावें ।
प्रकटे भानु गगनगढ़ पीछे दौरे दर्शन पावें ।।
बांकी झांकी बांकी सुंदर तालबैट के ताज की ।
बीच किले में मूक हूक श्री मर्दनसिंह महाराज की ।।
किले के भीतर नरसिंह मंदिर पील पाए मन भावत ।
बैठक महल खण्ड गढ़ ड्योढ़ी अंत कुआ अरु आंगन ।।
बड़ी कहानी प्रेरक बन गई धीर बीर जांबाज की ।
बीच किले में मूक हूक श्री मर्दनसिंह महाराज की ।।
अमर धरोरह रहे सुरक्षित यही समय की दस्तक ।
हृदय प्रसून भाव अर्पित कर बार-बार नतमस्तक ।।
स्वार्थहीन पौरुष प्रवीन हो 'अजय' मांग यह आज की ।
बीच किले में मूक हूक श्री मर्दनसिंह महाराज की ।।

बुन्देलखण्ड के इतिहास, साहित्य तथा लोक संस्कृति पर पठनीय प्रमुख ग्रन्थ

– अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

1. बुन्देलखण्ड का इतिहास, ले. दीवान प्रतिपाल सिंह जू, प्रकाशक कुं पृथ्वीसिंह पहरा
2. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पं0 गोरेलाल तिवारी, प्रका0 नागरी प्रचारिणी सभा काशी
3. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पं0 चतुर्भुज शर्मा, प्रकाशक चतुर्भुज प्रकाशन लखनऊ
4. चंदेलवंश और उनका राजत्वकाल, केशवचंद्र मिश्र, प्रकाशक ना.प्र. सभा काशी
5. महाराजा छत्रसाल बुन्देला, डॉ भगवान दास गुप्त, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0 आगरा
6. श्री बालाजी देवों के देव, हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, साहित्य पुस्तकालय, दतिया
7. दतिया दर्शन, सं0 हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, साहित्य पुस्तकालय, दतिया
8. महान ओरछा की महिमा, ठा. लक्ष्मन सिंह गौर, ओरछा
9. गुप्त गोदावरी माहात्म्य, पं0 सत्यनारायण शुक्ल, लालपुर गुप्त गोदावरी सतना
10. जैतपुर नरेश पारीछत, रामसेवक रिछारिया, ऊषा प्रकाशन, बरुआसागर झांसी
11. विद्रोही बानपुर, वासुदेव गोस्वामी, सहयोगी प्रकाशन दतिया, 1954 ई0
12. चंदेलकालीन बुंदेलखण्ड, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
13. Freedom Struggle in UP, A.A.A. Rizvi, Deptt. of Information, UP
14. जालौन गजेटियर (1921), राजकीय मुद्रणालय, इलाहाबाद
15. जालौन गजेटियर (1986), राजकीय मुद्रणालय, लखनऊ
16. झांसी गजेटियर (1965), राजकीय मुद्रणालय, लखनऊ
17. हमीरपुर गजेटियर (1986), राजकीय मुद्रणालय, लखनऊ
18. आइने कालपी, मुंशी इनायतुल्ला, कालपी
19. पुरातन गाथाओं का शहर कालपी, डॉ राजेन्द्र कुमार, नगरपालिका कालपी
20. कालपी माहात्म्य, हिन्दी भवन कालपी
21. कोंच का इतिहास, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी कोंच
22. संघर्षों से जूझता बरवासागर, रामसेवक रिछारिया, ऊषा प्रकाशन, बरुआसागर झांसी
23. शारदा शक्ति पीठ बैरागढ़, कृष्णलाल शास्त्री, बैरागढ़ (जालौन)
24. सांस्कृतिक धरोहर, जनपद जालौन (सूचना विभाग, उरई)
25. चंदेलखण्ड का पुरातत्व, एस. डी. त्रिवेदी (राजकीय संग्रहालय, झांसी)
26. जराय मठ, एस. डी. त्रिवेदी (राजकीय संग्रहालय, झांसी)
27. बुन्देली विरासत, नईम कुरैशी, चंबल पोस्ट प्रकाशन, ग्वालियर
28. छत्रप्रकाश, संपादक डॉ महेन्द्र प्रताप सिंह
29. बुन्देलखण्ड का वृहद् इतिहास, डॉ काशी प्रसाद त्रिपाठी
30. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, रामचरण हयारण मित्र, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
31. बुन्देलखण्ड दर्शन, मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त', शारदा साहित्य कुटीर, झांसी
32. अस्मिता, सं0 डॉ कृष्ण बिहारीलाल पाण्डेय, जिला पुरातत्व संघ, दतिया
33. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, म0म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना
34. बुन्देलखण्ड की लोकधारा, श्रीमती दुर्गा पाठक, राही प्रकाशन शाहजहांपुर
35. लोकरंग (उत्तर प्रदेश), दया प्रकाश सिन्हा, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान तथा सांस्कृतिक कार्य निदेशालय, लखनऊ
36. ग्लोरी आफ बुंदेलखण्ड (महेन्द्र कुमार अभिनंदन ग्रंथ – सं0 कृष्ण दत्त बाजपेयी), ईस्टर्न बुक डिपो दिल्ली
37. सत्पदल (अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद') का निबंधखण्ड, नमन प्रकाशन, उरई
38. बुन्देली भाषा और साहित्य, कृष्णानन्द गुप्त, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
39. बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप, डॉ कृष्णलाल हंस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
40. हिन्दुस्तानी कहावत कोश, सं0 कृष्णानंद गुप्त, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
41. बुन्देली कहावत कोश, सं0 कृष्णानंद गुप्त, सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ
42. बुन्देल भारती, अवधेश, अंजलि प्रकाशन झांसी
43. बुन्देली व्याकरण, कन्हैयालाल शर्मा 'कलश', बुन्देली वार्ता शोध संस्थान गुरसरांय(झांसी)

44. लोकाचरण, डॉ गणेशीलाल बुधौलिया, बुंदेल भारती प्रकाशन, राठ (हमीरपुर)
45. बुंदेली आने और अटके, कन्हैयालाल शर्मा 'कलश', गुरसरांय
46. लोक साहित्य में आमोद-प्रमोद, डॉ रहमतुल्ला, साहित्य रत्नालय, कानपुर
47. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, इलाहाबाद
48. खड़ी बोली का लोक साहित्य, डॉ सत्या गुप्ता, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
49. लोकवार्ता विज्ञान (दो भागों में), डॉ हरद्वारीलाल शर्मा, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान
50. लोककथा विज्ञान, श्री चंद्र जैन, मंगल प्रकाशन जयपुर
51. बुंदेली काव्य परंपरा (दो भाग), बलभद्र तिवारी, सागर विश्वविद्यालय, सागर
52. बुंदेली का लोक काव्य, बलभद्र तिवारी, सागर विश्वविद्यालय, सागर
53. बुंदेली का लोककथा साहित्य, बलभद्र तिवारी, सागर विश्वविद्यालय, सागर
54. बुन्देली का नाट्य साहित्य, बलभद्र तिवारी, सागर विश्वविद्यालय, सागर
55. बुंदेलखण्ड का फाग साहित्य, श्याम सुंदर बादल, हिन्दी साहित्य परिषद राठ
56. बुंदेलखण्डी फड़ साहित्य, डॉ गणेशीलाल बुधौलिया, बुंदेल भारती प्रकाशन राठ
57. बुंदेलखण्ड के लोकगीत, डॉ वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी
59. बुंदेलखण्ड के लोकगीत, उमाशंकर शुक्ल, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
60. बुंदेलखण्डी लोकगीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय, भोपाल
61. बुंदेली लोकगीत, वासुदेव गोस्वामी, उ0प्र0 संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ
62. ईसुरी प्रकाश, गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' बुंदेल वैभव प्रकाशन, झांसी
63. ईसुरी की फागें, संपादक कृष्णानंद गुप्त, गरौठा
64. ईसुरी की फागें, सं0 घनश्याम कश्यप, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
65. बुंदेली लोकगीतकार, गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', प्रकाशक राजीव नारायण द्विवेदी, झांसी
66. बुंदेलखण्ड की लोककथाएं, हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, इतिहास संशोधन संस्थान, नई दिल्ली
67. बुंदेलखण्ड की लोककथाएं, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
68. बुंदेलखण्ड की ग्राम्य कहानियां, शिवसहाय चतुर्वेदी, भोपाल
69. गौने की विदा (लोककथाएं), शिवसहाय चतुर्वेदी, भोपाल
70. अलाव की बातें (लोककथाएं), वासुदेव गोस्वामी, दतिया
71. लक्ष्मी (लोककथाएं), हरगोविन्द गुप्त, गृहपति प्रकाशन, चिरगांव
72. ब्रज और बुंदेली लोकगीतों में कृष्ण कथा, डॉ शालिग्राम गुप्त
73. प्रतीक शास्त्र, परिपूर्णानन्द वर्मा, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ
74. भारत में प्रतीक पूजा का आरंभ और विकास, सांवलिया बिहारीलाल गर्ग, बिहार ग्रंथ अकादमी
75. भारतीय संस्कृति के प्रतीक, सुमती जोशी, सेविका प्रकाशन, नागपुर
76. हमारी संस्कृति के प्रतीक, महादेव प्रसाद शास्त्री, सस्ता साहित्य मुद्रक, नई दिल्ली
77. अभिनन्दन, सं0 बाबूलाल गोस्वामी, हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, वासुदेव गोस्वामी, दतिया
78. भारतीय लोक साहित्य (डॉ श्याम परमारं), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
79. विलुप्त होते हुए बुंदेली लोकगीत, सं0 उत्तम चंद्र बंसल, प्रकाशक मण्डल देवरी, सागर
80. बुंदेली लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ मोतीलाल चौरसिया, क्लासिकल पब्लिशिंग कं0 28 शापिंग सेंटर करमपुरा, नई दिल्ली
81. बुंदेलखण्डी लोकगीत, हरप्रसाद शर्मा
82. बुंदेली लोक साहित्य, रामस्वरूप श्रीवास्तव
83. बुंदेलखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन, रामस्वरूप ढेंगुला
84. बुंदेली लोक संस्कृति, जगन्नाथ शर्मा
85. चंदेलकालीन कला और संस्कृति, डॉ महेन्द्र वर्मा
86. हरदौल, हरप्रसाद शर्मा
87. लोकप्रथा, श्यामसुंदर बादल
88. बुंदेली का उद्‌भव और विकास, डॉ रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल
89. बुंदेली कृषि उद्योग शब्दावली का अध्ययन, डॉ हरगोविन्द सिंह

90. लोक संस्कृति : आयाम एवं परिप्रेक्ष्य, महावीर अग्रवाल, शंकर प्रकाशन, दुर्ग
91. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, श्रीमती विनोद तिवारी, साहित्यवाणी, 28 पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद
92. लोक साहित्य : विधाएं एवं दिशाएं, डॉ कैलाशचंद्र अग्रवाल, चिन्मय प्रकाशन, 16/36 डी मोतीलाल नेहरू रोड आगरा
93. लोकसाहित्य का अध्ययन, डॉ त्रिलोचन पाण्डे, लोकभारती इलाहाबाद
94. लोकसाहित्य और संस्कृति, दिनेश प्रसाद, लोकभारती इलाहाबाद
95. लोकसाहित्य विज्ञान, डॉ सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल प्रकाशन आगरा
96. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ विद्या चौहान, प्रगति प्रकाशन आगरा-3
97. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, कुलदीप, प्रगति प्रकाशन आगरा
98. बुंदेलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास, डॉ नर्मदा प्रसाद गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
99. बुंदेलखण्ड के संस्कार गीत, सं0 सुधीर तिवारी, माधव शुक्ल 'मनोज'
100. बुंदेली लोकसंगीत, संकलनकर्ता सुरेन्द्र सिंह चौहान, संस्कृति विभाग, उ0प्र0
101. चंदेलकालीन महोबा और जनपद हमीरपुर के पुरावशेष, वासुदेव चौरसिया, प्रेम बुक डिपो, महोबा

प्रमुख पत्रिकाएं

1. मधुकर, टीकमगढ़, सं0 बनारसीदास चतुर्वेदी (प्रकाशन बंद है)
2. लोकवार्ता, टीकमगढ़, सं0 कृष्णानंद गुप्त, (प्रकाशन बंद है)
3. बेतवावाणी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (प्रकाशन बंद है)
4. नौटंकी कला, सं0 कृष्ण मोहन सक्सेना, नौटंकी कला केन्द्र, लखनऊ (प्रकाशन बंद है)
5. मामुलिया, सं0 डॉ नर्मदा प्रसाद गुप्त, बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर (प्रकाशन बंद है)
6. चौमासा, सं0 कपिल तिवारी, म0प्र0 आदिवासी लोककला परिषद् भोपाल
7. ईसुरी, बुन्देली पीठ, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (प्रकाशन बंद है)
8. बुंदेली वार्ता, सं0 कन्हैयालाल 'कलश', गुरसरांय (झांसी)

प्रमुख विशेषांक

1. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
2. लोक संगम, बुंदेली अंक (छत्रसाल इंटर कालेज जालौन विद्यालय पत्रिका का विशेषांक)
3. साप्ताहिक भारती, लोक संस्कृति एवं कृष्णानंद गुप्त अभिनंदन अंक, झांसी (सं0 पन्नालाल धूसर)
4. दैनिक मध्यदेश झांसी के विशेषांक (क) दीवाली, 70-विशेषांक (ख) गणतंत्र दिवस, 71- विशेषांक तथा (ग) दीवाली, 71 - विशेषांक
5. कालपी कीर्ति अंक 1 तथा अंक 2 (एम.एस.वी. इण्टर कालेज कालपी के विशेषांक)
6. बुंदेली अंक (कन्हैयालाल अग्रवाल मेमोरियल बाल विद्या मंदिर जालौन की पत्रिका का विशेषांक)
7. बुंदेली नारी विशेषांक (राजमाता लड़ैती दुलैया बालिका इण्टर कालेज चिरगांव पत्रिका का विशेषांक)
8. मधुकर (बुंदेलखण्ड प्रान्त निर्माण अंक), सं0 बनारसी दास चतुर्वेदी
9. राष्ट्र गौरव, बुंदेली बांकुरे - 1, साहित्य अंक, प्रधान संपादक डॉ गंगाप्रसाद बरसैंयां, प्रकाशन बुंदेलखण्ड केशरी छत्रसाल स्मारक ट्रस्ट, छतरपुर

मण्डपम, राठ रोड, उरई
'बुन्देलखण्ड का लोकजीवन' से साभार

बुन्देलखण्ड में सूर्योपासना और 'सूर्य नमस्कार'

- जुगुल किशोर तिवारी[15]

वर्ष 1984 ई0 तक भारत में मात्र 140 सूर्य मंदिरों की अवस्थिति के प्रमाण उपलब्ध हैं। जिनमें बुन्देलखण्ड में 16 सूर्य मंदिर विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त संभव है कि अनेक सूर्य मंदिर और उनमें स्थापित प्रतिमाएं ढह गयी हों। भारत जैसे विशाल देश के मध्य स्थित बुन्देलखण्ड के छोटे से भू-भाग में 16 सूर्य मंदिरों तथा अनेक सूर्य प्रतिमाओं और सूर्य चक्रों का होना यह सिद्ध करता है कि प्राचीन काल में बुन्देलखण्ड सूर्योपासना का प्रमुख केन्द्र रहा है।आकाशीय ज्योतिष्पिण्ड के रूप में सूर्य की पूजा-अर्चना आदि काल से होती आ रही है। शैलचित्रों में उगते हुए सूर्य का चित्रण मिलता है। सिंधु घाटी के उत्खनन में भी सूर्य की आराधना के प्रमाण मिले हैं। ऋग्वेद में 'सूर्य आत्मा जगतस्थुषश्च' कहते हुए सूर्य को जगत की आत्मा माना गया है। गुप्तकाल में सूर्य प्रतिमाओं के निर्माण को लोकप्रियता मिली, जिससे बुन्देलखण्ड में भी सूर्योपासना को विशेष प्रोत्साहन मिला। भारतीय कला में सूर्य का प्रदर्शन सर्वप्रथम कमलपुष्प, स्वर्णपत्र, चक्र और वर्तुल जैसे प्रतीकों के माध्यम से प्रारंभ हुआ था, जबकि पुरुष विग्रह में सूर्य की उपासना भारत में ईरान से आयी थी। हमारे यहां सूर्य प्रतिमा का प्राचीनतम विवरण वराहमिहिर की वृहत्संहिता में उपलब्ध है। ''नमस्कारः प्रियः सूर्यः जलधारा प्रिया शिवः। अलंकाराः प्रियः विष्णोर्ब्राह्मणो मधुरप्रिया'' के अनुसार सूर्य नमस्कार ही सच्ची सूर्योपासना है, जिसे हमारे मनीषियों ने एक पूर्ण योगासन का स्वरूप देकर मानव स्वास्थ्य के लिए अमूल्य उपहार दिया है।

सूर्य नमस्कार का एकदम सीधा और सरल अर्थ है 'सूर्य को प्रणाम'। यह नामकरण कदाचित् इसलिए हुआ कि अरुणोदय काल में इसके करने का विधान है। इसकी पहली मुद्रा है, जिसमें सूर्य की ओर मुख करके खड़ा हुआ जाता है। इसलिए इसे 'सूर्य नमस्कार' कहा गया। यह वैदिक काल के ऋषियों की देन है। प्राचीनकाल में दैनिक कर्मकाण्ड के रूप में सूर्य की नित्य आराधना की जाती थी, क्योंकि प्राणचेतना का यह एक स्थूल माध्यम है। इससे जड़-चेतन को प्रत्यक्ष जगत में जीवन मिलता है और सूक्ष्म जगत में 'सविता' के रूप में यह प्राण-प्रवाह का प्रखर पुंज है। समस्त संसार के लिए इसे कल्याणकारी माना गया है। अतः इसकी उपासना हमारे धार्मिक कर्मकाण्ड का अंग है, किन्तु जब 'सूर्य नमस्कार' के रूप में इसे हम अपनाते हैं, तो यही अभ्यास चेतना का उन्नायक और स्वास्थ्य-संवर्द्धक बन जाता है। यह उन तत्वज्ञों का आविष्कार है, जिन्हें यह पता था कि इससे केवल स्वास्थ्य-रक्षा ही नहीं होती वरन् मानसिक शक्तियों के संतुलन, नियमन और सुनियोजन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसकी विभिन्न 12 स्थितियों का साधक जब नियमित रूप से अभ्यास करता है, तो उससे उसकी सूक्ष्म ऊर्जा प्रभावित होती है, उसमें एक लयबद्धता आती है और साधक की सोच संसार के प्रति सकारात्मक बनती जाती है।

योगनिद्रा की भांति सूर्य नमस्कार भी सजगता को विकसित करने का एक सरल उपाय है इसे प्रारंभ करने से पहले ही यह अभ्यास करना चाहिए। खड़ी दशा में ही आंखें बंद कर लें , दोनों हाथों को बगल में नीचे लटकाए रखें। अब शरीर को पूरी तरह तनावरहित और शिथिल कर लें अपनी चेतना को सजगतापूर्वक सिर से शुरू करते हुए पैरों तक घुमाएं। सजगता का यह विकास एक टॉर्च की तरह है, जिसका प्रकाश व्यक्तित्व के अंधकार को चीरता है। अब चेतना को पांव के तलवे पर ले जाएं तथा भूमि और तलवों के संपर्क बिंदुओं का अनुभव करें। सोचें कि देह के, अंग-अवयवों के संपूर्ण तनाव पैरों के माध्यम से भूमिगत होते जा रहे हैं और शरीर शिथिल होता जा रहा है। कुछ समय इस अवस्था में रहने के उपरांत मूल अभ्यास शुरू करें। ऐसा करना इसलिए जरूरी होता है कि इससे शरीर की अकड़न शुरू में ही दूर हो जाती है और वह हर प्रकार से अभ्यास के अनुकूल बन जाता है।

सूर्य नमस्कार में सम्मिलित आसनों को करने से साधक की प्राणशक्ति में अभिवृद्धि होती है। इस अभिवृद्धि से शरीर के विभिन्न अंगों में उद्दीपन आरंभ हो जाता है , जिससे चक्रों पर मानसिक तथा शारीरिक ऊर्जा को एकाग्र करने में सहायता मिलती है। इन आवेशित अंग-उपांगों के प्रति सजग होने से मन तथा शरीर, इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों में सामंजस्य स्थापित होता है, जिसकी परिणति आत्मजागरण के रूप में सामने आती है। सूर्य नमस्कार की विभिन्न द्वादश स्थितियों का क्रमशः निम्न चक्रों पर असर पड़ता है -
(1) प्रणामासन - अनाहत चक्र (2) हस्त उत्तानासन - विशुद्धि चक्र (3) पादहस्तासन - स्वाधिष्ठान चक्र (4) अश्वसंचालनासन - आज्ञाचक्र (5) पर्वतासन - विशुद्धि चक्र (6) अष्टांग नमस्कार - मणिपुर चक्र (7) भुजंगासन - स्वाधिष्ठान चक्र। शेष पांच स्थितियों में इन्हीं की पुनरावृत्ति होती है, तदनुसार उन्हीं-उन्हीं चक्रों पर पुनः दबाव पड़ता है।

[15] लेखक बुन्देलखण्ड के महोबा जिले के निवासी एवं उत्तर प्रदेश में अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के पद पर कार्यरत हैं । आप अपनी प्रशासनिक व्यस्तताओं के बीच सृजनात्मक लेखन एवं सेवा-प्रकल्पों से जुड़कर लोकमगल-कार्यों में सन्नद्ध हैं । - संपादक

चक्रों पर एकाग्रता के समय विभिन्न सूर्य मंत्रों के मानसिक उच्चारण को भी अपनाया जा सकता है। उसके स्पंदक भी चक्र जागरण में सहायक होते हैं। अभ्यास में पूर्णता आने के उपरांत ऐसा प्रतीत होगा, मानो शब्द स्फुलिंग इन्हीं चक्रों से निर्गत हो रहे हैं।

प्रत्येक वर्ष सूर्य बारह विभिन्न स्थितियों से हाकर गुजरता है। इन स्थितियों को ज्योतिष में 'राशि' कहते हैं। प्रत्येक राशि की अलग-अलग विशेषताएं होती हैं। इनके आधार पर ही उनके नामकरण किए गए हैं। इन 12 नामों से सूर्य नमस्कार के 12 सूर्य मंत्र संबंधित हैं, जो इसकी 12 स्थितियों का अभ्यास करते समय दोहराए जाते हैं। ये निम्न है -

(1) ॐ मित्राय नमः (2) ॐ रवये नमः (3) ॐ सूर्याय नमः (4) ॐ भानवे नमः (5) ॐ खगाय नमः (6) ॐ पूष्णे नमः (7) ॐ हिरण्यगर्भाय नमः (8) ॐ मरीचये नमः (9) ॐ आदित्याय नमः (10) ॐ सावित्रे नमः (11) ॐ अर्काय नमः (12) ॐ भास्कराय नमः।

ये सूर्य मंत्र मात्र सूर्य के नाम ही नहीं हैं। इनकी ध्वनियां उस मूलभूत शाश्वत शक्ति की वाहक हैं, जिसका प्रतिनिधित्व स्वयं सूर्य करता है। एकाग्रतापूर्वक इन मंत्रों के उच्चारण से साधक की संपूर्ण मानसिक संरचना प्रभावित होती है।

योगाभ्यासों के माध्यम से शरीर की नाड़ियों, ग्रंथियों, उपत्यिकाओं, मातृकाओं को सुव्यवस्थित-संतुलित कर पाना संभव है। पीनियल ग्रंथि का जब क्षय शुरू होता है, तो उससे अनेक प्रकार की भावनात्मक समस्याएं पैदा होने लगती हैं। विशेषकर किशोर मन इन भावनात्मक आघातों को सह पाने में सक्षम नहीं होता, इससे कई प्रकार के शारीरिक-मानसिक रोग पनपने लगते हैं। इस जटिलता को रोकने में सूर्य नमस्कार समर्थ है। बालकों के लिए यह विशेष पहत्व रखता है; कारण कि 8 वर्ष तक की आयु से ही पीनियल ग्रंथि का क्षय होने लगता है। इससे 12 से 14 वर्ष की आयु में उनका यौवन आरंभ होने लगता है। शारीरिक और भावनात्मक विकास के इन असंतुलन के कारण उनका व्यक्तित्व गठन सुचारु रूप से नहीं हो पाता, जिससे हर क्षेत्र में उनकी सफलता संदिग्ध बनी रहती है। पीनियल ग्रंथि के इस क्षय को सूर्य नमस्कार द्वारा नियंत्रित किया जा सकना सरल है। इसके अतिरिक्त शांभवी मुद्रा तथा गायत्री मंत्र के जप द्वारा भी यह कार्य संपन्न होता है।

विशेषज्ञों का कथन है कि सूर्य नमस्कार का अभ्यास यदि 8-10 वर्ष की उम्र से ही कराने लगें तो उसका परिणाम स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है। जब ऐसे बच्चों की तुलना उन समवयस्कों से की गई, जिन्होंने यह अभ्यास नहीं किया। तब यह पाया गया कि अभ्यासी बालक अपने सहपाठियों से हर क्षेत्र में श्रेष्ठ साबित हुए हैं।

सूर्य नमस्कार का असर संपूर्ण शरीर तंत्र पर पड़ता है, जिससे निष्क्रिय अंग सक्रिय हो उठते हैं और जहां अति सक्रियता होती है, उसकी क्रियाशीलता नियंत्रण में आ जाती है। इसकी प्रथम स्थित प्रणामासन से अंतर्मुखता, शिथिलीकरण तथा शांति की स्थितियां उत्पन्न होती हैं। हस्तउत्तानासन से पीठ तथा गर्दन की पेशियां शिथिल होती हैं। इस आसन में गहरी श्वास अंदर लेते समय उदर की मालिश होती है तथा पाचन सुधरता है। मेरुदण्ड का व्यायाम होता है, मोटापा घटता है एवं थायरायड ग्रंथि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पादहस्तासन से अंतरंग प्रभावित होते हैं। इनमें प्रमुख हैं, यकृत, वृक्क, पित्ताशय, अग्न्याशय, एड्रीनल ग्रंथि, गर्भाशय तथा अंडाशय (ओवरी)। इसके कारण उदर संबंधी बीमारियां दूर होती हैं और पाचन शक्ति बढ़ती है। महिलाओं में गर्भाशय का अपने स्थान से हट जाना तथा अनियमित मासिक धर्म दूर होता है। मस्तिष्क में रक्तप्रवाह बढ़ता है तथा संपूर्ण अंतःस्रावी तंत्र पर दबाव पड़ता है। अश्वसंचालनासन से पीठ की पेशियां शिथिल पड़ती हैं। इस कारण उदर की पेशियों में खिंचाव आता है। प्रमुख खिंचाव श्रोणि प्रदेश (पेल्विक भाग) पर पड़ता है। साइनस में इससे आराम मिलता है। पर्वतासन से भुजाओं तथा पैरों की पेशियां मजबूत बतनी हैं। मेरुदण्ड के स्नायु सबल होते हैं और पिंडलियों की पेशियों में भी खिंचाव उत्पन्न होता है। अष्टांग नमस्कार आसन से वक्षस्थल में मजबूती आती है। इसके अतिरिक्त बांह, कंधे और पांव की की शक्ति बढ़ती है। भुजंगासन से वक्ष एवं उदर दोनों पर दबाव पड़ता है; जिससे दमा, कब्ज, अपच, गुर्दे और यकृत की व्याधियों से मुक्ति मिलती है। मेरुदण्ड का व्यायाम होता है।इसके अतिरिक्त यह व्यायाम इड़ा-पिंगला नाड़ियों में भी संतुलन-समीकरण स्थापित करता है। इन्हीं नाड़ियों की सक्रियता-निष्क्रियता के परिणामस्वरूप दो प्रकार के व्यक्तित्व सामने आते हैं बहिर्मुखी तथा अंतमुर्खी। बहिर्मुखी व्यक्ति पिंगला प्रधान होते हैं , जबकि अंतर्मुखी व्यक्तियों में इड़ा नाड़ी की गतिशीलता अधिक होती है। बहिर्मुखी मनुष्य अपनी आंतरिक अनुभूतियों से शून्य होते हैं। इसकी पूर्ति वे बाह्य साधनों, इच्छाओं और सुविधाओं से करते रहते हैं। बाहरी सुरक्षा और आनंद हेतु बाह्य साधनों पर निर्भर रहने से अंतः की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। इससे कुंठा, तनाव बढ़ते हैं, जिससे व्यक्ति और ज्यादा बहिर्मुखी बन जाता है। उसमे अशांति और चिड़चिड़ेपन के लक्षण उभरने लगते हैं। इसके विपरीत अंतर्मुखी व्यक्ति दार्शनिक प्रकृति के होते हैं। वे सोचते तो बहुत हैं, किंतु अपने विचारों को क्रियारूप में परिणत नहीं कर पाते। ऐसे लोग अपनी भावनाओं के प्रति अत्यधिक सजग रहते हैं उन्हें बाह्य घटनाओं और लोगों की प्रतिक्रियाओं के बारे में वास्तविकता से परे सोचने की आदत होती है। वे विपत्तियों का पूर्वानुमान लगाने में कोई कोताही नहीं बरतते। बाह्य जगत् की विभिन्न स्थितियों के प्रति संतुलित दृष्टिकोण रखना उनके वश की बात नहीं होती।

यह दोनों ही प्रकृतियां आदर्श नहीं मानी जा सकतीं। एक में व्यक्ति अति उत्साह में आकर कुछ-का-कुछ करने लगता है, जबकि दूसरी स्थिति व्यक्ति को निष्क्रियता की ओर ले जाती है। सूर्य नमस्कार को नियमित रूप से करने से इन दोनों अवस्थाओं के मध्य एक संतुलन स्थापित होता है। इड़ा और पिंगला नाड़ियां नियंत्रित ढंग से सुचारु रूप से कार्य करना आरंभ करती हैं, जिससे व्यक्ति के व्यवहार में स्पष्ट परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है।

सूर्य नमस्कार प्रत्येक आयु-वर्ग के लोगों के लिए समान रूप से उपयुक्त है, किंतु अधिक उम्र के लोगों को अधिक तनाव से बचना चाहिए। उच्च रक्तचाप या हृदयाघात से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। मेरुदंड की समस्याग्रस्त व्यक्तियों को भी इससे परहेज रखना ठीक है। इसे करने में एक और बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इसके अभ्यास के दौरान देह पर आवश्यकता से अधिक दबाव या खिंचाव न पड़े।

यों तो सूर्य नमस्कार सूर्योदय के समय करना ठीक रहता है, पर यदि प्रातःकाल किसी कारण इसका अभ्यास करना संभव न हो तो दिन में कभी भी खाली पेट इसे किया जा सकता है यथासंभव खुली हवा में ढीले कपड़े पहनकर इसे करना चाहिए, जिससे त्वचा आसानी से सूर्य ऊर्जा को ग्रहण कर सके।

सूर्य नमस्कार एक उपयोगी अभ्यास है। इससे शरीर और मन दोनों स्वस्थ-संतुलित बने रहते हैं और व्यक्ति शनैः-शनैः आत्मोत्कर्ष की ओर बढ़ता चलता है। प्रत्येक गायत्री साधक को यह अभ्यास अवश्य करना चाहिए। मानव शरीर की विभिन्न बीमारियों एवं उसके सामान्य स्वास्थ्य के लिए योगासन एक अत्यंत आवश्यक एवं लाभप्रद समाधान है। यह विश्व के सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से उपयोगी है। किन्तु भारत के मध्य भौगोलिक परिक्षेत्र में स्थित बुन्देलखण्ड अंचल में सूर्य की प्रखरता और ओजस्विता के दृष्टिगत सूर्य नमस्कार सरल, सहज एवं उपयोगी योगासन है।

-पुलिस आवास कालोनी, म्योर रोड, इलाहाबाद

बुन्देली लोकरंजन के साधन

- पं0 नवल किशोर तिवारी

क. बुन्देली लोकवाद्य

आदि मानव ने हृदयगत भावनाओं को गुनगुनाया होगा तभी से गीत, लोकगीत का प्रारंभ हुआ होगा। व्यष्टि और समष्टि की वेगवती धाराएं जहां मिलती हैं, उस भावभूमि को लोक कहते हैं। लोक में व्यक्ति की सत्ता एवं विश्व की चेतना दोनों समाहित हैं। कविता व्यक्तिपरक होती है किन्तु लोकगीत जनमानस की धरोहर हैं। इन गीतों को गुनगुनाकर अथवा सामूहिक रूप में उपकरणों के सहारे गाया जाता है। यह उपकरण ही लोकवाद्य हैं। कहा जाता है -

लहर अंतर से जो आए उसे हम गीत कहते हैं।
पिला पाए जो अमृत रस उसे संगीत कहते हैं।।

संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य विधाएं महत्वपूर्ण हैं। विशिष्ट पद्धति से निर्मित वाद्य यंत्रों पर थप देकर, फूंककर अथवा तारों में लयबद्ध कंपन उत्पन्न करके संगीत-ध्वनि को विकसित किया जाता है। इस आधार पर वाद्ययंत्र चार प्रकार के होते हैं -

1. घन वाद्य - आपस में ठोककर, मधुर ध्वनि निकालना इस प्रकार के वाद्य यंत्रों में डंडा, घंटी, मजीरा, झांझ, कोलु, डांड़िया, बिल्लुकोट्टु, टक्का, मुखचंग, थाली, जार्गट, सीमू, चिमटा, गिलबई आदि आते हैं।

2. अवनद्ध वाद्य - यह गोलाकार, चंद्राकार खोल पर चर्म मढ़कर हाथ या डंडा से थाप देकर बजाए जाते हैं। इनमें सूर्य पिरई, चंद्र पिरई, ढप, खंजरी, कंजीरा, गना, मंबुई, मृदंग, पखावज, ढोलक, डमरू, ढाक, घट, गागर, दुन्दुभी, नगाड़ा, नक्कारा, तबला, डुग्गी, पंचमुखी, सप्तमुखी, त्रिमुखी आदि आते हैं।

3. सुषिर वाद्य - ऐसे वाद्य जो फूंक भर कर बजाए जाते हैं। इनमें सिंहा, कोम्बु, शंख, तुरई, बांसुरी, वेणु, पुंगी, पुंगा, बीन, शहनाई, खंग, हारमोनियम आदि मुख्य हैं।

4. तंतु वाद्य - जो तारों में कंपन उत्पन्न करके बजाए जाते हैं जैसे तुनतुना, इकतारा, सरस्वती वीणा, सितार, सारंगी, सरोद, संतूर, तमूरा, रुद्रवीणा आदि। इनमें सितार हमारा राष्ट्रीय वाद्ययंत्र है।

ख. लोक नृत्य

बुन्देलखण्ड में विभिन्न मांगलिक अवसरों पर अनेक राग-रागिनियां, दादरा, फाग, सोहर, राई, नारदी, बंभुलिया, मामुलिया, लमटेरा, मछरयाउ, ढिमरयाउ, गारी, कहरवा, बाबा के गीत, जालें, बारामासी, रवला, चांचड़, बिलवाईं, ख्याल, जातें, कजरीं, बिरहा, ठुमरी, भक्तें, भजन, धुर, भतरा, आल्हा, ढोला मारू, सोरंगा आदि गीत बिना वाद्य यंत्रों के तो कुछ लोक वाद्य यंत्रों के सहारे गाए जाते हैं। इनमें लोक नृत्य भी अपना विशेष महत्व रखते हैं। इन लोक नृत्यों में राई, बिहू, नागा, नट-पूजा, झूमरा, बिछुआ, चौगवी, बतकंभा, झागौर, दकनी, खोल, रवला, दिवारी, दवला, हुलकी, सुवा (नौरता) आदि पर हंस-खेल कर नाचने की परिपाटी है। बुन्देली के लोककवि ईसुरी को चमकाने में सुन्दरिया और गंगिया के लोकनृत्य तथा सुरीली तान, ढोलक, झांझ, मंजीरा, नगरिया, घुंघरू जैसे लोक वाद्य और धीरे पंडा जैसे गायन सहयोगियों का विशेष योगदान रहा है।

ढोलक ढमक झांझ की झमक ठनक नगरिया ठाने।
घुंघरू की छम-छमक छमा-छम मंजीरा मंजयाने।
सुन्दरिया गंगिया रंगरेजन भरी सुरीली ताने।
धीरे पंडा के गायन बिन ईसुर कितउं न जाने।
गंगाधर ने गति दई दयो बिहारी राग।
बुन्देली भूषण भई कबि ईसुर की फाग।।

- किशोर मंच संस्थान, महोबा

संस्कृति की अभिव्यक्ति : बुन्देली लोक कलाएँ

- डॉ0 कुमारेन्द्र सिंह सेंगर[16]

लोक कलाएँ भारतीय समाज की अनुपम विरासत हैं जो स्वतः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती हुईं आज भी सुरक्षित रूप में हमारे बीच उपस्थित हैं। लोक कलाओं में जन जीवन की सर्जनात्मकता सुरक्षित-संरक्षित है, साथ ही युगीन परम्पराएँ भी समाहित हैं। लोक कलाओं को जन जीवन की झाँकी स्वीकारा गया है पर जो लोग 'लोक' को अंग्रेजी शब्द 'फोक' का पर्याय मान कर लोक की व्याख्या करते हैं वे लोक-कलाओं का भी महत्त्व नहीं समझ पाते। लोक :ाब्द भारतीय समाज की प्राचीनता की तरह प्राचीन तथा भारतीय संस्कृति की पावनता की तरह पावन है। 'लोक' को अंग्रेजी के 'फोक' के पर्याय के रूप में स्वीकार कर उसको ग्रामीण, गँवारू रूप का सिद्ध करना अथवा समझना 'लोक' शब्द की विशालता के साथ अन्याय है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म-ग्रन्थों में लोक को विशिष्ट एवं व्यापक अर्थ में परिभाषित किया गया है। यहाँ लोक को सम्पूर्ण संसार, भुवन अथवा जगत् के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। यहाँ वर्णित त्रिलोक के अन्तर्गत 'पृथ्वी लोक' 'पाताल लोक' 'आकाश लोक' किसी भी स्थिति में गँवारू अथवा ग्रामीण संस्कृति के परिचायक नहीं हैं। संस्कृत में लोक शब्द स्थानवाची के साथ-साथ जीववाची भी है। ऋग्वेद में एक स्थान पर ऐसा मिलता है -

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रांस्तथा लोकां अकल्पयन्। (ऋ0 10/90/94)

श्रीमद्भगवत् गीता में 'लोक' शब्द को स्थान, समुदाय, मानव शरीर आदि के अर्थों में प्रयुक्त किया गया है -

विप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा। (गी/8/92)
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। (गी/9/33)

वेदों, पुराणों से निकल कर आये लोक शब्द में समय-समय पर परिवर्तन भी होते रहे। लोक, लोकायत, लोकाचार, लोक-कथा, लोक-गाथा, लोक-कला, लोक-व्यवहार जैसे शब्दों का प्रयोग जब हमारे द्वारा होता है तो मन-मश्तिष्क में जन-समूह से सम्बन्धित क्रिया-कलाप ही चित्रित होते हैं।

लोक कला में जितना प्राचीन इतिहास लोक का है उतना प्राचीन इतिहास कला का भी है। विशिष्ट संवेदनाओं, भावनाओं और अनुभूतियों से प्रेरित सजीव सर्जनात्मकता ही कला है। कला ही मनुष्य और पशु के मध्य अन्तर को स्पष्ट करती है। लोक कला सांस्कृतिकता के प्रवाह को भी दर्शाती है। लोक कला का सम्बन्ध मानव मन की आनन्दित अवस्था से है। आनन्ददायी स्थिति से सम्बद्ध होने के कारण उत्सव, पर्व, त्योहार, मेले आदि के समय आनन्द की अभिव्यक्ति लोक कला के माध्यम से होती है। भारतीय लोकजन व्रत, उत्सव, त्योहार आदि को हर्षोल्लास से मनाता है। इसी कारण क्षेत्र विशेष की पारम्परिकता को अपने में सहेजे, समेटे लोक कला का रूप सभी क्षेत्रों में अलग-अलग होने के बाद भी सुरम्य, सुसंस्कृत, मनमोहक लगता है। आँचलिक विशेषताओं से परिपूर्ण होकर लोक कला हर्षोल्लास के अवसरों को और जीवन्त बना देती है।

बुन्देली संस्कृति भी क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण विभिन्नता से भरी हुई है। इसी विविधता के कारण यहाँ की लोक कलाओं में सतरंगी बहार देखने को मिलती है। बुन्देली लोक कला की समृद्धता और मोहकता को यहाँ सम्पन्न होने वाले विविध पर्व-त्योहार, व्रत, उत्सव आदि के अवसर पर देखा जा सकता है। बुन्देली लोक समृद्धि के वैविध्य - लोक गीत, लोक नृत्य, लोक कथा, लोक गाथा, लोकोक्ति, लोक देवता, लोक कला, लोकाचार, लोक क्रीड़ाओं, लोक सभ्यता - में मनमोहकता के दर्शन आसानी से परिलक्षित होते हैं। लोक कलाओं में भूमि-भित्ति अलंकरण, मूर्तिकला, काश्ठकला, वेशभूषा आदि को स्वीकारा गया है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में त्योहारों, पर्वों, व्रतों, उत्सवों आदि के अवसर पर बनाये जाने वाले आलेखन, भित्तिचित्र, भूमि चौक, मांगलिक चिन्हों के द्वारा लोक कलाओं के दर्शन होते हैं। इन आलेखनों और मांगलिक चिन्हों में सर्वशक्तिमान स्वीकारे गये श्री गणेश के अतिरिक्त स्वास्तिक, सूर्य, चन्द्र, कलश, दीपक, वृक्ष, नाग, महिलाएँ, नदी, मछली आदि के साथ-साथ अन्य पशु-पक्षी भी बनाये जाते हैं। इन मांगलिक चिन्हों को स्वतन्त्र रूप से तो बनाया जाता है साथ ही इस क्षेत्र के विविध पर्वों, व्रतों के अवसर पर महिलाओं द्वारा इन्हें सम्मिलित रूप से बना कर लोक कला की समृद्धता और पावनता को उकेरा जाता है। कुनघुसू पूनौं अथवा गुरुपूनौं, नागपंचमी, हरछठ, सुआटा, अघोई आठें, दिवारी, गोधन, करवा चौथ आदि अवसरों पर लोक कलाओं की झाँकी मन को मोहती है। इन अवसरों पर चित्रण, आलेखन करने के लिए गोबर, जौ, चावल, गेरू, आटा आदि सामान्य घरेलू सामान की आवश्यकता होती है।

[16] सम्पादक - 'स्पंदन' 110, रामनगर, सत्कार गेस्ट हाउस के पास उरई (जालौन) उ0प्र0 285001 मो0- 9415187965

श्री गणेश, स्वास्तिक अथवा चक्राकार सतिया को भारतीय संस्कृति में पूज्य स्थान प्राप्त है। भारतीय हिन्दू संस्कृति के अनुसार श्री गणेश को आराध्य, प्रथम पूज्य देव के रूप में स्थान प्राप्त है। कार्यक्रम सम्पन्न होने के स्थान पर, पूजन वाले स्थान पर, दरवाजे के ऊपर श्री गणेश का चित्रांकन शुभकारी दृष्टि से किया जाता है। इसी तरह स्वास्तिक को भी भारतीय संस्कृति में देवतुल्य स्थान प्राप्त है। यह गतिशीलता का परिचायक समझा जाता है। अनुष्ठान आदि के अवसर पर स्वास्तिक निर्माण के पश्चात ही गणेश पूजन को प्रारम्भ किया जाता है। चक्राकार सातिया स्वास्तिक का ही रूप समझा जाता है। इसे शिशु जन्म पर गोबर के द्वारा बनाया जाता है, जिस पर जौ के दाने चिपकाये जाते हैं। शिशु जन्म के अवसर पर गतिशीलता, दुःखनाशक और सम्पन्नता का द्योतक मान कर इसे बनाया जाता है।

लोक कलाओं में इन प्रतीकों का अपना विशेष महत्त्व है। ये प्रतीक मात्र रेखांकन, चित्रांकन को पूरा ही नहीं करते अपितु भारतीय संस्कारों, संस्कृति के मूल्यों आदि को भी प्रसारित करते हैं। इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से, लोक कलाओं के द्वारा हमारे संस्कार, जीवन मूल्य स्वतः ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। नर-नारी को भारतीय संस्कृति में विशेष रूप से स्वीकार कर संस्कृति-सभ्यता के निर्माण-हस्तांतरण के लिए पूरक समझा गया है। सृष्टि की रचना भी इन्हीं दोनो से मानी गई है। इस पावन चिन्तन के कारण ही बुन्देली लोक कला अंकन में नर-नारियों को भी स्थान दिया जाता है। एक दूसरे की आकांक्षा और पूरक भावों को सामने लाते नर-नारियों के चित्रों में अधिकांशतः संख्या को भी महत्त्व दिया जाता है। विविध चित्रांकनों में सात की संख्या में नर-नारियों को दिखाया जाता है। सात की संख्या भारतीय संस्कृति में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण स्वीकारी गयी है। सप्तमातृकाओं की अवधारणा के साथ यहाँ सप्तऋषियों की भी मान्यता है। इसके साथ ही सात समुद्र के अतिरिक्त सात सोपान, सात काण्ड, सात पोर, सात गाँठ आदि को भी स्थान प्राप्त है। विवाह में भी सप्तपदी, सात भाँवरों की पावनता को माना गया है। इसी सांस्कृतिक महत्ता को बुन्देली लोक कला में चित्रित कर उसकी पावनता को भी स्थापित किया जाता है।

स्त्री के रूप में कलशधारिणी स्त्री का लोक कलाओं में विशेष महत्त्व है। ऐसा माना जाता है कि सम्पन्नता, समृद्धता का प्रतीक कलश मनुष्य के लिए कल्याण लेकर आयेगा। इसके अतिरिक्त कलशधारिणी स्त्री को दही की दहेंड़ी लिए हुई ग्वालिन भी बताया जाता है। चूँकि दही की महत्ता संस्कृति का अंग होकर हमारी लोक कला का महत्त्वपूर्ण भाग हो गया है; शुभ कार्य से बाहर जरने पर; नववधू के प्रथमागमन पर सर्वप्रथम दही का सेवन करवाना शुभ संकेत समझा जाता है। इसके पीछे सम्भवतः मनुष्य की आन्तरिक :क्ति अथवा उसके आन्तरिक सौन्दर्य को निखारने का भाव रहा होगा क्योंकि दही दूध की आन्तरिक शक्ति अथवा सौन्दर्य माना जा सकता है। इस शुभ का भान और समृद्धता की पहचान कलश मातृशक्ति नारी के साथ लोक कला की शोभा बनता है।

लोक कलाओं के अंकन में प्रायः सूर्य, चन्द्र आदि को भी दर्शाया जाता है। इसके पीछे देवत्व का भाव छिपा होने के साथ-साथ भारतीय चिन्तन भी समाहित रहता है। सूर्य, चन्द्र दोनों को प्रकाशवान मान कर जीवन में उज्ज्वलता लाने की अवधारणा निर्धारित की जाती है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा, सूर्य को मन की एवं बाह्य जगत की आँखें स्वीकार कर मनुष्य को अपने भीतर तथा बाहर का अवलोकन करने की शिक्षा भी दी जाती है। इसी प्रकार का संदेश दीपक के माध्यम से भी दिया जाता है। अंधकार दूर कर प्रकाश फैलाने की शिक्षा देते दीपक बुन्देली लोक कलाओं में विशेष रूप से चित्रित किये जाते हैं।

प्रकृति के अंग सूर्य, चन्द्र के अतिरिक्त वृक्ष, मछली, नाग, मोर आदि का चित्रण इनकी महत्ता को देखते हुए किया जाता है। वृक्षों का चित्रण इनकी फलदार स्थिति को देख कर विशेष रूप से किया जाता है। फलयुक्त जीवन की कामना इन वृक्षों के माध्यम से दर्शा कर इस तथ्य को सामने लाने का प्रयास होता है कि अपने घर में तथा आसपास समृद्धता का वास बना रहे। इसी तरह नाग (सर्प) का चित्रण लोक कलाओं में नागपंचमी के अतिरिक्त अन्य चित्रांकनों में भी होता है। नाग को शेषनाग का स्वरूप मानने के साथ-साथ काल का भी रूप स्वीकारा गया है। इससे प्रदर्शित होता है कि मानव को अपने क्रिया-कलापों के मध्य शाश्वत् सत्य के प्रतीक मृत्यु को नही भूलना चाहिए। नाग का अंकन समय का सदुपयोग करने की सीख भी देता है। मृत्यु का परिचायक नाग के साथ-साथ मछली को मनुष्य की आत्मा रूप में दर्शा कर मानव-मानव में प्रेम की एंारणा को पुश्ट करने की दृश्टि से बनाया जाता है। भावों का अमूर्त रूप इन्हीं विविध प्रतीकों के द्वारा लोक कलाओं में प्रदर्शित किया जाता है, जो मनमोहकता, सजीवता धारण करने के साथ-साथ संस्कृति-परम्परा ज्ञान से परिचित भी कराते हैं। संस्कृति, परम्परा का ज्ञान देने के लिए प्रतीकों का प्रयोग लोक कलाओं में करने के साथ-साथ यह हमारी सोच का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

पारम्परिक विवाह कार्यक्रमों में यही प्रतीक हमारी खुशी, हर्ष, उमंग को प्रदर्शित करते नजर आते हैं। विवाह संस्कारों और विविध पर्वों के अवसर पर चित्रित लोक कलाओं में हथेलियों की छाप बुन्देलखण्ड में विशेष रूप से घर की महिलाओं, बच्चियों द्वारा लगायी जाती है। दो हथेलियों की युगल छाप हमारी पारिवारिक एकता, सहयोग तथा पंच तत्त्वों का प्रतीक है। लोक कलाओं में चित्रित ये प्रतीक सौन्दर्य के साथ हमारे सुकुमार और ललित भावों के स्त्रोत हैं। लोक कलाएँ हमारे मन की गहराइयों में समा कर हमारी संवेदनाओं को व्यक्त करतीं हैं, इसी कारण हमारे पर्व, त्योहार, व्रत आदि पर लोक कलाओं की उपस्थिति पाई जाती है।

बुन्देलखण्ड के प्रमुख त्योहार और उन पावन अवसरों पर निर्मित चित्रांकनों को संक्षेप में समझा जा सकता है।

(1) कुनघुसू पूनौं अथवा गुरु पूनौं

यह पर्व आषाढ़ शुक्ल की पूर्णिमा को मनाया जाता है। घर परिवार में पूजन-अनुश्ठान का कार्य घर की वरिष्ठ महिलाओं द्वारा किया जाता है। दीवार पर गोबर-मिट्टी की पुताई कर उस पर हल्दी से आऔति बना कर उसकी पूजा की जाती है। इस पर्व के चित्रांकन में स्वास्तिक को विशेष रूप से दर्शाया जाता है।

(2) नाग पंचमी

श्रावण शुक्ला पंचमी को महिलाओं द्वारा नागों की पूजा का प्रचलन है। इस अवसर पर घर के मुख्य द्वार पर दोनों ओर आलेखन रूप में पाँच नागों की ओंति बना कर महिलाओं द्वारा पूजा की जाती है। यह पर्व परिवार को नुकसान न होने की कामना से मनाया जाता है।

(3) हरछठ

बुन्देलखण्ड में यह पर्व उन महिलाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता है जो पुत्रवती होती हैं। पुत्रों की दीर्घायु की कामना करती हुईं माताएँ इस व्रत को भाद्रपद ष्ण षष्ठी को मनाती हैं। इस अवसर पर दीवार पर चित्रांकन कर उसका पूजन किया जाता है। हरछठ के चित्रांकन में लोक कलाओं के लगभग सभी प्रतीकों का प्रयोग होता है।

(4) सुआटा

बुन्देली बालक-बालिकाओं द्वारा मनाया जाने वाला यह एक प्रकार का क्रीड़ात्मक विधान पर्व है। यह अनुष्ठानिक कार्यक्रम भाद्रपद पूर्णिमा से लेकर आश्विन पूर्णिमा तक चलता है। दीवार पर सुआटा नामक दैत्य का चित्रांकन गोबर आदि से किया जाता है। इसके समापन पर टेसू वीर का विवाह झिंझिया से होता है। इस आयोजन के पश्चात सुआटा के अंग-प्रत्यंगों को तोड़ कर फेंक दिया जाता है। बुन्देलखण्ड के इस विशेष लोकोत्सव में सुआटा का चित्रांकन बालिकाओं द्वारा किया जाता है।

(5) अघोई आठें

कार्तिक अष्टमी को मनाये जाने वाले इस पर्व में भी कलात्मक चित्रांकन किया जाता है। भित्ति-अलंकरणों के रूप में आठ पात्रों, आठ मानवोंतियों की रचना की जाती है। दीवार पर अंकित अलंकरण के सामने आठ पात्रों में मिष्ठान्न रख कर पूजा की जाती है।

(6) दिवारी

दीपावली का पर्व पूरे देश भर में मनाया जाता है। बुन्देलखण्ड में इसे दिवारी के नाम से सम्बोएिंत किया जाता है। इस पर्व की पारम्परिक पूजा में भूमि को गोबर अथवा मिट्टी से लीप कर 'सुरौती' का चित्रांकन किया जाता है। इस भूमि अंकन के सामने आटे से चौक पूर कर घी से भरे सोलह दिये जला कर विएिंपूर्वक पूजन किया जाता है।

(7) गोधन

गोबरधन पूजा को गोधन नाम से जाना जाता है। यह कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाया जाता है। मकान के आँगन में गोबर से गोबर्धन पर्वत बना कर उसी पर अन्य प्रतीकों को बनाया जाता है। भूमि अलंकरण के इस रूप में सारा चित्रांकन गोबर से ही किया जाता है। पूजागृह से जोड़े रखने की दृश्टि से गोएिंन के चित्र से लेकर पूजागृह तक खड़िया अथवा गेरू से दो समानान्तर रेखाओं को खीचा जाता है।

(8) करवाचौथ

कार्तिक ष्ण चतुर्थी को यह पर्व विवाहित स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। पति की दीर्घायु की कामना से सम्पन्न होने वाले इस व्रत में भूमि पर अथवा दीवार पर आलेखन किया जाता है। इस आलेखन में समस्त प्रतीकों की उपस्थिति दिखायी देती है। रात्रि को महिलाओं द्वारा पूजन के समय प्रयुक्त पात्र (करवा) को विविध प्रतीकों, बेलों आदि से अलेंत करती हैं।

लोक कलाएँ हमारे अन्तर्मन से जुड़ी हैं। आज भले ही युवा पीढ़ी इससे अनजान हो, इसके अंकन-पूजन को ढकोसला बताती हो पर इन प्रतीकों द्वारा समय-समय पर विविध पर्वों, त्योहारों पर विविध संदेशों और हमारी भावनाओं की पवित्र अभिव्यक्ति होती है। माँ की ममता, पति की दीर्घायु की कामना, कुमारी कन्यायों द्वारा उपयुक्त वर की याचना आदि भाव हमारी संसेंति, संस्कारों के द्योतक हैं। लोक कलाएँ मनुष्य को समाज से जुड़े रहने का बोध कराती हैं और समाज हित का संकल्प कराती हैं। अक्षत ऊर्जा और माधुर्य के स्त्रोत, शिक्षा और ज्ञान के भण्डार ये प्रतीक लोक कलाओं की जीवन्तता को हमारे जीवन में भरते हैं। इनके द्वारा व्यक्ति खुशियाँ पाता है, जीने की दृष्टि एवं विश्वास पाता है। लोक कलाओं के नाम पर होते चित्रांकन भव्य, समृद्ध बुन्देली संसेंति को, परम्परा को और समृद्ध, और पुष्ट, और भव्यता प्रदान करते हैं। अतः कह सकते हैं कि जितना आवश्यक हमारे लिए जीवन है, उतनी ही आवश्यक लोक कलाएँ भी हैं।

1857 ई0 के संग्राम में बुन्देली नारियों का योगदान

-प्रो बिहारीलाल बबेले[17]

भारतीय संस्कृति ने नारी और पुरूष को परस्पर सहचर के रूप में रूपायित किया है। वेदोंपनिषदीय वाङःमय में विदुषी नारियों ने ऋषियों के समानान्तर अप्रतिम सृजन कार्य किया है। संपूर्ण भारतीय ऐतिहासिक संप्रेषण की यही परम्परा रही है। बुन्देलखण्ड की विदुषी एवं वीर रणचण्डी नारियों का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अक्षुण्ण निधि है। समर में भी रेखांकित है। बुन्देलखण्ड की इन महान नारियों की दीपशिखा रानी लक्ष्मीबाई जालौन राजवंश की ताई बाई, झलकारी बाई, रामगढ़ की रानी, अवन्तीबाई, जैतपुर परीक्षत की विधवा पत्नी राजो आदि के अलावा रानी लक्ष्मीबाई की सहायिका मोतीबाई व जूहीबाई (दोनों मुसलमान) एवं काशीबाई, सुंन्दर व मुंदर आदि आदि।

स्वाधीनता की महाज्योति : रानी लक्ष्मीबाई

सभी अंग्रेज सेनापतियों और इतिहासकारों ने इस सत्य तथ्य को माना है कि बुन्देलखण्ड के महान वीरों व वीरांगनाओं जैसा मुकाबला भारत के सम्पूर्ण स्वातंत्र्य समर में नहीं हुआ। यहाँ क्रान्ति का चरमोत्कर्ष था और संप्रति नाना स्वातंत्र्य समर पर प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं ने यहां के क्रान्तिकारियों की उपेक्षा की है। खैर यहां की माटी की सुगन्ध और ही है।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई अप्रतिम थी। बचपन का उनका नाम मनु था। जन्म 19 नवम्बर 1835 (कार्तिक वदी 14) में काशी के मोरोपन्त ताम्बे की धर्मपत्नी भागीरथीबाई से हुआ था। मनुबाई के पूज्यपिता काशी से बिठूर बाजीराव पेशवा के पास चले गये। बचपन में अपने सौन्दर्य के कारण उन्हें छबीली कहा जाता था। बाजीराव की कोई संतान न थी। इसलिये उन्होंने घोड़ोपंत नामक बालक को गोद लिया, जो बाद में नाना साहब की संज्ञा से अभिहित हुआ और कानपुर क्षेत्र में पेशवा बनकर 1857 ई0 की क्रान्ति में भाग लिया। छबीली मनु का बचपन नाना के साथ घुड़सवारी और युद्धादि खेलों में बीता। इधर झाँसी के राजा गंगाधर राव विधुर थे। छबीली का विवाह 14 वर्ष की आयु में इनसे हुआ। उस समय एक पॉलिटिकल एजेन्ट डनलप उनका सहायक परामर्शदाता था। 21 नवम्बर 1853 ई0 में गंगाधर राव की मृत्यु हो गयी। परन्तु इसके पूर्व ही उन्होंने व रानी लक्ष्मीबाई साहब ने दामोदर राव को गोद ले लिया था। 1854 ई0 में डलहौजी की हड़पनीति में आंग्ल राज्य में मिला दिया गया था। रानी व जनता को आत्यंतिक कष्ट हुआ। रानी साहिबा इस समय 18 वर्ष की ही थीं कि उन्होंने 1857 की महाक्रान्ति में दीपशिखा बनना स्वीकार किया। 4 जून, 1857 में जबकि वह 21 वर्ष की थीं कि 8 जून, 1857 ई0 में उनका व क्रान्तिकारियो का झाँसी पर पूर्ण कब्जा हो गया। 11 माह तक उन्होंने राज किया। उनके 11 माह के शासन संचालन में प्रजा सुखपूर्वक रह रही थी। रानी लक्ष्मीबाई बहुत ही प्रज्ञावान और धार्मिक नारी थी। वह प्रतिदिन महालक्ष्मी मन्दिर में दर्शन करने जाती थी। इससे वह नवऊर्जा उपलब्ध करती थी। किन्तु भाग्य को कुछ और ही मंजूर था और अंग्रेज हूरोज अपनी सेना के साथ व तेज धूप और जंगलों को पार करते हुये झाँसी का किला फतह कर लिया गया। इसमें बहुत अधिक युद्ध सामग्री प्रयुक्त हुई। यह अनुमान किया जाता है कि स्वातंत्र्य समर का यह दुर्ग आगे चलकर एक क्रांति का प्रमुख केन्द्र बनने जा रहा था। क्योंकि बंगाल रेजीमेन्ट यहाँ अपने को आजाद घोषित करके आ रही थी। दिल्ली, मेरठ, कानपुर के क्रांतिकारी भी आ रहे थे और राजा मर्दन सिंह व तात्यां टोपे भी उनकी सहायता का ताना बाना बुन रहे थे, पर नमकहराम देश द्रोही दूल्हाजू ने भितरघात से सब असफल कर दिया। ऊपर से हूरोज की षड़यंत्री चाल और सीधा हमला करने की नीति के कारण भारतीय सेनायें (भीतरघात के कारण) बिखर गयीं और हूरोज ने किले पर आधिपत्य जमा लिया। हालांकि हूरोज को लोहे के चने चबाने पड़े थे। रानी की मुक्ति सेना किले में सुदृढ़ थी। युद्ध 30.03.58 तक चला। आठ दिन घनघोर युद्ध हुआ, लेकिन दूल्हाजू ने विश्ववासघात करके ओरछा फाटक खोल दिया और रानी ने सदा सदा के लिए झाँसी त्याग दिया। कालपी, ग्वालियर क्षेत्र से जाते हुये उनका युद्ध आंग्लसेना से हुआ और रानी ने वीरगति पायी। हूरोज घबरा गया था। यूरोपीय अखबारों में बहुत आलोचना हुयी थी। उसने रानी को श्रद्धांजलि देते हुये कहा था। ैभ्मि ़ जीम इतंअमेज जीमउ ंससण् भारतीय प्रथम स्वतंत्रता समर में इतना कोई भी वीर न था। तभी तो महाकवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने गया था।

> ''सत्तावन में चमक उठी थी, वह तलवार पुरानी थी,
> बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी
> खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।''

रानी अमर हो गयीं और शातिर अंग्रेज सदा के लिये अभिशप्त हो गये थे। रानी की शहादत काम आई और भारत 1947 में स्वतंत्र हो गया। उनकी स्मृति में जयंती पर शासन हर वर्ष महोत्सव रचता है।

---

[17] नेहरू महाविद्यालय ललितपुर में इतिहास के विद्वान प्राध्यापक रहे प्रो0 बबेले अद्यावधि इतिहास लेखन कार्य में निरत है। इसके अतिरिक्त आप जिले की सहरिया जनजाति के उत्थान हेतु संघर्ष शील है। - सम्पादक

वीरांगना रानी की हमशक्ल झलकारीबाई :-

झलकारी बाई आत्यंतिक विश्वसनीय नारी बिग्रेड की सेनापति थी। अंग्रेज उसे रानी समझते रहे थे। दुर्गादल की वह सिंहवाहिनी थी। उन्होंने अंग्रेजों को युद्ध में खूब छकाया था, पर अन्ततः शहीद हो गयी।

झाँसी से 8 कि.मी. पर भोजला ग्राम में मूलचंद उर्फ सदू कोरी के यहां झलकारीबाई का जन्म 22 नवम्बर 1830 ई0 में हुआ था। अपने माता-पिता की अकेली संतान झांसी में उन्नाव दरवाजा के निकट निवासी रानी के सैनिक श्री पूरन कोरी के साथ विवाह करके यहां आयी थी। रानी के रूप में झलकारी बाई की युद्धभूमि में प्रस्तुति अप्रतिम और अंग्रेजी सेना को आश्चर्य में डालने वाली थी। झलकारी बाई उनाव व भाण्डेरी द्वार को संभाले थीं। रानी पर गहराये संकट काल में जब रानी ने किला छोड़कर बाहर से मोर्चा संभालने की इच्छा बताई, तो अत्यंत सूझबूझ के साथ रानी को कुशलतापूर्वक किले से बाहर छलांग मारकर जाने का पथ प्रशस्त किया था। झलकारीबाई ने रानी की वेशभूषा बना स्वयं को रानी घोषित करते हुये घोड़े पर सवार होकर वीरतापूर्वक काफी समय तक अंग्रेजों को युद्ध में उलझाये रखा किन्तु बलिदान हुई। इस तरह झलकारी बाई ने स्वामिभक्ति तथा कर्त्तव्यपरायणता की वेदी पर अपने प्राण न्यौदावर किये। झलकारी बाई की यह महान गाथा भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में दर्ज की जायेगी।

रामगढ़ की रानी अवन्ती बाई :-

डॉ0 वृन्दावन वर्मा जी ने रामगढ़ की रानी उपन्यास लिखा। मध्य प्रदेश के सिवनी जनपद में मनकोढ़ी में उत्पन्न राव जुझार सिंह की बेटी थी अवन्तीबाई। उनका विवाह रामगढ़ नरेश श्री विक्रमादित्य जी से हुआ था। रानी अवन्तीबाई सुखपूर्वक रह रही थी कि पति विक्षिप्त हो गये। दोनों पुत्र अमान सिंह व शेर सिंह नाबलिग थे। इसलिये रानी संरक्षिका बनकर शासन करने लगी थी। यह 1857 ई0 का क्रांन्ति का समय था और रोटी और कमल पुष्प गांव गांव नगर-नगर बांटे जा रहे थे। रामगढ़ की रानी ने कमल का फूल और रोटी स्वीकार करके क्रांति का बीड़ा उठा लिया था। विलिंग्टन अपनी सेना लेकर रामगढ़ आ पहुँचा था। लेकिन युद्ध में रानी ने उस पर वार किया और विलिंग्टन घोड़े से गिर पड़ा। उसने रानी से प्राणों की भीख मांगी ओर रानी से जान बख्श दी। मण्डला के वीर राजपूतों के साथ वह क्रांति के भारतीय परिदृश्य में समापन की ओर जाने वाले युग संध्या में भी लड़ रही थीं। रामगढ़ का पतन हो गया। भीषण संघर्ष में रानी मारी गयी। रानी के रण कौशल शौर्य पराक्रम, साहस आदि का उल्लेख सी0 यू0 बिल्स ने लिखा है, वह महान थी। वीरता और साहस की मूर्ति थी। वह सदा अमर रहेगी और इतिहास सदा अवन्तीबाई के गुण गायेगा।

त्याग की मूर्ति महरानी राजो :-

रानी राजो का बहादुर सिंह परमार ग्राम के जागीरदार के यहां जन्म हुआ था। पिता केशरी सिंह ने पुत्र पारीछत का राजो से विवाह कर दिया। रानी को महाराज पारीछत का व्यायाम शस्त्र संचालन आकर्षित करता था। बुढ़वा मंगल मेले के बाद सूपा चरखारी के मेले में सभी राजाओं द्वारा पारीछत को अध्यक्ष चुना जाना बहुत अच्छा लगा था। धीरे-धीरे क्रान्ति के समाचार आने लगे। उन्होंने राजा पारीछत को युद्ध में जाने का आह्वाहन किया। राजा उत्साह के साथ युद्ध में गया। बघौरा के युद्ध का दिन आया। पांच विगत युद्ध में पारीछत की सेना काफी नष्ट हो चुकी थी। राजा बघौरा युद्ध लड़ रहे थे और रानी ने जैतपुर का मोर्चा संभाला था एमं अपने सैनिकों को साथ लेकर अंग्रेजों की विशाल सेना से युद्ध लड़ा था। इस युद्ध में कप्तान हडसन की मौत हो गयी थी। अंग्रेजों ने प्रतिशोध में भयानक युद्ध किया। पारीछत मारे गये लेकिन रानी ने जैतपुर जीत लिया। लेकिन नृपत के बहनोई ने अंग्रेजों की चाल में आकर रानी को छल से पराजित कर दिया। रानी ने ओरछा राज्य में शरण ली थी।

वराह अवतार पूजा और बुंदेलखण्ड

- डॉ कैलाश बिहारी द्विवेदी

ततः समक्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुट पद्मलोचनः ।
रसातलादुत्पल पत्र सान्निभः समत्थितो नील इवाचलो महान ।।
जलौधमग्ना सचराचरा धरा विषाण कोट्याधखिल विश्व मूर्तिना ।
समुद्धृतायेन वराहरूपिणा समे स्वयंभूर्भवान् प्रसीदतु ।।

वेदकालीन समाज में प्रमुख देवता थे - मित्र, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुत आदि। इस समाज में जिन प्राकृतिक शक्तियों का सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव होता था, उन्हीं की पूजा-उपासना की जाती थी । धीरे-धीरे बहुदेववाद का विकास हुआ। उसमें प्रमुख पंच देवों - विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश तथा सूर्य की उद्भावना हुई। हिन्दू अर्थात् सनातन धर्मी पूजा सभी देवताओं की करते हैं किंतु जिसे किसी देवता की एकान्तिक साधना करती होती थी, वह इनमें से एक देवता को इष्ट मानकर उपासना करता है; मानता सभी को है । साधना अथवा उपासना की इस पद्धति के अनुसार निर्मित मंदिरों को पंचायतन मंदिर[1] कहा जाता है । इस प्रकार के मंदिरों के बीच में एक बड़ा मंदिर तथा दिशाओं के चारों कोणों पर चार छोटे मंदिर बनाए जाते थे । यह गणेश विमर्शनी तंत्र, रामार्चन चंद्रिका तथा गौतमियां तंत्र के अनुसार निर्धारित हैं। निर्धारित क्रम में व्यतिक्रम अनिष्टकारी माना जाता है।

पंचायतन मंदिर का संभवतः सबसे प्राचीन नमूना देवगढ़ (जिला ललितपुर) का गुप्तकालीन विष्णु मंदिर है । इसके अन्य देवताओं के छोटे मंदिर नष्ट हो गए हैं । यदि मंदिर के लिए स्थान छोटा होता है तो गर्भगृह के कोण में प्रमुख अर्थात् इष्ट देवता के अतिरिक्त अन्य चार देवों की दिशा कोणों में छोटी मूर्तियां यथाक्रम स्थापित की जाती हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि सनातन धर्म के वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य तथा सौर्य संप्रदायों में जब दूरियां बढ़ने लगी होगीं तो दूरदर्शी संतों ने सनातन धर्म के समन्वयकारी स्वरूप की रक्षा करने के लिए पंचदेव पूजा और तदर्थ पंचायतन मंदिरों के निर्माण का विधान किया होगा ।

आदि शंकराचार्य (आठवीं शताब्दी) ने पंचदेवों के साथ कुमार कार्तिकेय को और शामिल कर दिया । इसका कारण यह हो सकता है कि दक्षिण भारत में कार्तिकेय पूजा का बहुत प्रचलन है । दक्षिण में कार्तिकेय के अनेक प्रसिद्ध मंदिर हैं । इन पंचदेवों में संसार की उत्पत्ति और पालन-पोषण का उत्तरदायित्व भगवान विष्णु का है उन्होंने अपनी योगशक्ति से ब्रह्मा जी को अपनी नाभि से उत्पन्न कर संतति-विस्तार का कार्य उन्हें सौंप दिया । पालन-पोषण तथा संवरण का शेष कार्य वे स्वयं लिए रहें । अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिए उन्हें दस अवतार लेने पड़े । दस अवतारों की कथा पुराण सम्मत है । इसके बाद कपिल, ऋषभ आदि को विष्णु का अंशावतार मानते हुए 24 अवतार माने जाने लगे । इनमें बुद्ध को भी शामिल कर लिया गया और होने वाले कल्कि अवतार की गणना भी इसी संख्या में सम्मिलित कर ली गई । आज कलयुग
जब अपने चरम यौवन पर है । इस समय अनेक लोग अपने आप को अवतार घोि-त कर चुके हैं । एक सज्जन ने तो यहां तक कह दिया था कि ''आइ एम नॉट द इनकारनेशन ऑफ द गॉड, आइ माईसेल्फ इज द गॉड ।'' यद्यपि वे एक बड़े योगी थे ।

सभी दस अवतार प्रयोजनमूलक हैं । अपना प्रयोजन सिद्ध कर वे अंतर्धान हो जाते हैं किंतु नौवें और दसवें अवतार क्रमशः राम और कृष्ण के प्रयोजनों की सिद्धि दीर्घकालिक थी । अतः उन्हें दीर्घकाल तक अपना लोक छोड़कर मर्त्यलोक

1.पंचायतन मंदिर टीकमगढ़ में सिद्ध बाबा के मंदिर में आज भी विद्यमान है । इस विशाल शिव मंदिर के साथ छोटे तीन मंदिर भी सुरक्षित हैं, एक नष्ट हो गया है, कुल चार देवताओं के थे । इस स्थान पर एक छोटी मड़िया बना दी गयी है । ग्राम टीला जिला टीकमगढ़ में भी एक चन्देलकालीन पंचायतन मंदिर विद्यमान है ।

में मानव शरीर धारण कर रहना पड़ा ।

भगवान विष्णु को इस अवतार लीला में तीसरा अवतार वराह का लेना पड़ा । एक मत के अनुसार दैत्य हिरणकश्यपु का भाई हिरण्याक्ष पृथ्वी का हरण कर उसे पाताल लोक में ले गया और तरह-तरह के अत्याचार करने लगा, जिससे त्राहि-त्राहि मच गई तथा सृष्टि की सारी व्यवस्था बिगड़ गई । तब भगवान विष्णु ने विशालकाय बराह का रूप धारण किया और अपने कराल दंष्ट्रा (उठा हुआ दंत-शुण्ड यानि खीस) से हिरण्याक्ष का संहार कर पृथ्वी को अपने दंष्ट्रा पर टांगकर ले आये ओर उसे यथास्थान स्थापित किया ।

वराह का वर्णन अनेक पुराणों में है, परंतु दस साढ़े दस हजार श्लोकों के ग्रंथ में मात्र दो अध्याय ही ऐसे हैं, जिनमें बराह अवतार की चर्चा है । एक अध्याय में वराह द्वादशी (माघशुक्ल द्वादशी) के माहात्म्य को निरूपित किया गया है । एक अन्य अध्याय (अध्याय 114) में उनके स्वरूप और उद्धारित पृथ्वी द्वारा उनकी स्तुति है । इसी अध्याय में कुछ दार्शनिक प्रश्नों का समाधान भी उनके द्वारा किया गया है ।

भागवत महापुराण में दशावतारों की कथा में वराह अवतार की कथा अधिक विशद रूप में कही गई है । उसके अनुसार प्रलय काल में पृथ्वी जब जलमग्न हो गई थी तब भगवान विष्णु ब्रह्मा जी की नाक से एक अत्यंत लघुकाय बराह का रूप धारण कर निकले और तुरंत ही नील पर्वत के समान विशालकाय रूप धारण कर दंष्ट्रा से पृथ्वी को जल से बाहर निकाला । पद्मपुराण के अनुसार मत्स्य का रूप धारण कर पृथ्वी को जल से बाहर निकाला था । पुराणों की मतभिन्नता का कारण यह प्रतीत होता है कि उनका मुख्य उद्देश्य आधिदैविक तथा आधिभौतिक सिद्धांतों को सामान्य जन को एवं अन्य विविध समाजोपयोगी विषयों को बोधगम्य बनाने के लिए उनका कथात्मक रूपांतरण किया गया है । यहां हमारा उद्देश्य पुराणों की मतभिन्नता का वर्णन तथा उनकी विवेचना करना नहीं है । हमारा उद्देश्य वराह अवतार के प्रति बुंदेलखण्ड में पूजा भाव पर विचार करना है । बुंदेलखण्ड में विष्णु के अतिरिक्त उनके वराह अवतार के प्रति भी श्रद्धा-भक्ति में कोई कमी नहीं थी । इसका प्रमाण इस क्षेत्र में प्रभूत संख्या में वराह अवतार की मूर्तियां उपलब्ध होना है।

वराह मूर्तियां दो रूपों में पाई जाती हैं । एक नृवराह जिनमें संपूर्ण देहयष्टि पुरुषाकृति एवं भगवान विष्णु के लक्षण प्रतीकों - शंख, चक्र, गदा, पद्म से अलंकृत होती है इनका शिरोभाग वराह का होता है । दूसरे पशु वराह मूर्तियां हैं । कहीं इनके स्वतंत्र मंदिर हैं, कहीं मंदिरों के गोपुरों (शिखरों) पर या पार्श्व भित्तियों पर अन्य अवतारों अथवा अन्य देवताओं के साथ उनकी मूर्तियां उत्कीर्णित हैं । मंदिर शिखरों या पार्श्व भित्तियों पर उत्कीर्णित लगभग सभी मूर्तियां नृवराह की पाई जाती हैं । मंदिरों में स्थापित नृवराह मूर्तियों में दंष्ट्रा पर नारी रूप में पृथ्वी लटकी है तथा पदतल में बहुफणधारी नाग (शायद शेषनाग) दबा हुआ है । उसके फणों के बीच मुकुटधारी नर मूर्ति उभरी हुई है । विविध ज्ञात संदर्भों के अनुसार कुछ वराह मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है -

कस्वा बानपुर में मध्यकालीन शेषशायी भगवान विष्णु की एक आदमक़द मूर्ति के साथ वराह की मूर्ति प्राप्त हुई थी । यह मूर्ति झांसी के राजकीय संग्रहालय में रखी है ।(मूर्ति सं0 83) चांदपुर जिला ललितपुर में पशुवराह की मूर्ति है । देवगढ़ जिला ललितपुर में पहाड़ी पर स्थित नृवराह का गुप्तकालीन मंदिर है, जिसका केवल अधिष्ठान शेष है । ललितपुर के सीरोंन खुर्द में अन्य मूर्तियों के साथ वराह मूर्ति संग्रहीत है । दूधई, ललितपुर चंदेलकाल में चंदेलों की प्रादेशिक राजधानी रही है । एक चंदेल राजकुमार वहां का क्षत्रप रहा है । यह पुरातत्व की दृष्टि से एक समृद्ध स्थान है यहां वराह मंदिर है । यहां से प्राप्त पशुवराह की एक मूर्ति राजकीय पुरातत्व संग्रहालय लखनऊ में रखी है । मदनपुर जिला ललितपुर से प्राप्त विशालकाय वराह प्रतिमा गौर पुरातत्व सागर संग्रहालय में सुरक्षित है । झांसी से प्राप्त एक वराहमूर्ति राजकीय पुरातत्व संग्रहालय लखनऊ में है । कालिंजर जिला बांदा के किले के प्रांगण में 10 फीट लंबी नृवराह की मूर्ति पड़ी हुई है ।

मध्य प्रदेश के सागर जिले के एरन (समुद्रगुप्त के समय का प्रसिद्ध नगर एरिकिन) नामक स्थान पर विशाल पशुवराह की मूर्ति है, जिसकी मुख से लेकर पूंछ तक की लंबाई 9.30 मीटर तथा ऊँचाई 3.75 मीटर है । यह मूर्ति प्रारंभिक गुप्तकाल की है । हूण शासक तोरमाण के राज्यकाल के प्रथमवर्ष के संबंध में उसके ऊपर एक लेख उत्कीर्ण है । पीठ पर ऋषियों, विद्याधरों, राशियों, देवी-देवताओं और ब्रह्मा जी की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं । एरन गांव के समीप बीना नदी के तट पर नृवराह की एक मूर्ति थी । अब यह मूर्ति सागर विश्वविद्यालय के संग्रहालय में सुरक्षित है । ईश्वरपुरा जिला सागर बामोरा मंडी में वराह प्रतिमाएं उपलब्ध हैं । देवरी में भी शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण वराहमूर्ति है । जबलपुर जिले में करनपुर में विशालकारय वराहमूर्ति, कारी तलाई में विष्णु मंदिर के भग्नावशेषों में अन्य प्रतिमाओं के साथ वराह प्रतिमा है । पनागर में वराह की विशाल प्रतिमा है । विलहरी में विष्णु-वराह मंदिर में वराह की उत्कृष्ट प्रतिमा है । मझौली और रीठी में भी वराह प्रतिमाएं हैं । विदिशा जिले में उदयगिरि की गुफा क्रमांक 5 में वराह की प्रतिमा है । रायकृष्णदास ने लिखा है कि उदयगिरि में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के बनवाए हुए मंदिरों के बाहर पृथ्वी का उद्धार करते हुए वपुष्मान वराह अंकित है । चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपनी भौजाई ध्रुवस्वामिनी का शकों से उद्धार किया था । इस मूर्ति में उस उद्धारक के तेज और वीर्य की स्पष्ट छाप है । पठारी गांव के पूर्व में वराह की अपूर्ण विशाल प्रतिमा है । जिला पुरातत्व संग्रहालय विदिशा में भी वराह मूर्ति है । छतरपुर जिले के विश्व प्रसिद्ध पर्यटन केन्द्र खजुराहो में विशालकाय पशुवराह का मंदिर है । इसके ऊपर अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं । खजुराहो और धुवेला के संग्रहालयों में रखीं मूर्तियां चंदेलकालीन हैं । पन्ना जिले के खोह ग्राम में दुर्लभ वराह प्रतिमा है । सतना जिले के रामवन संग्रहालय में भरहुत से प्राप्त वराह की मूर्ति उपलब्ध है । दमोह जिले में नोहटा से प्राप्त वराहमूर्ति फुटेरा तालाब दमोह पर स्थित है । ग्वालियर संग्रहालय में बड़ोह और सुहानियां से वराह और वाराही की कुछ मूर्तियां हैं । भोपाल के बिड़ला मंदिर संग्रहालय में नृवराह की 10वीं सदी की नृवराह की मूर्ति थानेगांव जिला रायसेन से प्राप्त, यज्ञ वराह की की समसगढ़ जिला सीहोर से प्राप्त, वाराही आशापुरी संग्रहालय रायसेन से प्राप्त मूर्तियां सुरक्षित हैं । दतिया में सेंवढ़ा रोड पर केवलारी ग्राम में तथा सनवई ग्राम में एक-एक वराहमूर्ति है ।

यह बुंदेलखण्ड की ज्ञात मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण है । इसके अतिरिक्त भी यहां के गांवों में यत्र-तत्र अनेक मूर्तियों के बिखरे होने की संभावना है । अभी एक-डेढ़ वर्ष पूर्व श्री बाबूलाल द्विवेदी (छिल्ला) ने बानपुर के श्री कैलाश नारायण पटवारी के खेत के एक मंदिर के भग्नावशेष के पास मिट्टी में दबी पशु वराह मूर्ति का पता लगाया था, जो 4 फीट लंबी तथा लगभग इतनी ही ऊँची है । 8-9 माह पहले जब मैं उस मूर्ति को देखने गया तो लौटते समय मुझे किसी कलात्मक पत्थर का कुछ हिस्सा बारी (बागड़) के छेंके के पास बारी में और कुछ हिस्सा मिट्टी में गड़ा हुआ दिखा तो मैंने कूड़ा-करकट हटा कर देखा, तब पता लगा कि वह भी

पशुवराह की एक मूर्ति है जो पहली मूर्ति से छोटी है । इसी प्रकार की एक काफी बड़ी पशुवराह की मूर्ति घरनुमा मंदिर में ग्राम भेलसी जिला टीकमगढ़ में स्थित है ।

हाल ही में दैनिक नवभारत ग्वालियर दिनांक 13 जुलाई 2007 के समाचार पत्र से ज्ञात हुआ कि दतिया जिले में ग्राम हथलब और ग्राम पलोथर थाना जिगना में लगभग 5 फुट ऊँची नृवराह की मूर्ति मिट्टी में दबी मिली है । वास्तव में हथलब के प्राचीन मंदिर से तीन वर्ष पहले यह मूर्ति चुरा ली गई थी । इसके भरी वजन के कारण मूर्ति चोर उसे ले नहीं जा सके तो जंगल में गाड़ गए । ग्रामीणों के आंदोलन और पुलिस की सक्रियता से चोर उसे ले नहीं जा सके । मुखबिर की सूचना पर पुलिस ने उस सुन्दर और ऐतिहासिक मूर्ति को बरामद कर लिया । और न जाने कितनी मूर्तियां ग्रामों में उपलब्ध कितनी खण्डित मूर्तियां मकान की नीवों में दब गई होगीं और कितनी चोरों के द्वारा विदेश चली गई होगीं ?

बुन्देलखण्ड के बाहर भी गुजरात में वराह मंदिर स्थित हैं ·

बुंदेलखण्ड में जितने वराह मंदिरों और मूर्तियों का पता चला है, उतना संभवतः देश में और कहीं पाया जाना विदित नहीं है इसे देखकर एक पुरातत्व विद्वान का मत है कि ऐसा प्रतीत होता कि बुन्देलखण्ड में वैष्णवधर्म को वराह अवतार एक विशेष देन है । उनका कहना है ''From early times the cult of the boar found the deep devotion in the local tribes. Its totesmistic parts can be made out from the cave art in which it has earliest manifestation." अर्थात् प्राचीन काल से आदिम जातियों में प्रतीकवाद (टोटमवाद) के आधार पर गुफाचित्रों में जो व्यक्त हुआ है, उनका वराह के प्रति भक्तिभाव इसी सिद्धांत के आधार पर रहा है किंतु यह मत मानने योग्य नहीं है क्योंकि टोटम के सिद्धांत के अनुसार जिस पशु को टोटम मान लिया जाता है, उसे पूज्य मानते हुए मारना और मांस खाना निषिद्ध माना जाता है । बुंदेलखण्ड में ने केवल आदिवासियों में बल्कि अन्य मांसभोजी हिन्दू जातियों में भी सुअर का मारना और उसका मांस खाना निषिद्ध नहीं है, अस्तु यह मत कल्पना की एक हास्यास्पद उड़ान है जो सनातन हिन्दू तथा आर्य मान्यताओं को खण्डित करने का प्रयास है ।

यह क्यों नहीं माना जा सकता है कि बुन्देलखण्ड प्रस्तर बहुल क्षेत्र है तो यहां प्रस्तरखण्डों में जीवन प्रतिभाषित कर देने वाले कलाकारों का बाहुल्य भी रहा होगा । जिन कलाकारों ने जगत प्रसिद्ध खजुराहो, भरहुत, देवगढ़, सांची, उदयगिरि आदि प्रस्तर संकुलों को गढ़ा, उन्हीं ने पौराणिक मान्यताओं को आकार दिया है । वराह को टोटम मान भी लिया जाय तो विष्णु और हरगौरी किस टोटम के आधार पर गढ़े गए ? वस्तुतः सनातन धर्म में जनजीवन के बल-पौरुष और उत्साह को चैतन्य रखने के उपाय समयानुसार होते रहे हैं । स्मरणीय है कि मध्य एसिया से हूण, पल्लव, पारद, शक, यूची, कुषाण आदि जातियों के भारत पर बार-बार आक्रमण हो रहे थे । ऐसे में दृढ़ संकल्प और पौरुष की आवश्यकता हिन्दू धर्म में आ पड़ी। जिससे तब के कलाकारों ने वराह मूर्तियां गढ़ना प्रारंभ कर दिया । कालान्तर में इस उद्देश्य के लिए वराह की मूर्तियों का स्थान हनुमान की मूर्तियों ने ले लिया।

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, भगवान विष्णु के सभी अवतार प्रयोजनमूलक है । पृथ्वी का प्रलय-जल या पाताल लोक से उद्धार करने के बाद भगवान विष्णु ने महावराह का अवतार लिया तथा प्रयोजन सिद्धि के पश्चात कोकामुख शूकर क्षेत्र में ऋषियों का समाधान कर वह पशुदेह त्याग कर अपने धाम को चले गए।

इस पवित्र घटना की स्मृति में ही वराह कल्प (ब्रह्मा जी का एक दिन जो इस समय चल रहा है), कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा, भगवान शंकर के पुत्र कार्तिकेय की पालनकत्री :ोडश मातृकाओं में से एक मातृका वराही, वराह शिला - हिमालय पर एक शिला का नाम, प्राचीन काल के प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथ वराह संहिता और उसके रचयिता वराह मिहिर का नाम, गोस्वामी तुलसीदास के गुरू के स्थान का नाम (मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकर खेत - रा.च.मा 1/30 क)आदि काल से मध्यकाल में होते हुए वर्तमान तक अनेक पुरुष नामों में वराह शब्द प्रयुक्त हुआ है । हमारे देश के आठवें राष्ट्रपति का नाम श्री वराह गिरि वेंकट गिरि था । यदि भगवान विष्णु ने अवतार न लिया होता तो क्या कोई इन पवित्र संदर्भों में शूकर (वराह) के नाम का उपयोग करता ?

विष्णु भगवान के वराह अवतार की पूजा और उसकी मूर्तियों तथा मंदिरों के निर्माण के ऐतिहासिक साक्ष्य गुप्तकाल से सम्राट हर्षवर्द्धन के गुर्जर प्रतिहार और चंदेलों के काल तक मिलते हैं। इसके बाद का ऐतिहासिक परिवेश अस्थिरता और राजनैतिक उथल-पुथल भरा रहा। ऐसी स्थिति में धर्म में ठहराव ओर कला तथा संस्कृति का ह्रासोन्मुख हो जाना स्वाभाविक है। संभवतः इसी स्थिति में विष्णु भगवान तो जगत-नियंता के रूप में स्मरण रहे, परंतु उनके अवतारों के प्रति पूजा-भाव क्षीण होता गया। इसी बीच बर्बर आक्रमणकारियों ने ढूंढ़-ढूंढ़कर मूर्तियों और मंदिरों का खण्डन कर दिया। खण्डित मूर्तियों की पूजा नहीं की जाती है। इस कारण विष्णु, सूर्य, शिव, गणेश आदि-आदि देवताओं की भग्न ऐतिहासिक मूर्तियां भी अपूज्य हो गईं। इतिहास के जिस दौर में हिन्दुओं को अपने अस्तित्व की रक्षा करना भी दुष्कर हो रहा था, उसमें नवीन मूर्तियों और मंदिरों की स्थापना की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

यह भी संभव है कि इसी समय हिन्दू समाज के कुण्ठित और सांस्कृतिक ह्रासोन्मुखी हो जाने के कारण वराह अवतार के वीरत्व संचारी रूप के प्रति हिन्दुओं का मनोभाव क्षीण होता गया हो । 16वीं सदी ई0 में तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में वीरत्व संचारी रूप में श्री राम और संकटमोचन तथा दनुजवन कृशानु रूप में हनुमानजी के चरित्र को इस रूप में उभारा कि वे हिन्दू समाज

में नव चेतना भरने के सशक्त संबल बन गए । भक्ति युग के प्रारंभ होने से ही पुनः नवीन मंदिरों की स्थापना प्रारंभ हुई । उनमें शिव, शक्ति, गणेश, हनुमान मंदिरों के अतिरिक्त राम और कृष्ण अवतारों के मंदिरों की स्थापना प्रमुख हो गई ।

बुन्देलखण्ड में वराह अवतार की पूजा के जहां इतने अधिक ऐतिहासिक साक्ष्य हैं, वहां उसके लोप हो जाने के उपर्युक्त कारणों के अलावा और भी कुछ कारण क्या हो सकते हैं? विद्वानों के समक्ष आज यह चुनौती भरा प्रश्न उपस्थित है।

संदर्भ-स्रोत -

1 वाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
2 पंचायत पूजा, डॉ अमरसिंह : 'भारतीय इतिहास के कुछ पहलू'
3 म0प्र0 के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ, डॉ राजकुमार शर्मा, म0प्र. ग्रंथ अकादमी भोपाल
4 सागर : विरासत और विकास
5 बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, एस.डी. त्रिवेदी, राजकीय पुरातत्व संग्रहालय झांसी
6 झांसी गजेटियर, के.के.शाह
7 हिन्दुत्व, रामदास गौड़
8 मूर्तिकला, रायकृ:ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
9 कपूरचंद पोतदार अभिनंदन ग्रंथ
10 दैनिक नवभारत ग्वालियर, दिनांक 13.7.2007
11 पुरातन - वाल्यूम 1 नं 1 - 1984, प्रभाशंकर पाण्डेय, पृ0 82-83, पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग म0प्र0 भोपाल
12 मुख्य स्रोत मेरे अनुजवत मित्र पुरातत्वविद एवं बुन्देलखण्ड के पुरातत्व विशेषज्ञ पं0 हरिविष्णु अवस्थी टीकमगढ़ के दिए गए बहुमूल्य संकेत एवं सुझाव हैं ।
13 Ancient Bundelkhand – K.K. Shah, Gian Pub. House, Delhi
14 Temples of North India - Krishna Dev

- पुरानी नझाई, टीकमगढ़

संघर्ष करो आज़ादी हित

सन् सत्तावन के विप्लव में, जिसने आजादी का दीपक।
था तालबेहट में जला प्रथम, गोरों का डसा, बना तक्षक।।
वह अरिमर्दन था मर्दन सिंह, रणवीर बहादुर शूर सुभट।
बैरी दल में ऐसे कूदा, ज्यों कौरव-दल में भीम विकट।।
वह आजादी का दीवाना, आजादी उसको लानी थी।
भारत माता के पैरो की, झट बेड़ी काट गिरानी थी।।
इसलिए ''बरौदिया'' पहुँचा वह, बैरी का रोका बेग प्रवल।
था तीक्ष्ण खड्ग कर में उसके, लहराती नागिन सी चंचल।।
थे राष्ट्र-भक्त कुछ सैनिक जो, ले साथ शीघ्र उनको अपने।
अंगरेज लुटेरों से लड़ने आया वह आगे रण करने।।
भूँखे नाहर सा टूटा वह, बैरी को करने भूलुण्ठित।
दी पाट मही रिपु-मुण्डों से, वह चला धरा पर था शोणित।।
थे टिड्ढी-दल से उछल-उछल, बहु बैरी सन्मुख आते थे।
राजा के कठिन प्रहारों से, कट धरती में मिल जाते थे।।
था राजा में उत्साह बहुत, वे भीम-बेग से झपट-झपट।
हनते थे दुश्मन को सत्वर, तलवार-धार से काट कपट।।
वे जाते थे जिस ओर निकल, उस ओर भयातुर हो बैरी।
भगते थे प्राण बचा अपने, ज्यों देख भेड़िया को छेरी।।
पूरब,पश्चिम,उत्तर, दक्षिण, हय राजा का जिस ओर बढ़ा।
भग जाते थे रिपु शस्त्र छोड़, कहते थे सिर पर काल चढ़ा।।
करबाल कठिन थी नागिन सी, लगती जब बैरी कंठ लपक।
पीकर शोणित हो लाल-लाल, रिपु के लेती थी प्राण पुलक।।
कटरुण्ड गिरे, कहीं मुण्ड गिरे, गिर गये कहीं भुजदण्ड युगल।
चिर गया किसी का पेट शीघ्र, बाहर आंतें थी गिरी निकल।।
हो गई अगम थी बसुन्धरा, लोथों की लगी भीत उठने।
लख राजा के बल विक्रम को, दिल लगा द्रोहियों का कँपने।।
गये शत्रु के थे पैर उखड़, मच गई अचानक थी भगदड़।
'ह्यूरोज' देखकर यों बोला, मत भगो भूप को लेहु पकड़।।
क्यों डरते हो? क्या हिजड़े हो?, आओ-आओ आगे आओ।
लो समर जीत तुम पुरस्कार, है समय यही झट बढ़ जाओ।।
सुन सेनापति की बोली को, सैनिक आगे बढ़ आये पलट।
लेलो-लेलो, पकड़ो-पकड़ो, है शोर मचा था बड़ा विकट।।
लड़ते-लड़ते अब राजा के, भुजदण्ड युगल थे थकित हुए।
जो घाव लगे थे तन उनके, पीड़ित उनसे थे बहुत हुए।।
रण करने बीते तीन पहर, पर पार न रिपुदल से पाया।
उड़ गया होश, सब जोश गया, अब राजा मन में घबराया।।
विपरीत समय लखके अपना, रण छोड़ भूप थे गये निकल।
हैं पकड़ न पाया दुश्मन ने, 'ह्यूरोज' हाथ मल हुआ निकल।।
वह महावीर, वह क्रान्तिवीर, वह सेनानायक युद्धवीर।

बुन्देला बांका मर्दनसिंह, मतिमान, यशस्वी, समर-धीर।।
कर सका मनोरथ पूर्ण नहीं, पर आजादी की वेदीपर।
हो गया निछावर 'मुकुल' शीघ्र, सूनी माता की गोदी कर।।
कर गया नाम निज अमर यहाँ, है वहाँ अमर हो चला गया।
संघर्ष करो आजादी-हित, दे सुभग संदेश चला गया।।

-कन्हैयालाल शास्त्री 'मुकुल'
तालबेहट जिला- ललितपुर

मातृभूमि का कर्ज़

बंधुता भाव की, शान्ति सद्भाव की बीन बजती रही खण्ड बुन्देल में,
वीरता-धैर्य की, ओज दृढ़ शौर्य की, सेन सजती रही खण्ड-बुन्देल में ।
त्याग-बलिदान की साधना-ध्यान की,शक्ति मंजती रही खण्ड-बुन्देल में,
नीति-बसती रही, रीति रसती रही, प्रीति पुजती रही, खण्ड-बुन्देल में ।
शील करुणा-दया-सौम्यता का सदा, वृक्ष फलता रहा खण्ड-बुन्देल में ,
शिल्प साहित्य का, शब्द-संगीत का दीप जलता रहा खण्ड-बुन्देल में ।
सत्य-शिव और सुन्दर कला का कुसुम,नित्य खिलता रहा खण्ड-बुन्देल में ,
ज्ञान उगता रहा, कर्म जगता रहा, धर्म पलता रहा, खण्ड-बुन्देल में ।
आज प्यारी बुंदेली धरा है दुःखी, आइए मिल सभी पीर इसकी हरें,
जो ललकती रही नित प्रगति के लिए, रिक्त झोली सुखों की समूची भरें,
हो रही लुप्त इसकी सुसंस्कृति सरल, हम बचाएं उसे और मन से वरें ,
ध्यान सब दिन रहे, हम सभी का यहां, कर्ज़ इसका बहुत है अदा कुछ करें ।

- जवाहर लाल 'जलज'

जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय-जय बोलो

भेदभाव सब जने भुला के अंतस के पट खोलो ।
जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय-जय बोलो ।।
जमुना, सिंध, पहूज, केन अरु वाघिन, बीला, पतनई ।
उर्मिल, रेवा, हिरन, धसान उर नदी उटारी बानई ।।
सजनम और सहजाद रोहिणी, जामिनि संग जो दै रई ।
नदी सोनार बेतवा सुखनई सबई कछु तौ दे रई ।।
गंगा जैसौ नीर सबई कौ अपने कलमष धो लो ।
जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय जय बोलो ।।
ललितपुर बनगुवां लहचुरा झांसी खोदें कड़ रए ।
जो पाषाण काल की बातें आंखन देखी कै रए ।।
सबई जुगन में ई भूमी पै बीर बलाकारी भए ।
भस्मासुर के भय से भोले छिपे पचमढ़ी में रए ।।
सरग बैठ ललचउत देवता ई धरती पै हो लो ।
जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय-जय बोलो ।।
जरासंध के डर से भग के छोड़ दुवारका आ रए ।
जीरा खों तक भगे कन्हैया सो रनछोर कहा रए ।।
एक साल अज्ञातवास में धरम पण्डवन में रए ।
व्यास, परासर, तुलसी जैसे ज्ञानी कवी इतै भए ।।
सुनि पुरान इतिहासन के जब तुम पन्नन खों खोलौ ।
जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय-जय बोलो ।।
जमुना नदी नर्बदा चंबल टोंस नजर दो जानो ।
छत्रसाल, आल्हा-ऊदल की बीर भूमि सब मानो ।।
कालिंजर, दतिया, चंदेरी, नगर ओरछा ढानो ।
पन्ना, सागर, गुना, छतरपुर, बानपूर, गदयानो ।।
लक्ष्मीबाई की झांसी जा इतई बसेरौ लै लो ।
जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय-जय बोलो ।।
जिला इकईस बुन्देलखण्ड के गिनती में बतला रए ।
बुन्देलन कौ राज सलौनो जी में सब हो रै रए ।।
बीस महल, छत्तीस किले उर गढ़ इकईस दिखला रए ।
दो सौ इकसठ गढ़ी खण्डहर अपनों हाल बता रए ।।
जनम-जनम लौं 'मधुप' इतइ सब हिल-मिल खेलौ डोलो ।
जा बुन्देली भूमि इतै की सब हो जय-जय बोलो ।।

– पं0 बाबूलाल द्विवेदी

दिव्य भूमि ऐसी दुनी और कहीं देखी है ?

जाके सीस जमुन, डुलावै चौंर मोद मान, नर्मदा पखारै पाद पद्म पुष्प पेखी है।
कटि कल केन किंकिणी सी कलधौंत कांति बेतवा विशाल मुक्त माल सम लेखी है।
'व्यास' कहे सोहै शीश फूल सम पुष्पावती पायजेब पायन पयस्विनी परेखी है।
एहो शशि कहै सांची कहै सांची कहै, दिव्य भूमि ऐसी दुनी और कहीं देखी है ?

– राष्ट्रकवि घासीराम व्यास

ललितपुर जनपद के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी

1. नन्दकिशोर किलेदार	ललितपुर
2. ब्रजनन्दन शर्मा	,,
3. ब्रजनन्दन किलेदार	,,
4. मथुरा प्रसाद जी वैद्य	,,
5. वृन्दावन इमलिया	,,
6. बाबूलाल निगम	,,
7. डॉ. हरीराम चौबे	,,
8. शिवचरण लाल वर्मा	कांठ
9. हुकुम चंद बुखारिया	ललितपुर
10. मदनलाल किलेदार	,,
11. उत्तमचंद कठरया	उत्तमधाना
12. शम्भूदयाल संज्ञा	ललितपुर
13. हरपाल सिंह	,,
14. मदनलाल हरिजन	ककरूआ
15. गोविन्ददास सिंघई	ललितपुर
16. गोविन्ददास जैन	पाली
17. हुकुमचंद बइघरिया	ललितपुर
18. रामचन्द्र जैन	ललितपुर
19. घनश्यामदास नाई	,,
20. परमेष्ठीदास जैन	,,
21. श्रीमती कमला देवी पत्नी पं0 परमेष्ठीदास,,	
22. जानकी प्रसाद पाटकार	,,
23. सुखलाल इमलिया	,,
24. धन्नलाल	गुढ़ा
25. प्यारे लाल कुशवाहा	,,
26. कल्लूराम यादव	,,
27. रमानाथ खैरा	पाली
28. शिखरचंद सिंघई	,,
29. बाबूलाल घी वाले	,,
30. अहमदखां पहलवान	,,
31. श्रीमती केशरबाई	,,
32. खूबचंद पुष्प	पिपरई ललितपुर
33. भैरों प्रसाद राय	बार
34. मणिराम कंचन	तालवेहट
35. कन्हैया लाल कड़ेरे	,,
36. ब्रजनन्दन पस्तोर	,,
37. जमुना प्रसाद चौबे	खाँदी
38. मथुरा दास लिटौरिया	तालबेहट
39. गोपाल दास जैन	साढूमल
40. कुंजीलाल स्वर्णकार	,,

41. गजराज सिंह	बानपुर
42. गुलाब चन्द टेलर मास्टर	साढूमल
43. बल्देव प्रसाद	,,
44. दयाराम पाण्डे	,,
45. कपूर चंद जैन	सैदपुर
46. बहोरे गढ़रिया	,,
47. शिवराज सिंह	,,
48. चतरे हरिजन	,,
49. कुन्दन लाल शर्मा	मड़ावरा
50. रतीराम हुण्डैत	ललितपुर
51. हरीकृष्ण देवलिया	,,
52. काशीराम शास्त्री	दैलवारा
53. तेज सिंह	तालबेहट
54. ठा0 देवी सिंह	बानपुर
55. रामलाल यादव	,,
56. गोरेलाल वर्मा	,,
57. घनश्याम दास	मड़ावरा
58. खेमचन्द चौरसिया	पाली
59. हरदास बाबू	,,
60 मण्टूलाल चौरसिया	,,
61. अयोध्या प्रसाद चौरसिया	,,
62. हरप्रसाद शर्मा	धौर्रा
63. प्रागी उर्फ पूरन चंद रामदेव	,,
64. भैयालाल यादव	,,
65. हर प्रसाद लोधी	बरौदा
66. जगन्नाथ यादव	सिन्दवाहा
67. सन्तोष सिंह	गौना
68. श्यामलाल गुप्ता	बासी
69. भगवानदास ज्योतिषी	कैलगवां
70. फूलचंद सिंघई	सिलावन
71. दलू उर्फ खुमान	बंट
72. सुदामा प्रसाद गोस्वामी	तालबेहट
73. अभिनंन्दन कुमार टड़ैया	ललितपुर
74. कामरेड चन्दन सिंह	जखौरा
75. ताराचंद कजिया वाले	ललितपुर
76. भाव सिंह	सुनारी
77. रामजीलाल भार्गव	तालबेहट
78. रामरतन गोस्वामी	तालबेहट
79. जगन्नाथ लोधी	सतवांसा
80. प्यारेलाल फूलमाली	सैदपुर
81. चिन्तामणि	सैदपुर
82. शंकर सिंह लोधी	,,
83. लाल सिंह लोधी	,,

84. जयराम सेहारे	बानपुर
85. मंगलसिंह कटारिया	,,
86. प्रो0 खुशालचंद एम0 ए0	मड़ावरा
87. गोरेलाल चौरसिया	पाली
88. जालम यादव	कपासी धौर्रा
89. राजधर स्वर्णकार	सिंदवाहा
90 रामदयाल गेंडा	बरौदाडांग बार
91. जगन्नाथ	सैदपुर
92. ताराचंद जैन	ललितपुर
93. कन्हैयालाल फूलमाली	पाली
94. नारायण खरे	कैलवारा
95. रामदास दुबे	बांसी
96. राजघर	जाखलौन
97. कुन्दन लाल मलैया	साढूमल
98. भूपतराम	बानपुर
99. शिवप्रसाद जैन	जाखलौन
100. चुन्नी लाल चौरसिया	पाली
101. मोतीलाल टड़ैया	ललितपुर
102. दुलीचन्द जैन	तालवेहट
103. प्यारेलाल यादव	झरकौन
104. ठा0 विशेश्वर सिंह	तालवेहट
105. बसन्तलाल मिश्रा	तालवेहट
106. तेज सिंह पहाड़ सिंह	सैदपुर
107. अनंदी	वानपुर
108. दुरजन वैश्य	भावनी
109. मौजीलाल सहारिया	बार
110. नारायण तिवारी	बार
111. बाबूलाल माली	ललितपुर
112. किशोर सिंह	जखौरा
113. डालचंद जैन	मड़ावरा
114. वैजनाथ स्वर्णकार	ललितपुर
115. हल्के काछी	बंट
116. अजुध्या प्रसाद सेहारे	बानपुर
117. मरदन यादव	,,
118. ग्या प्रसाद	,,
119. गोविन्ददास विनीत	तालवेहट
120. राजाराम पाण्डेय	महरौनी
121. कामता प्रसाद	गैंदौरा बार
122. प्यारेलाल यादव	बार
123. जंगी सिंह	सैदपुर
124. भैयालाल परवार	सैदपुर
125. दमरू सिंह	नैनवारा
126. गोकुलचंद जैन	लडवारी

127. खंजोले काछी	ललितपुर
128. खलक सिंह	सतवांसा
129. गुलाबराय तिवारी	ललितपुर
130. परमानन्द	बार
131. मथुराप्रसाद	गैंदौरा बार
132. शीतलप्रसाद	करौंदा
133. गणेश प्रसाद स्वर्णकार	ललितपुर

बाइसभुजी नृत्य गणपति बानपुर

सहस्त्रकूट चैत्यालय–बानपुर